गांधी का अनन्य नेतृत्व

लेखक

पास्कल एलन नाजारेथ

अनुवादक

डॉ. मधु पंत

संपादक

आनन्द कुमार मेहरोत्रा

मूर्तिकारः डी. पी. रॉय चौधरी

राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय

राजघाट, नई दिल्ली

गांधी का अनन्य नेतृत्व

लेखक

पास्कल एलन नाजारेथ

अनुवादक

डॉ. मधु पंत

संपादक

आनन्द कुमार मेहरोत्रा

राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय

राजघाट, नई दिल्ली - 110002

गांधी का अनन्य नेतृत्व

पास्कल एलन नाजारेथ

'Gandhi's Outstanding Leadership'

(Third Edition, 2010) का हिंदी अनुवाद

अनुवादकः **डा. मधु पंत**

संपादकः **आनन्द कुमार मेहरोत्रा**

प्रथम संस्करणः 2011

© पास्कल एलन नाजारेथ

ISBN No. 978-81-87458-30-2

मूल्यः **रु. 300**

प्रकाशकः **निदेशक**
राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय
राजघाट, नई दिल्ली-110002
फोनः 23310168, 23311793; फैक्सः 91-011-2311793
ई-मेलः gandhimk@bol.net.in; mkgandhingm@rediffmail.com
gandhimuseumdelhi@gmail.com
वेबसाइटः www.gandhimuseum.org

प्राप्ति स्थानः **गांधी साहित्य केन्द्र**
राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय
राजघाट, नई दिल्ली-110002
फोनः (011) (23328310)

मुद्रकः **बुकमेन**
ए-40-41, तीसरी मंजिल, ओम भवन
हनुमान मन्दिर मार्ग, गणेश नगर
पाण्डव नगर कॉम्पलैक्स
नई दिल्ली-110092

समर्पण

यह पुस्तक मेरी मां स्वर्गीया एलिजाबेथ लूसी नाजारेथ को समर्पित है जिन्होंने अपने वैधव्य जीवन की अल्प धन-राशि सहर्ष देकर सर्वोदय इन्टरनेशनल ट्रस्ट को सर्वप्रथम प्रोत्साहित किया।

विषय सूची

प्रकाशकीय ..... **ix**
प्राक्कथन .....**xi**
भूमिका ..... **xv**
तीसरे संस्करण का आमुख ..... **xix**
जीवन का स्रोत ..... **xiii**

नेतृत्व की अपेक्षाएं एवं उल्लेखनीय आधुनिक नेतागण..... **1**
सर्वाधिक असाधारण आधुनिक नेता..... **3**
गांधी के नेतृत्व का मूल्यांकन..... **7**
गांधी के कार्यकाल में वैश्विक व भारतीय परिदृश्य.....**11**
गांधी के नेतृत्व के अवयव..... **15**

क. दूरदृष्टि
ख. साहस और चरित्र
ग. करुणा, समर्पण भावना और दृढ़ संकल्प
घ. सम्प्रेषण निपुणता
ड़. संगठनात्मक कुशलता और चमत्कारी व्यक्तित्व
च. रणनीति कौशल
छ. प्रबंधन कुशलता
ज. उदारता
झ. आत्म-विश्वास
ञ. धर्म, देश-भक्ति और राष्ट्रीयता पर प्रबुद्ध विचार
ट. विश्व के प्रति व्यापक दृष्टिकोण

गांधी के नेतृत्व की उपलब्धियां.....**55**

क. भारतीय जनता का संगठन एवं पुनर्नवीकरण
ख. औपनिवेशिक आधीनता से भारत की अहिंसात्मक मुक्ति

ग. राजनैतिक परिदृश्य में गौरवशाली समझौतों एवं पारदर्शिता का सूत्रपात
घ. अस्पृश्यता उन्मूलन
ड़. भारतीय नारी की मुक्ति
च. भारतीय सामंतवाद का अंत
छ. भारत के ग्रामीण उद्योगों का पुनरुत्थान
ज. पूंजी-श्रम संबंधों का सामंजस्य
झ. भारत की विदेश नीति की संकल्पना

गांधीजी का प्रभाव.....83

1. विख्यात बुद्धिजीवियों पर प्रभाव
2. नोबल पुरस्कार विजेता
3. अद्धितीय व्यक्तियों पर प्रभाव
4. नाटककार, गीतकार, संगीतकार और फिल्म निर्माता
5. राष्ट्रीय स्वतंत्रता, जातिवाद-विरोध तथा तानाशाही-विरोधी जन-शक्ति आन्दोलन पर प्रभाव
6. राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अंतर्राष्ट्रीय रणनीति पर प्रभाव
7. शांति, अध्यात्म और सामाजिक कार्यों में कर्मरत व्यक्ति/आंदोलन
8. शिक्षा तथा अकादमी-सम्बंधी विज्ञान
9. आर्थिक सिद्धांतों एवं कार्यप्रणाली पर प्रभाव
10. पर्यावरण और पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों पर प्रभाव
11. प्रबंधन सिद्धांतों एवं अभ्यास पर प्रभाव

वैश्विक परिपेक्ष्य में गांधी के दर्शन व रणनीतियों का समर्थन.....163

गांधी-एक आदर्श नायक.....213

शब्दावली.....229

ग्रन्थ-सूची.....231

लेखक के संबंध में.....238

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक अवकाश-प्राप्त राजदूत तथा सर्वोदय इन्टरनेशनल ट्रस्ट, बंगलौर के संस्थापक एवं मैनेजिंग ट्रस्टी, श्री पास्कल एलन नाजारेथ की बहुचर्चित अंग्रेजी पुस्तक *गांधीज आउटस्टैंडिग लीडरशीप* (Gandhi's Outstanding Leadership) के तृतीय संस्करण (2010) का हिंदी अनुवाद है।

2006 में गांधीजी के नेतृत्व के बारे में लिखी यह पुस्तक मूल रूप से शिक्षकों को गांधीजी के कार्य-कलापों का परिचय देने के लिये प्रकाशित की गई थी। 2007 में इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ तथा 2010 में तीसरा संस्करण पुस्तक रूप में तथा सी. डी. पर जारी किया गया।

पुस्तक मूल रूप से गांधीजी के नेतृत्व का विश्लेषण करती है जिसमें उनके सिद्धांतों का निरूपण, उनका व्यवहार में प्रयोग तथा भारतीय तथा विदेशी परिवेश में उनके महत्व का निरूपण स्वाभाविक रूप से आ जाता है।

महात्मा गांधी पर सैकड़ों पुस्तकें देशी व विदेशी विद्वानों द्वारा लिखी जा चुकी है और आगे भी लिखी जाती रहेंगी। इन पुस्तकों में मुख्य रूप से उनके जीवन की मुख्य घटनाओं का वर्णन रहा है तथा भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये उनके द्वारा संचालित विभिन्न आन्दोलनों पर प्रकाश डाला गया है। किंतु उनके बहुत ही प्रभावी नेतृत्व पर, जिसके फलस्वरूप लाखों नर-नारियों ने अपना जीवन दांव पर लगा दिया, बहुत ही कम विचार किया गया है। यह पुस्तक इस कमी को पूरा करती है।

एक अच्छे नायक में क्या गुण अपेक्षित हैं, इसका संक्षिप्त विवरण देने के पश्चात गांधीजी के नेतृत्व के आवश्यक गुण जैसे अहिंसा, दूर-दृष्टि; साहस और चरित्र; करुणा, समर्पण-भावना और दृढ़-संकल्प; संप्रेषण-निपुणता; संगठनात्मक-कुशलता; प्रबंधन-कुशलता; उदारता; आत्म-विश्वास इत्यादि उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं द्वारा दर्शाए गए हैं।

एक पृथक अध्याय में विभिन्न क्षेत्रों में गांधीजी की उपलब्धियां जैसे भारतीय जनता को संगठित करना, औपनिवेशक अधीनता से अहिंसक संघर्ष द्वारा भारत को स्वतंत्रता दिलाना, अस्पृश्यता उन्मूलन, भारतीय नारी को पुरुष के बराबर दर्जा देना, ग्रामीण उद्योगों के पुनरुत्थान आदि का वर्णन है।

पुस्तक के अगले भाग में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों जैसे रोम्यां रोला, टैगोर, एन्ड्रयूज, मीरा बहन, विनोबा भावे आदि पर गांधीजी के प्रभाव को दर्शाया गया है तथा गांधीजी पर लिखे गए कुछ नाटकों, फिल्मों, संगीत-रचनाओं आदि को सूची-बद्ध किया गया है। अमरीका, अफ्रीका, एशिया, यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में घटित राष्ट्रीय स्वतंत्रता, जातिवाद-विरोधी तथा तानाशाही विरोधी जन-शक्ति आंदोलनों पर पड़े गांधीजी के प्रभाव को भी दिखाया गया है।

अंत में वैश्विक परिप्रेक्ष्य में गांधीजी के दर्शन व रणनीतियों के समर्थन पर विचार करते हुए गांधीजी के अद्वितीय नेतृत्व का निरीक्षण-परीक्षण किया गया है।

पुस्तक को रोचक बनाने के लिये भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के गांधीजी के बारे में वक्तव्यों, वाक्यांशों के साथ-साथ गांधीजी के लेखों आदि के संदर्भ भी दिये गए है तथा यथा-स्थान फोटोग्राफ भी दिये गए हैं।

संक्षेप में पुस्तक गांधीजी के जीवन व कार्यों पर नये ही ढंग से प्रकाश डालती है तथा यह बताती है कि गांधीजी और उनके विचार आज भी प्रासंगिक है और उनके जीवन व सिद्धांतों का प्रभाव सारे विश्व में दृष्टिगोचर होता ही रहेगा।

राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय जिसकी स्थापना गांधीजी के विचारों का सर्वत्र प्रचार-प्रसार करने के लिये की गई थी, अंग्रेजी में प्रकाशित इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है तथा आशा करता है कि सुधी पाठक इस पुस्तक का पाठन-मनन करेंगे।

संग्रहालय श्री पास्कल एलन नाजारेथ का आभारी है जिन्होंने पुस्तक का अनुवाद कराने व उसे प्रकाशित करने का प्रस्ताव हमें भेजा। संग्रहालय डा. मधु पंत का पुस्तक का हिंदी में अनुवाद करने के लिये तथा श्री आनन्द कुमार मेहरोत्रा का अनुवाद का संपादन करने के लिये आभार मानता है। इस पुस्तक के प्रकाशन में मैं अपने सहयोगियों श्री एस. के. भटनागर, श्रीमती ममता रानी, कुमारी नीलम रानी एवं अन्य को उनके सहयोग के लिये धन्यवाद देती हूं।

राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय
राजघाट, नई दिल्ली-110002
6 मई 2011

संगीता मल्लिक
निदेशक

प्राक्कथन

सुकरात की तुलना "उस पहाड़ की चोटी से की गई है जो अस्त होते सूर्य की अंतिम किरण से प्रकाशित रहती है।" वह छवि, यद्यपि समय के कुहासे में धूमिल हो चुकी है किंतु फिर भी मानव के मन और मस्तिष्क में तब तक विद्यमान रहेगी, जब तक 'उचित ही शक्तिशाली' रहेगा और 'जीवन मृत्यु से अधिक शक्तिमान।' गांधी सदाचारिता के उज्जवल शिखर की भांति सदैव प्रकाशित रहेंगे। उनके विद्वान पौत्र राजमोहन गांधी उनके प्रति अपने विचारों को अत्यन्त सुन्दरता से अभिव्यक्त करते हैं, "आश्चर्यजनक किंतु विज्ञ, बहुतों के लिए कठोर, किंतु अपने लिए कठोर-तम, फिर भी जगमगाते हुए, मूल प्रवृत्ति-वश सत्य की ओर उन्मुख, प्रेम के प्रति दृढ़-प्रतिज्ञ, समस्त जीवन मानव मात्र के दुःख निवारण हेतु स्वयं जलकर दूसरों को आलोकित करने वाला, कभी-कभी हठी और स्वयं साहसिक रूप से आश्वस्त, ऐसे ही थे गांधी, भारत के अच्छे नाविक और पूरी बीसवीं शताब्दी के दौरान सम्पूर्ण विश्व के लिए अंतःप्रेरणा के स्फुलिंग बने रहे।"

गांधी की जीवनी के लेखक लुई फिशर, जनरल ओमर ब्रैडली का उद्धरण देते हैं, "हमारे यहां विज्ञान के बहुत सारे व्यक्ति हैं किंतु ईश्वर के बहुत कम। हमने अणु का रहस्य तो जान लिया है किंतु 'सर्मन ऑन द माउन्ट' को अस्वीकार कर दिया है।" और लिखते हैं, "गांधी ने अणु को अस्वीकार किया तथा 'सर्मन ऑन द माउन्ट' को आत्मसात किया। वे आणुविक ज्ञान के शिशु थे तथा नीतिशास्त्र के महामानव थे। वे हिंसा के संबंध में कुछ भी नहीं जानते थे किंतु बीसवीं सदी में जीने के बारे में बहुत कुछ जानते थे।"

मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) ने अपनी पुस्तक *पिलग्रिमेज टु नॉनवायलेंस* (Pilgrimage to Nonviolence) में घोषित किया, "यदि हम यह सोचते हैं कि मानव जाति को जीने का अधिकार है तो हमें युद्ध और विनाश का कोई विकल्प ढूंढ़ना होगा। अंतरिक्ष यानों एवं निर्देशित प्रक्षेपास्त्रों के इस युग में हमारे सामने दो ही विकल्प हैं- अहिंसा या अस्तित्वहीनता।"

नवम्बर 1989 में, अपने देश के सोवियत अधिग्रहण के विरुद्ध स्वैच्छिक आंदोलन में भाग लेने के लिए प्राग के वेंसेस्लास स्क्वायर में सैकड़ों हज़ारों लोग एकत्र हो गए जिनमें बड़ी संख्या में विद्यार्थी शामिल थे। उनके हाथों में फूल और प्रज्वलित मोमबत्तियां थीं तथा वे झंडे

लहरा रहे थे। जब पुलिस ने घेराव करके उन पर हमला किया तो उनके नेता वेक्लाव हैवेल ने गांधी की बात को प्रतिध्वनित करते हुए उन्हें हिंसा से दूर रहने को प्रेरित किया। वे स्क्वायर पर और उस ओर जाने वाले समस्त मार्गों पर शांतिपूर्वक बैठ गए और पूरे पांच दिनों तक शिशु-गीत गाते रहे। तरकीब कारगर सिद्ध हुई और चेकोस्लोवाकिया वासियों का अभीष्ट 'वेल्वेट रिवोल्यूशन' (Velvet Revolution) सफल हो गया। हैवेल ने इसे "असत्य के विरूद्ध सत्य, अशुद्ध के विरूद्ध शुद्ध और हिंसा के विरूद्ध मानवता के विद्रोह" का नाम दिया।

"क्या गांधी आज भी प्रासंगिक हैं?"— यह प्रश्न केवल उनके द्वारा उठाया जा सकता है जिनकी आत्मा दासता के वशीभूत हो गई हो। जैसे जीने के लिए सांस लेना अनिवार्य है वैसे ही मानवता और सभ्यता के लिए गांधीजी अनिवार्य हैं। *महात्मा गांधी एण्ड मार्टिन लूथर किंग जूनियरः दि पावर ऑफ नॉन वॉयोलेंट एक्शन* (Mahatma Gandhi and Martin Luther King Junior: The Power of Nonviolent Action) नामक पुस्तक की लेखिका मेरी ई. किंग के शब्दों में, "गांधी आठ सशक्त संघर्षों के अग्रणी प्रणेता थे। वे संघर्ष थे- जातिवाद के विरूद्ध, उपनिवेशवाद के विरूद्ध, वर्ण-भेद के विरूद्ध, लोकप्रिय लोकतांत्रिक भागीदारी के लिए, आर्थिक शोषण के विरूद्ध, महिलाओं के निम्नीकरण के विरूद्ध, धार्मिक और जातीय श्रेष्ठता के विरूद्ध, एवं सामाजिक व राजनीतिक परिर्वतनों के अहिंसात्मक तरीकों के समर्थन के लिए। उनकी गहरी चिंताओं की व्यापकता के कारण एक प्रकार से हर पाठक के लिए गांधी का एक अलग व्यक्तित्व है।.... जब तक आपसी झगड़े, शत्रुता, जातीय शोधन, धार्मिक अशांति, आंतरिक संघर्ष और सैन्य आधिपत्य का भय रहेगा, लोग गांधी की ओर देखेंगे, पास आएंगे। उनकी उपादेयता तब तक समाप्त नहीं होगी, जब तक संघर्ष समाप्त नहीं होता।"

'मानवाधिकार की सार्वजनिक घोषणा' (Universal Declaration of Human Rights) की बीसवीं जयंती के समय, 'फ्रीडम एन्ड इक्वैलिटी' (Freedom and Equality) विषय पर लिखते हुए, नोबेल पुरस्कार से सम्मानित फ्रांसीसी न्यायशास्त्री और यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय के अध्यक्ष प्रोफेसर रेने-सैम्युअल कैसिन ने अपने निबंध का समापन इन शब्दों के साथ किया, "यदि इस विश्व को, जिसकी एकता की ओर उन्मुख प्रगति को बहुधा तकनीकों के पैमाने पर नापा जाता है, मानव संसार के रूप में विद्यमान रहना है, तो सार्वजनिक घोषणा पत्र; 'युनिवर्सल डेक्लरेशन' (Universal Declaration) के प्रथम अनुच्छेद के कार्यान्वयन से अधिक आवश्यक और कुछ भी नहीं है। अपनी गरिमा के प्रति

सचेत मनुष्य को इस बात को भूले बिना अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करनी है, जैसा कि महात्मा गांधी ने भली प्रकार बताया था कि इन स्वतंत्रताओं को उसे अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए उपयोग करना चाहिए और इसमें यह भी जोड़ना होगा कि वह अपने साथियों के साथ समता एवं बंधुत्वपूर्ण व्यवहार करे।"

श्री पास्कल एलन नाजारेथ ने, आज के समय में महात्मा गांधी कहे जाने वाले महान सदाचारी रत्न के सम्मान और प्रशंसा हेतु बहुत काम किया है। गांधी के नेतृत्व का विश्लेषण करते हुए इस पुस्तक में जिसमें उनकी उपलब्धियों और उनके व्यापक प्रभाव की छटा का लेखा-जोखा करने के साथ-साथ, नेताओं और सभी व्यक्तियों के लिए समान रूप में, समकालीन परिस्थितियों में, उनकी प्रासंगिकता को अकाट्य रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यह उनका एक और उल्लेखनीय योगदान है।

एम.एन. वेंकटचलैय्या

2 अक्टूबर 2005

भूमिका

गत दस वर्षों के वैश्विक परिदृश्य पर, सरसरी नज़र डालते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि जो विकट समस्याएं आज विश्व के अनेक राष्ट्र, संगठन और समाज भुगत रहे हैं, उनका मूल कारण है कि उनके नेता सत्य, न्याय और अहिंसा का मार्ग छोड़ कर अपने राष्ट्रीय, संगठन-जनित, धार्मिक अथवा वैयक्तिक उद्देश्यों के पीछे भागने लगे हैं। इसके परिणाम विनाशकारी हुए हैं, जैसे अमेरिकी राष्ट्रपति पर महाभियोग लगना, एक भारतीय प्रधानमंत्री पर दोष-सिद्धि, चिली और पेरू के राष्ट्रपतियों पर अभियोग-आरोपण, भारतीय संसद से 11 सदस्यों का निष्कासन, एनरॉन, वर्ल्ड कॉम, मारकोनी, टाइको और परमालाट का दीवालिया घोषित होना, अफ़गानिस्तान व ईराक में युद्ध, नैरोबी, दार-ए-सलाम, अदन, न्यूयॉर्क, वॉशिंगटन, मॉस्को, बाली, इस्तांबुल, तेल अवीव, राबात, नई दिल्ली, मुम्बई, लन्दन, शर्म-अल-शेक और अमान पर आतंकवादी हमले होना। जीवन के हर क्षेत्र में विश्वस्त और सत्यनिष्ठ नेताओं की इतनी अधिक आवश्यकता आज से पहले कभी नहीं हुई।

मानव इतिहास में पिछली दो शताब्दियां सर्वाधिक रक्त-रंजित रही हैं। केवल बीसवीं शताब्दी में ही, दो विश्व-युद्धों में करीब-करीब एक करोड़ व्यक्ति मारे गए— हिरोशिमा और नागासाकी में गिराए गए अणुबम, अरब-इजराइली, भारत-पाकिस्तान, ईरान-ईराक, कोरिया, वियतनाम और अफ़गानिस्तान के युद्ध, स्पेन, ग्रीस, चीन और सूडान के गृह-युद्ध, अरमेनिया का नर-संहार, हिटलर के गैस चैम्बर, कम्बोडिया के 'वध क्षेत्र', तिब्बत, अलजीरिया, अंगोला, मोजाम्बिक और बंगलादेश के राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष, दक्षिण अफ्रीका और गुआतेमाला के वर्ण-भेद विरोधी संघर्ष, बाल्कन्स में जातीय शोधन तथा अफ्रीका और विश्व के अनेक स्थानों में अनेकानेक जाति-भेद और अलगाववादी संघर्ष। इन सभी उदाहरणों में हिंसा का और अधिक हिंसा तथा और बड़े असरदार हथियारों से सामना किया गया। न्यूयॉर्क के वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर पर हुए 9/11 के उल्लेखनीय आतंकवादी आक्रमण ने हथियारबन्द लड़ाई का स्वरूप, नाटकीय रूप से बदल दिया है। इस दुर्घटना ने असंयमित युद्ध के एक ऐसे युग की शुरूआत की है, जहां दुश्मन एक विदेशी राष्ट्र न हो कर, कुछ आत्मघाती आतंकवादी हैं, जो देश के बाहर से नहीं बल्कि भीतर से ही वार

करते हैं और उसी देश की सम्पत्ति जैसे उनके वायुयान व हवाई अड्डों का प्रयोग कर, भयंकर विनाश का कारण बनते हैं। आतंकवाद विरोधी विश्लेषक यह अनुभव करते हैं कि आगामी समय में तात्कालिक आणविक अस्त्रों द्वारा आतंकवादी हमला एक निश्चित संभावना है। मार्टिन लूथर किंग के शब्द "दो ही विकल्प हैं- अहिंसा या अस्तित्वहीनता", आज के समय में तब से अधिक सच हैं, जब उन्होंने ये शब्द कहे थे।

बीसवीं शताब्दी के पहले नेता, जिन्होंने सफलता-पूर्वक हिंसा के रास्ते का, जातिवाद के अन्याय का, उपनिवेशवाद, वर्गभेद और इसी प्रकार की अनेकों राजनैतिक और सामाजिक बुराइयों का साहस के साथ, सफलतापूर्वक सामना किया, और ऐसा करने के लिए एक प्रभावशाली अहिंसात्मक रणनीति बनाई, उनका नाम था मोहनदास करमचंद गांधी। उन्हें करोड़ों लोग श्रृद्धा-पूर्वक 'महात्मा' कहते हैं। उनकी सत्य और अहिंसक सत्याग्रह की रणनीति, उनकी सनक, दुर्बलता, तपश्चर्या और उपलब्धियों पर अनेकों पुस्तकें लिखी गई हैं, किंतु उनके नेतृत्व, उसकी गुणवत्ता और महत्ता, उसे किस प्रकार अर्जित किया गया तथा उसने व्यक्तियों, समाजों, आंदोलनों, संस्थाओं, शैक्षिक अनुशासन और इतिहास को कैसे प्रभावित किया तथा समकालीन युद्धों, हिंसा व आतंक से ग्रसित परिदृश्य पर उसकी प्रासंगिकता के विषय में बहुत कम लिखा गया है। गांधी के नेतृत्व के इन पहलुओं को ऐतिहासिक और व्यवहारिक संदर्भ में आंकने का यह एक विनम्र प्रयास है।

इस पुस्तक में उद्धृत सभी उद्धरणों का श्रेय उन लेखकों को है, उन पुस्तकों को नहीं जिनमें वे प्रकाशित हुए हैं। उन लेखकों का नाम ग्रन्थ-सूची में सूची-बद्ध किया गया है।

मेरे कई विद्वान मित्रों के सक्रिय प्रोत्साहन और समर्थन के बिना इस पुस्तक को साकार रूप देना असम्भव होता। उन सभी को कोटिशः धन्यवाद, विशेषतः श्री बी. आर. नन्दा (नई दिल्ली), श्री नरेन्द्र पाणि, श्रीमती शकुंतला नरसिम्हन और श्रीमती श्रीविद्या मौलि (बंगलौर), एम्बेसेडर (सेवानिवृत्त) ए. माहदवन (मैसूर), डॉ. लेटिसिया शाहानी (मनीला), श्रीमती जेनी लेम्पसन (लॉस एंजेलिस) और श्री जी. टी. व्हिटमैन (न्यूयार्क) को जिन्होंने मूल आलेख का विवेचनात्मक मूल्यांकन किया और उसके सुधार के लिए सुझाव दिए। मैं खास तौर पर धन्यवाद करता हूं बरजोर और नीना कोथावाला (बंगलौर) का, उनके इस आग्रह के लिए कि जो पुस्तक मूल रूप में केवल शिक्षकों के लिए लिखी गई थी उसका एक बड़े पाठक वर्ग के लिए विस्तार किया जाए; ग्राफिक कलाकार गीता वधेरा (नई दिल्ली) का परिकल्पना और कला-विन्यास हेतु उनके बहुमूल्य सहयोग के लिए, गांधी सेन्टर ऑफ साइंस एन्ड ह्यूमैन वैल्यूज (Gandhi Centre of Science and Human Values) का

जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु सहभागिता की सहर्ष स्वीकृति दी, एवं डब्ल्यू. क्यू. जज प्रेस के विजी, माला और मुरली का जो बिना किसी शिकायत के अनेक संशोधनों और अतिरिक्त सामग्री को पुस्तक में सम्मिलित करते गए, जबकि मैं हर बार उन्हें यह आश्वासन देता था कि वह प्रारूप अंतिम है।

भारत के विख्यात भूतपूर्व उच्च न्यायाधीश तथा सर्वोदय इंटरनेशनल ट्रस्ट के संस्थापक-अध्यक्ष, न्यायमूर्ति एम. एन. वेंकटचलैय्या का सादर धन्यवाद करता हूं जिन्होंने पुस्तक का अत्यंत विद्वतापूर्ण प्राक्कथन लिखा।

मैं अपनी प्रिय पत्नी इसोबेल का हृदय से आभारी हूं, जिसने अत्यन्त धैर्यपूर्वक मुझे कम्प्यूटर के सामने घंटों कार्यरत देखा और मुझे अपने काम में मग्न देख, अक्सर मेरा नाश्ता, भोजन, चाय आदि मेरी मेज पर ही उपलब्ध कराया।

30 जनवरी 2006 पी. ए. नाजारेथ

तीसरे संस्करण का आमुख

वर्ष 2006 में प्रकाशित इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के बाद से विश्व परिदृश्य में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं जिनसे गांधी की भविष्य-दृष्टि का प्रति-समर्थन हुआ है। 'गांधी और किंग के सिद्धान्त और जीवन में कुछ भी निर्बल नहीं है, कुछ भी निष्कृय नहीं है, कुछ भी मूर्खता नहीं है,' इस कथन में विश्वास रखने वाला एक अफ्रीकी-अमेरिकी व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया है और उसने परमाणु अस्त्रों से विश्व को निजात दिलाने के लिए अथक प्रयत्न करने की शपथ ली है तथा अमेरिकी सैनिकों को ईराक और अफगानिस्तान से जल्दी से जल्दी वापस बुलाने का प्रण लिया है। परन्तु इन देशों और अन्य देशों में 'आतंकवाद के विरूद्ध छेड़े गए संग्राम', पूर्व-नियोजित आक्रमणों, तथा सत्ता परिवर्तन के कारण सारे विश्व में आतंकवाद बढ़ा है। इसके फलस्वरूप मानवीय जीवन, पर्यावरण और संस्कृति की महान क्षति हुई है। ईराक और अफगानिस्तान में, अमेरिकी, ब्रिटिश तथा अन्य सहयोगी राष्ट्रों के 6000 से अधिक सैनिक मारे जा चुके हैं, दस लाख से अधिक अफगान और ईराकी नागरिक जान गंवा चुके हैं, पचास लाख से अधिक लोग विस्थापित और बेघर हो गए हैं और उनके देश विध्वंसित हो चुके हैं। ईराक में सत्ता परिवर्तन केवल अवैधानिक, विशाल जन-विरूद्ध युद्ध के कारण ही नहीं, राष्ट्र-प्रमुख तथा उसके कई मंत्रियों के विरूद्ध शर्मनाक, नकली, झूठे मुकदमों द्वारा और उन्हें मरवा कर किया गया। ईराकी और अफगानिस्तानी सत्ता परिवर्तन, 1986 में फ़िलिपीन्स, 2005 में चिली और 2006 में बोलिविया में हुए अहिंसक सत्ता परिवर्तनों के विपरीत थे। अफगानिस्तान में सत्ता का बदलाव जल्दी ही उलट सकता है क्योंकि देश के अधिकांश दक्षिणी और पश्चिमी भाग, तालिबान के आधिपत्य में हैं तथा उनके आत्मघाती विस्फोटक और रॉकेट काबुल तक कहर ढ़ा रहे हैं।

9/11 सितम्बर को वर्ल्ड ट्रेड सेंटर के विध्वंस तथा वर्ष 2008 में अमेरिका के आर्थिक और औद्योगिक दिग्गजों के पतन के फलस्वरूप यूरोप तथा कुछ एशियाई देशों में आर्थिक सुनामी जैसा विनाशकारी प्रभाव पड़ा है। इन देशों में से कुछ अभी भी कंगाली के कगार पर लड़खड़ा रहे हैं। इस वैश्विक वित्तीय संकट का मूल कारण अधिकांश आर्थिक पंडितों के अनुसार बेईमानी तथा स्वच्छन्द लालच है। उधर वैश्विक उष्णता अपशकुनी अनुपात

में बढ़ती जा रही है। पुर्तगाल के पूर्व प्रधानमंत्री मारियो सोरेस ने सारगर्भित शब्दों में समझाया है कि क्या कदम तुरन्त ही उठाए जाने चाहिए, "पूंजीवाद पर हमें पुनः विचार करना होगा। इसे अटकलबाजी की इस दशा से आगे बढ़ाना होगा, जुआड़ी अर्थ-व्यवस्था, से पृथक ऐसे नैतिक पूंजीवाद की रचना करनी होगी जो पर्यावरण और समाज सम्बन्धी समस्याओं को समुचित आदर देता हो।" एक शताब्दी पूर्व गांधी ने भी इसका परामर्श दिया था।

भारत के लिए सुरक्षा की परिस्थिति खासतौर पर अनिष्टकारी रूप धारण कर चुकी है। पाकिस्तान के लगभग हर शहर और क्षेत्र में आतंकवाद का घातक प्रभाव तथा प्रतिदिन उसके अंतः-विस्फोट के मंडराते खतरे के कारण उसके आणविक अस्त्रों की सुरक्षा भारत के लिए गहरी चिन्ता का विषय बन गई है। 26/11 को मुम्बई में हुए आतंकवादी हमले से हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा तथा गुप्तचर व्यवस्था की कमजोरी पूरी तरह से उभर आई है। इसके अतिरिक्त नक्सली आतंकवाद नेपाल की दक्षिणी सीमा से लेकर भारत के मध्य और पूर्वी क्षेत्र से होता हुआ सुदूर-दक्षिण केरल प्रदेश तक फैलता जा रहा है। इसके अतिरिक्त 1998 से लेकर अब तक दो लाख से अधिक किसानों द्वारा आत्महत्या, भारत के ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में व्याप्त गंभीर आर्थिक संकट निराशा और क्षोभ का निराशाजनक प्रमाण प्रस्तुत करता है। फिर भी हाल ही में भारत ने एक दूर तक घात करने वाले आणविक प्रक्षेपास्त्र का परीक्षण किया है! गांधी ने परामर्श दिया था, "एक गरीब व कमजोर आदमी का चेहरा याद करो और फिर खुद से सवाल पूछो कि जो कदम तुम उठाने जा रहे हो क्या वह उसके किसी काम आएगा?" यह प्रश्न तब की अपेक्षा आज के हालात में अधिक संगत व आवश्यक है।

प्रस्तुत संशोधित व परिवर्धित तीसरे संस्करण में इन सब जरूरी नई स्थितियों और चुनौतियों को ध्यान में रखा गया है। इसमें नेताओं पर गांधी का प्रभाव तथा उन गतिविधियों का भी वर्णन किया गया है जो पिछले संस्करण में शामिल नहीं थीं। इसके लिए मैं अपने अनेक मित्रों तथा प्रख्यात विद्वानों द्वारा दिए गए अमूल्य योगदान के लिए आभारी हूं- ग्लेन पेग का 'गांधीज कन्ट्रीब्यूशन टु ग्लोबल नॉनवायलैंस अवेकनिंग' (Gandhi's Contribution to Global Nonviolence Awakening) नामक व्याख्यान के लिये; वीरेन्द्र प्रकाश और प्रतीप लाहिरी का *हिन्दुत्व डिमिस्टिफाइड* (Hindutva Demystified) तथा *इनटॉलरेंस डिकोडेड* (Intolerance Decoded) नामक पुस्तकों के लिए; डॉ. अर्जुन सेनगुप्ता और जयाति घोष का भारत के विकृत आर्थिक विकास तथा नक्सली आतंकवाद

पर व्यवहारिक अंतर्दृष्टियुक्त लेखों के लिए; नाथन स्ट्रोल्जफुस की पुस्तक *रेजिसटेन्स ऑफ द हार्ट* (Resistance of the Heart) के विषय में सूचित करने के लिए प्रो. डेनिस डाल्टन का; तथा श्रीमती राधा बालासुब्रमनियम का वह पुस्तक मुझे भेजने के लिए; अनिल नौरिया का उनकी पुस्तक *दि अफ्रीकन एलीमैन्ट इन गांधी* (The African Element in Gandhi) के लिए; लॉरी बेकर की पुस्तकें भेजने के लिए गौतम भाटिया का; 'गांधी सर्व फाउन्डेशन' (Gandhi Serve Foundation), बर्लिन का गांधी से प्रभावित संगीतकारों और गायकों के विषय में बताने का और रॉबर्टो काटालानो का, चियारा लूबिच के अद्‌भुत विचारों तथा उपलब्धियों और उनके द्वारा आरम्भ किए गए 'फोकोलेअर' आन्दोलन से अवगत कराने के लिए हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

माननीय राष्ट्रपति बराक ओबामा का मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूं, जिन्होंने इस पुस्तक के पिछले संस्करण के लिये धन्यवाद दिया। मैंने उस पुस्तक की प्रति उन्हें भेजी थी, जिसे उन्होंने एक 'अद्‌भुत भेंट' की संज्ञा दी है। इस से मिली प्रेरणा के फलस्वरूप मैंने 2010 के संस्करण को पहले की अपेक्षा अधिक सूचना-दायक तथा प्रेरणात्मक बनाने की चेष्टा की है।

मैं श्री बी. आर. नंदा, अध्यक्ष, राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय तथा डा. वर्षा दास, निदेशक का धन्यवाद करना चाहूंगा, जिन्होंने 2008 में मेरी पुस्तक के हिंदी अनुवाद की अनुमति दी थी। डा. मधु पंत का पुस्तक का हिंदी में सुंदर अनुवाद करने के लिये तथा श्री आनन्द कुमार मेहरोत्रा का उस अनुवाद का संपादन करने के लिये भी मैं उनका आभार मानता हूं। अंत में राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय के वर्तमान अध्यक्ष प्रोफेसर बिमल प्रसाद तथा निदेशक श्रीमती संगीता मल्लिक का पुस्तक को छापने की अनुमति के लिये तथा पुस्तकाल्याध्यक्ष श्री एस. के. भटनागर तथा उनके साथियों का पुस्तक की हिंदी में कम्पोजिंग के लिये धन्यवाद करना चाहूंगा।

30 जनवरी 2011 पी. ए. नाजारेथ

2011 के संस्करण का आमुख

इस पुस्तक के वर्श 2006 में प्रथम संस्करण के प्रकाषन के बाद से वैष्विक परिदष्श्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों से महात्मा गांधी के ''सत्य के मार्ग पर दष्ढ़तापूर्वक चलने'' का पूर्वकथित विचार न्यायसंगत सिद्ध हुआ है। आज अफ्रीकी-अमेरिकी मूल का एक व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका का राश्ट्रपति है जिसनें खुलेआम घोशणा की है कि ''गांधी और किंग के सिद्धान्त और जीवन में कुछ भी निर्बल नहीं है, कुछ भी निश्कष्य नहीं है, कुछ भी बचकाना नहीं है''।उसने विष्व को परमाणु अस्त्रों से छुटकारा दिलाने का प्रण लिया है तथा रुस के राश्ट्रपति मेडवेडेव के साथ एक नई 'स्टार्ट संधि' पर हस्ताक्षर किए हैं जिसके फलस्वरुप दोनों देष अपने परमाणु अस्त्रों में 30 प्रतिषत की कमी लाएंगे। ''आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध'' को क्रमषः समाप्त किया जाएगा तथा अफ़गानिस्तान व इराक से अमेरिकी और नाटो सेनाएं धीरे धीरे वापस बुलाई जाएंगी। परन्तु इन देषों को संतुश्ट करने के लिए किए गए 12 वर्शों के प्रयास के बावजूद घुसपैठ अब भी जारी है। 6 अगस्त को तालिबान ने एक चिनूक हेलिकॉप्टर मार गिराया जिसमें सवार 31 अमेरिकी एवं 7 अफ़गान फ़ौजी मारे गए। स्पश्ट है कि ड्रोन युद्ध व आधुनिक अस्त्रों के विरुद्ध विदेषी आक्रमण का सामना करने के लिए दष्ढ़प्रतिज्ञ, पर कमज़ोर अस्त्रधारी, निर्भीक योद्धाओं का विजयी होना निष्चित नहीं माना जा सकता है।

लम्बे समय से सुस्थिर समझे जाने वाले तथा संस्थापित सत्तावादी प्रदेष- तीन उत्तरी अफ्रीकी देष ;ट्यूनिसिया, मिस्र व लिबियाद्धतथा पांच पष्चिमी एषियाई देष ;यमन, बहरेन, ओमान, जॉर्डनव सीरियाद्धमें 2011 के प्रारम्भ में अचानक से उभरे 'जन-षक्ति' आन्दोलन के फलस्वरुप दो दीर्घकालिक तानाषाहों का पतन हुआ तथा अन्य दो पतन के कगार पर पहुंच गए। एक राजवंषी षासक इसलिए अभी तक गद्दी पर जमा हुआ है क्योंकि एक पड़ोसी मित्र ने उसे समय से सैनिक सहायता दे दी। यह पड़ोसी ऐसे आन्दोलन से बहुत चिन्तित था।

लिबिया के तेल-प्रधान पूर्वी प्रान्त की एक अस्पश्ट 'जन-षक्ति क्रान्ति' को संयुक्त राश्ट्र सुरक्षा परिशद से उल्लेखनीय रुप से तुरन्त समाधान मिला। इसके कारण सदस्य देषों को अधिकारदिया गया जिसके अर्न्तगत ''नागरिकों एवं घनी आबादी वाले क्षेत्रों की सुरक्षा के हर आवष्यक कदम उठाए गए''। हालांकि भारत समेत पांच देषों ने 'एकदम अस्पश्ट सूचनाओं के आधार' पर विस्त्रित कदम उठाने के लिए चिन्ता जताते हुए समाध ाान प्रस्ताव पर वोट नहीं दिया।उस समय से लगातार नाटो के वायुयान लिबिया के सैनिक

संस्थानों, बन्दरगाहों, टीवी स्टेषनों तथा त्रिपोली के उपनगरों पर बमबारी करते रहे हैं जिसके कारण अनेक नागरिक मारे जा चुके हैं। मरने वालों में वहां के षासक का पुत्र और उसके तीन पौत्र षामिल हैं। संयुक्त राश्ट्र का गठन युद्ध की महा विपत्ति के बहिश्कार के लिए किया गया था, परन्तु सुरक्षा परिशद के वीटो अधिकार वाले तीन सदस्य अर्न्तराश्ट्रीय समस्याओं के संवाद द्वारा समाधान के बजाए वीटो का उपयोग तुरन्त करने से नहीं चूकते। युद्ध में बहुत बड़ी धनराषि खर्च होती है, साथ ही इस देष और इस जैसे अन्य युद्ध-ग्रसित देषों में गहरा आर्थिक व सामाजिक संकटछाया है तथा उनके नगरों में दंगे-फ़साद, लूटमार और हड़ताल हो रही हैं।

पाकिस्तान के वकीलों द्वाराएक विषेश रुप से किया गया अहिंसक संघर्श सफल हुआ जिसमें हठधर्मी से बर्ख़ास्त किए गएमुख्य न्यायाधीषको पुनः पदासीन करवाया गया। उसके बाद वहां के सैन्य तानाषाह को त्यागपत्र देकर ''तीर्थ यात्रा पर जाना'' पड़ा।यह आन्दोलन जन-षक्ति की षब्दावली में अब 'ब्लैक कोट क्रान्ति' के नाम से जाना जाता है। चुनाव अभियान के बीच बेनज़ीर भुट्टो की निर्मम हत्या, उसके बाद पाकिस्तान के भीतर अनेक नगरों में और मुम्बई पर आतंकी हमले, तथा ओसामा बिन लादेन के ऐबटाबाद के एक सुरक्षित महल में2005 से लगातार निवास के सनसनीख़ेज़ रहस्योद्घाटन-इन सारी घटनाओं ने पाकिस्तान की धुंधली छवि 'आतंकवाद के प्रमुख पालनहार'के रुप में और अधिक गहरा दी है। ओसामा को उसकी पत्नियों की उपस्थिति में, यू एस सील वाले हेलिकॉप्टर द्वारा मार कर 'न्यायिक दंड' दिया गया। इस घर्षणित मष्त्यु के समय वह निहत्था था और वह किसी प्रकार की रुकावट भी डाल सका।

भारत में हुए राश्ट्रमंडल खेलों सम्बंधी एवं 2जी के महा घोटाले इनके पूर्व हुए सारे घोटालों से कहीं अधिक गम्भीर हैं। परन्तु इस बार सम्बधित मंत्री, दो संसद सदस्यों और उनके सहयोगियों को नई दिल्ली के जेल में डाला गया। उनको मुकदमे के पहले ज़मानत भी नहीं दी गई, जो पहले कभी नहीं हुआ था। गांधीवादी अन्ना हज़ारे के भ्रश्टाचार विरोधी संघर्श के रुप में साहसपूर्ण कदम ने सारे देष में जन जागरण का संचार किया तथा लम्बे समय से रुके हुए लोकपाल बिल को संसद में प्रस्तुत किए जाने के लिए बाध्य किया। यद्यपि हज़ारे पेष हुए बिल को बहुत कमज़ोर बिल मानते हैं और उन्होंने अपना संघर्श जारी रखने का प्रण लिया है।

जापान में हुई फुकुषिमा परमाणु दुर्घटना से परमाणु बिजली घरों की सुरक्षा के बारे में बहुत से अहम सवाल और चिन्ता के कारण पैदा हुए हैं। जुलिअन असांज के 'विकीलीक्स' के अनेक ''सम्मानित'' राश्ट्रों द्वारा किए जा रहे झूठ, ढोंग और उत्पीड़न के रहस्योद्घाटन अत्यंत गम्भीर हैं।

पुस्तक के 2011 के इस आधुनिक एवं परिवर्धित संस्करण में इन महत्वपूर्ण घटनाओं की चर्चा की गई है। अन्य नेताओं पर तथा कार्यक्षेत्रों परपड़े महात्मा गांधी के प्रभाव पर भी प्रकाष डाला गया है। मैं उन सभी महानुभावों को हार्दिक आभार प्रकट करता हूं जिनका मूल्यवान सहयोग मुझे इस प्रयास में प्राप्त हुआ है – विषेशकर माधव गोडबोले, वीरेन्द्र प्रकाष और प्रतीप लाहिरी का,'इन्डियन डिमॉक्रेसी ऑन ट्रायल', 'हिन्दुत्व डिमिस्टिफ़ाइड' और 'इनटॉलरेन्स डिकोडेड' पुस्तकें उपलब्ध करानें के लिए, सुदीप चक्रवर्ती का उनकी पुस्तक 'रेड सन : ट्रैवेल्स इन नक्सलाइट कन्ट्री' के लिए, अनिल नौरिया का उनकी पुस्तक 'द अफ़्रीकन एलिमेन्ट इन गांधी' के लिए, मालबिका पान्डे और प्रोफ़ेसर ब्रिन्सले समरु का गांधी की 'ग्रीन बुक' और निन्दनीय अनुबन्ध प्रणाली केउन्मूलन के विशय में सूचना देने के लिए, आषा षर्मा का सैम्युल;सत्यानन्दद्धस्टोक्स की आत्मकथा 'एन अमेरिकन इन खादी' के लिए, प्रोफ़ेसर डेनिस डाल्टन का नाथन स्टोल्ट्ज़फ़ुस की पुस्तक 'रेज़िस्टेन्स ऑफ़ द हार्ट' के बारे में सूचित करने के लिए, रोबर्टो कैटालानो का चियारा लूबिच के बारे में और उनके द्वारा आरम्भ किए गए फ़ोकोलोर अभियान का विवरण उपलब्ध कराने के लिए तथा बर्लिन के गांधी सर्व फ़ाउन्डेषन का गांधी से प्ररणा पाए हुए संगीतकारों और गायकों के बारे में सूचना देने के लिए मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

डब्लू क्यू जज प्रेस की चन्द्रमौलि एवं पद्मजा को भी मेरा हार्दिक धन्यवाद जिन्होंने इस 2011 के परिवर्धित संस्करण की पेज मेकिंग और मुद्रण मेंसतर्कतापूर्ण श्रम किया है।

पी. ए. नाज़ारेथ

बंगलोर
14 अगस्त 2011

जीवन का स्त्रोत

मत कहो दुःखपूर्ण स्वरों में कि,
जीवन बस एक खोखला सपना है।
क्योंकि आत्मा है मृत और उनींदी,
और जो दिखता है, वह भी कहां अपना है?

वस्तुतः जीवन एक सत्य, गंभीर सच्चाई है,
जिसका लक्ष्य जीवन का अंत नहीं है।
धूल को उतारने के लिए स्वयं का धुंधलका छांटो,
आत्मा में झांको और पाओ क्या सही है?

जीवन के विशाल रणक्षेत्र में,
एक पशु की भांति निःस्पृह मत चलो।
जीवन संग्राम के हर पड़ाव में,
एक कर्मवीर नायक की तरह ढलो।

हर महान व्यक्तित्व स्मरण कराता है,
कि हम भी अपना जीवन उदात्त बना सकते हैं।
और अपने पीछे छोड़े हुए पद-चिह्नों द्वारा,
वक्त की रेत में अपनी पहचान बना सकते हैं।

जीवन की मुख्य धारा पार करने को जूझते
किसी निराश, निःस्पृह, निःस्तब्ध पोत-चालक,
के लिए शायद वे पद-चिह्न बन सकें,
जीवन का स्त्रोत, आशा का कारक।

हैनरी वर्ड्स्वर्थ लोंगफैलो
हिन्दी अनुवादः मधु पंत

नेपोलियन बोनापार्ट

साइमन बोलिवार

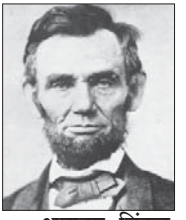
अब्राहम लिंकन

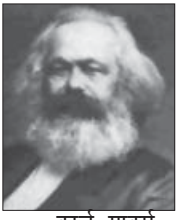
कार्ल मार्क्स

व्लादिमीर आई. लेनिन

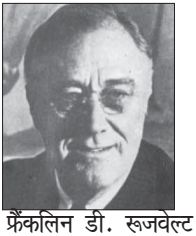
फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट

विंस्टन चर्चिल

एडोल्फ हिटलर

जोजेफ स्टालिन

जवाहरलाल नेहरू

माओत्से-तुंग

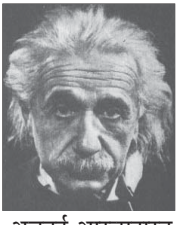
अलबर्ट आइन्सटाइन

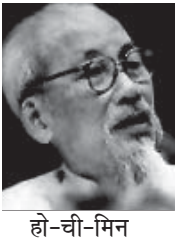
हो-ची-मिन

जॉन केनेडी

मार्टिन लूथर किंग

इंदिरा गांधी

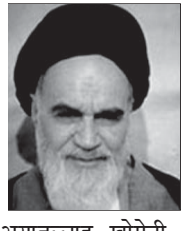
अयातुल्लाह खोमेनी

मार्गरेट थैचर

नेल्सन मंडेला

कोराजोन एक्वीनो

नेतृत्व की अपेक्षाएं एवं उल्लेखनीय आधुनिक नेतागण

रैल्फ वाल्डो एमरसन के अनुसार, "महान वे हैं जो यह अनुभव करते हैं कि किसी भी भौतिक बल से आध्यात्मिक बल बड़ा है और विचार शक्ति द्वारा ही विश्व पर शासन कर सकते हैं।"

नायकत्व के अमेरिकी गुरु जॉन मैक्सवेल एक नेता के लिए 21 विशेषताओं को आवश्यक बताते हैं जिनके कारण वह अन्य सभी के लिए अनुकरणीय बन सकता है। ये आवश्यक गुण हैं:- चारित्रिक बल, आकर्षक व्यक्तित्व, वचनबद्धता, संप्रेषणशीलता, योग्यता, साहस, विवेकशीलता, एकाग्रता, दयालुता, पहल करने की क्षमता, सुनने की क्षमता, भाव-प्रवणता, सकारात्मक दृष्टिकोण, समस्या-समाधान की क्षमता, सह-संबंधन की योग्यता, उत्तरदायित्व, सुरक्षा-प्रबंधन की योग्यता, आत्म-नियंत्रण, सेवाभाव, सिखाने की योग्यता तथा दूरदर्शिता। नायक की संक्षिप्त परिभाषा के रूप में वे ब्रिटिश फील्ड मार्शल बरनार्ड मोंटगोमरी का उद्धरण देते हैं, "नेतृत्व, क्षमता और संकल्प-शक्ति से भरा एक ऐसा चरित्र है, जो किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए स्त्री और पुरुषों को एकत्र कर सके तथा उन्हें प्रेरित कर उनका विश्वास प्राप्त कर सके।"

नायक के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं में दूरदर्शिता अंत में आती है जब कि महत्व के आधार पर इस आवश्यकता को सूची-क्रम में सर्वप्रथम होना चाहिए। एक नायक को यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि अपने साथियों को वह कहां ले जाना चाहता है और वहां तक वह उन्हें कैसे पहुंचाएगा? इसके अतिरिक्त, उसे उन लोगों को उनकी वर्तमान स्थिति की अपेक्षा बेहतर स्थिति में पहुंचाना चाहिए। इस कार्य के लिए उसमें दूरदर्शिता के अतिरिक्त, कम से कम चारित्रिक बल, आकर्षण, करुणा, साहस, समर्पण भावना, दृढ़ निश्चय, संप्रेषणशीलता, संगठनजन्य प्रबंधकीय एवं रणनीति कौशल, उदारता, आत्मविश्वास, प्रबुद्ध देशभक्ति और विश्व को देखने का एक व्यापक दृष्टिकोण होना चाहिये ताकि वह पारम्परिक राजनैतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक एवं वैचारिक सीमाओं के घेरे के परे लोगों को प्रेरित कर उनका पथ-प्रदर्शन कर सके, और इतिहास पर अपनी अमिट छाप छोड़ सके। यह छाप जितनी अधिक स्थाई और हितकारी होगी, उतना ही अधिक सामाजिक, राष्ट्रीय, विश्वव्यापी और प्रज्ञात्मक भूपटल पर उसकी अनुभूति हो सकेगी और उसका प्रभाव उतना ही अधिक होगा। साथ ही भविष्य के लिए जिसकी भी दृष्टि जितनी अधिक पैनी और सही होगी वह उतना ही अधिक उत्कृष्ट नायक/नायिका कहलाएगा।

आधुनिक इतिहास का सर्वेक्षण करने पर अर्थात् फ्रांस की क्रांति के, जिसे साधारणतः विभिन्न राष्ट्रों के आधुनिक युग का अग्रणी माना जाता है, समय से अब तक जो महान नायक

हुए हैं, वे हैं - नेपोलियन, बोलिवार, लिंकन, लेनिन, कमाल अतातुर्क, हिटलर, चर्चिल, रूजवेल्ट, स्टालिन, गांधी, नेहरू, माओत्से-तुंग, हो-ची-मिन, नासेर, केनेडी, कास्त्रो, मार्टिन लूथर किंग, इंदिरा गांधी, खोमेनी, सादात, मार्गरेट थैचर, मंडेला, लेक वालेसा, वेक्लाव हेवेल, कोराजोन अक्वीनो और चौदहवें दलाई लामा। इन सभी ने परम्परागत सीमित दायरों के परे जाकर अपने लोगों का नेतृत्व किया है और इतिहास में लघु या विशाल, अनुकूल या प्रतिकूल, स्थानीय, क्षेत्रीय अथवा भूमंडलीय स्तर पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

बल के स्थान पर सच, घृणा, हिंसा और युद्ध के स्थान पर सत्य, न्याय और अहिंसात्मक तरीकों से संघर्षों के समाधान को अपनाने वाले नायक ही लोगों को प्रेरित कर, व्यापक रूप से सम्मान प्राप्त करते हैं। लिंकन के वे शब्द, "हमें विश्वास होना चाहिए कि उचित कार्यों से ही बल मिलता है और उसी विश्वास के बल पर, हम अंत तक अपनी समझ के अनुसार उचित कर्तव्यों को निभाने का साहस करें," आज भी उतने ही अधिक प्रेरणादायक हैं जितने वे एक सौ चालीस वर्ष पूर्व थे, जब वे बोले गए थे। नेपोलियन द्वारा सेंट हेलेना द्वीप के दूरस्थ बंदीगृह में कहे शब्द आज भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं, "यश क्षणिक है, अज्ञात शाश्वत है। प्रोमीथियस के समान मैं गिद्ध द्वारा नोचे जाने के लिए एक चट्टान से बांध दिया गया हूं.... दुनिया में केवल दो शक्तियां हैं, आत्मा और तलवार। अंततः आत्मा ही तलवार पर विजय पाएगी।" हिटलर के शब्द ठीक इसके विपरीत कारण से ध्यान देने योग्य हैं, "विजयी से कभी नहीं पूछा जाएगा कि क्या उसने सत्य कहा था।" ऐसा ही चर्चिल ने भी कहा था, "युद्ध में हर सच को कई झूठों का सहारा लेना पड़ता है", और माओत्से-तुंग के अनुसार "शक्ति बन्दूक की नाल से उत्पन्न होती है।"

नोबल सम्मान से विभूषित डैस्मन्ड टूटू ने, दिसम्बर 2005 में बंगलौर के इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस में, अपने व्याख्यान 'क्या मानव जाति के लिए कोई आशा बची है?' में कहा, "यह आश्चर्यजनक है कि समझदार कट्टर संस्कृतियों में भी जिन्हें हम सराहते हैं, जिन्हें हम पूजते हैं, वे लोग बेहद आक्रामक व सफल व्यक्ति कदापि नहीं हैं। जिन व्यक्तियों को हम सार्वभौमिक रूप से अपार श्रद्धा योग्य मानते हैं, वे हैं महात्मा गांधी, मार्टिन लूथर किंग (जूनियर), दलाई लामा, मदर टेरेसा, नेल्सन मंडेला। और क्यों?.... क्योंकि वे भले लोग हैं। हमारे पास एक आंतरिक एंटेना है जो अच्छाई पर विश्वास करता है, क्योंकि हमारी रचना ही अच्छाई, प्यार, कोमलता, करुणा और सहभागिता के लिए हुई है। हम लगभग मूलतः अंतर्विरोधी हैं— सीमित जीव, जिनका निर्माण असीम के लिए हुआ है।"

सर्वाधिक असाधारण आधुनिक नेता

अपनी उपलब्धियों की महानता तथा प्रत्येक ऐतिहासिक एवं प्रेरणात्मक प्रभावों को देखते हुए, आधुनिक नायकों की सूची में गांधी सबसे शीर्ष पर उभर कर आते हैं। एक ऐसी सदी में जिसको विस्मयकारी रूप से इतिहास में सबसे हिंसापूर्ण सदी का नाम दिया गया है, उन्होंने उस समय के सबसे विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य से अहिंसात्मक रूप से मुकाबला किया और उस भारत को आजादी दिलाई जिसमें पूरे विश्व की जनसंख्या का पांचवा हिस्सा बसता था, और उसके विशाल जनसमूह को राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के बृहत दृष्टिकोण से उत्प्रेरित किया। तदुपरान्त, उन्होंने जनसाधारण को अहिंसात्मक संघर्ष के लिए प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप विश्व भर में उपनिवेशवाद के विरूद्ध सफल आंदोलन आरम्भ हुए, संयुक्त राज्य अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका में वर्णभेद उत्पीड़न का अन्त हुआ, पोलैंड, रूमानिया, चैकोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी, लाट्विया, लिथुआनियां, फिलिपाइंस, रूस, चिली, सर्बिया, जॉर्जिया और यूक्रेन में तानाशाही समाप्त हुई। तिब्बत तथा बर्मा के लोगों तथा विश्व भर के पर्यावरण-विदियों तथा अन्य लोगों के साहसिक संघर्षों में उनकी सतत प्रेरणा का प्रभाव देखा गया है। इसके अतिरिक्त पूरे विश्व के किसी भी अन्य आधुनिक नायक की अपेक्षा, उनके बारे में सबसे अधिक पुस्तकें लिखी गई हैं और उनके अहिंसात्मक रणनीति कौशल को प्रचारित करने के लिए सबसे अधिक सूचना केन्द्रों और समितियों का गठन हुआ है। वह एक ऐसे अकेले नेता हैं जिन पर फिलिप ग्लास द्वारा *सत्याग्रह* नामक सम्पूर्ण ऑपेरा बनाए जाने का गौरव प्राप्त है। इस ऑपेरा का गायन यद्यपि संस्कृत में होता है, किंतु अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों के प्रमुख शहरों में उसका मंचन होने पर, संगीत-कक्ष ठसाठस भरे रहते हैं। किसी एक आधुनिक नायक के बारे में बनी फिल्म की तुलना में रिचर्ड ऐटनबरो की फिल्म *गांधी* को कहीं अधिक लोगों द्वारा देखा गया है। सन् 1999 में किए गए एक मतदान में 'सहस्त्राब्दि के व्यक्ति' के रूप में गांधी का नाम सर्वोपरि, तथा एक अन्य मतदान में तीन सर्वोपरि नामों में से एक था।

यॉर्क जिमरमैन इनकारपोरेशन और वेटा (WETA), वॉशिंगटन डी.सी. द्वारा निर्मित व एलबर्ट आइंस्टाइन इंस्टीटयूट एवं ऑर्थर विनिंग डेविस फाउन्डेशन द्वारा प्रदत्त धनराशि द्वारा निर्मित फिल्म श्रृंखला *फोर्स मोर पावरफल* (Force More Powerful) में

बकिंघम पैलेस में पहुंचते हुए गांधी

भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, डेनमार्क, पोलैंड तथा चिली के सफल अहिंसात्मक आंदोलनों को सफलता पूर्वक दिखाया गया है। इन सभी चल-चित्रों की श्रृंखला की मुख्य पंक्ति के रूप में जिस पंक्ति को प्रदर्शित किया जाता है वह है "गांधी की अहिंसा की शक्ति की खोज ने बीसवीं सदी को बदल दिया।" किसी भी अन्य आधुनिक नायक के संबंध में शायद ही कभी ऐसा कुछ कहा गया हो।

आधुनिक नायकों के विषय में लुई फिशर लिखते हैं, "आधुनिक इतिहास के बड़े-बड़े नायकों यथा चर्चिल, रूजवेल्ट, लॉयड जॉर्ज, स्टालिन, लेनिन, हिटलर, वुडरो विल्सन, कैसर, लिंकन, नेपोलियन, मैटरनिक, टैलीरैंड इत्यादि के हाथ में प्रशासकीय ताकत थी। केवल कार्ल मार्क्स ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो गांधी के समान लोगों के मस्तिष्क पर प्रभाव डाल सके, यद्यपि उनका सिद्धान्तात्मक मत, सरकारी प्रणाली को निर्देशन देना था। एक ऐसे व्यक्तित्व को ढूंढ़ने के लिए, जिसने हर आदमी की चेतना को गांधी जितना प्रभावित किया हो, हमें सदियों पीछे जाना पड़ेगा। वे सभी एक अन्य युग के धार्मिक व्यक्ति थे। गांधी ने दिखा दिया कि ईसा मसीह और बुद्ध और हेब्रू के पीर-पैगम्बर और ग्रीस के ऋषियों के विचारों को आधुनिक काल व राजनीति में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। उन्होंने धर्म या ईश्वर के बारे में उपदेश नहीं दिए, वे स्वयं एक जीवित धर्मोपदेश थे। वे उस दुनिया के उत्तम व्यक्ति थे जहां कुछ ही व्यक्ति ऐसे हैं जो शक्ति, धन-सम्पदा और दंभ के संहारक प्रभाव का प्रतिरोध कर पाते हैं।"

चूंकि हम वह "सीमित इकाई हैं जिसका निर्माण असीम के लिए हुआ है," अतः नेतृत्व जिसकी हमें जरूरत हैं, और जिसके हम योग्य हैं, उसके मूल में शाश्वत मूल्य समाहित होने आवश्यक हैं। अंतिम विश्लेषण में, उत्तम और विश्वसनीय नेतृत्व के लिए उचित कार्य के अनुरूप ही नैतिक निर्णय लेने की जरूरत होती हैं क्योंकि इतिहास से यह अनेक बार सिद्ध हो चुका है कि अंततः विजय सत्य की ही होती है। मात्र तकनीकी ज्ञान के आधार पर लिए गए निर्णयों के लिए नायक की आवश्यकता नहीं होती। उचित विकल्पों को चुनने के लिए नायकों को विश्व के महान नैतिक दार्शनिकों और उन व्यक्तियों के जीवन व दर्शन की गहरी समझ होनी चाहिए जिन्होंने विश्व की अत्यन्त गहन समस्याओं को सुलझाने में उनको प्रयुक्त किया हो।

पिछले पांच दशकों में वैश्विक परिदृश्य में अथाह परिवर्तन आया है। आज लगभग सभी राष्ट्र स्वतंत्र हैं और अपना शासन स्वयं चलाते हैं। आधुनिक तकनीकों ने

दुनिया को सीमित कर दिया है। पूरे विश्व की यात्रा जो कभी महीनों और सप्ताहों में पूरी होती थी अब मात्र कुछ घंटों में तय हो जाती है। ध्वनि, लिखित अथवा चित्र-संदेशों को पल भर में सम्प्रेषित कर दिया जाता है। वहीं दूसरी ओर सामूहिक विनाश के अस्त्रों द्वारा क्षण भर में बड़े-बड़े शहरों को राख के ढ़ेर में परिवर्तित किया जा सकता है और किया जा चुका है। आज आर्थिक क्षेत्र में बड़े-बड़े व्यवसायी-घरानों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आधिपत्य है, जिनके कार्यों का प्रभाव लाखों व्यक्तियों के जीवन पर पड़ता है, किंतु जिन्हें नियंत्रित करने में किसी भी राष्ट्र के नियम पूर्णतया सक्षम नहीं हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना सन् 1945 में, महायुद्ध के विनाश से बचने के लिए की गई थी। किंतु, फिर भी एक बड़ी शक्ति आज भी, एक विशालकाय व्यक्तित्व की तरह अपनी इच्छानुसार दुनिया के गुप्तचर विभाग को 'लट्टू' की तरह नचा रही है और 'पूर्व निर्धारित हमलों' तथा 'सत्ता पलट' जैसे दुष्कर्मों में रत है। अतः आज के आधुनिक युग में एक प्रबुद्ध और विश्वसनीय नेतृत्व कैसा होना चाहिए, इस संदर्भ में एक स्पष्ट संकल्पना होनी आवश्यक है और इसके लिए एक उपयुक्त आदर्श का होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

गांधी के नेतृत्व का मूल्यांकन

"चीन ने सन-यात-सेन का अनुसरण किया, शस्त्र उठाए और जापान के हाथों धराशाई हो गया। भारत ने इतिहास में सबसे अद्‌भुत व्यक्ति को निहत्थे होते हुए भी, अपने नेता के रूप में चुना और उस संत ने बिना बंदूक उठाए, क्रांति का एक अभूतपूर्व चमत्कार सारे विश्व के सामने कर दिखाया।.... उसने ईसा का नाम नहीं लिया किंतु *सर्मन ऑन द माउन्ट* (Sermon on the Mount) के एक-एक शब्द को ग्रहण कर उसके अनुसार कर्म किया। आसिसी के सेंट फ्रांसिस के पश्चात् इतिहास में ऐसा कोई अन्य व्यक्ति नहीं हुआ है जो इतनी दयालुता, अनासक्ति भाव, सादगी और क्षमाशीलता से भरा-पूरा रहा हो।"

विल डूरांट

"गांधी दलदल में ही चल पड़े और दुनिया को दिखाया कि कीचड़ को कैसे पवित्र किया जा सकता है एवं स्वयं उसमें रह कर भी उससे कैसे अछूता रहा जा सकता है। यह गांधी की अपनी आध्यात्मिक महत्ता और मानव इतिहास के एक कठिन मोड़ पर, मानवता के प्रति उनकी महान सेवा का द्योतक है।"

ऑर्नल्ड टॉयनबी

"अपनी जनता का एक नेता, किसी बाह्य सत्ता के सहारे के बिना एक विजयी योद्धा, जिसने बल प्रयोग को सदैव हेय समझा, विवेक और नम्रता का प्रतीक जिसने एक सीधे-साधे मनुष्य की गरिमा के साथ यूरोपीय क्रूरता का सामना किया, और हर समय वह व्यक्ति दूसरों से ऊंचा उठा हुआ.... आने वाली कई पीढ़ियां शायद ही यह विश्वास कर पाएं कि वाकई में इस तरह का, हाड़-मांस वाला कोई व्यक्ति धरती पर अवतरित हुआ था।"

अलबर्ट आइंस्टाइन

"गांधी, 'बिना हिंसा के युद्ध' के विकास में एक अनुसंधानकर्त्ता थे। उनका कार्य अग्रगामी था और हमेशा यथेष्ट नहीं होता था। किंतु नैतिकता और राजनीति, दोनों दृष्टि से उनका कार्य, ऐतिहासिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण विकास को दर्शाता है.... उसके और अधिक

विस्तार और कार्यान्वयन में कई कठिनाइयां हैं। किंतु गांधीजी ने अपनी कथनी और करनी दोनों से इस दुविधा का निवारण करने का यत्न करते हुए यह दर्शाया कि किस तरह कोई भी व्यक्ति शांतिपूर्वक सक्रिय व्यवहार करते हुए दमन एवं अन्याय का प्रभाव-पूर्ण विरोध कर सकता है।"

प्रोफेसर जेने शार्प

"अधिकतर क्रांतियां अनेकों महत्वाकांक्षाएं उत्पन्न करती हैं, जो वास्तव में कभी पूरी नहीं हो पातीं, कुछ तो सर्वथा छलावा और धोखा होती हैं। अमेरिकी क्रांति ने अफ्रीकी मूल के अमेरिकियों, स्थानीय अमेरिकियों तथा बहुत हद तक महिलाओं को बहिष्कृत कर शीघ्र ही स्वतंत्रता की धारणा का, जो उसकी प्रेरणा थी, सीमांकन कर दिया। फ्रांस की क्रांति ने एक हिंसक क्रोधोन्माद और आवेश को जन्म दिया और परिणामतः लगभग अगली एक शताब्दी तक राजतंत्रवाद चलता रहा। रूसी और चीनी क्रांतियों ने तानाशाही, उत्पीड़न और गतिहीनता को जन्म दिया। सन् 1948 में गांधी की नृशंस हत्या के पश्चात् वास्तविक गांधी प्रायः अदृश्य हो गया। किंतु आधुनिक इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण घटनाचक्र के प्रतीक के रूप में, उपनिवेशवाद एवं वैयक्तिक दमन के विरुद्ध एक साथ विरोध करने वाले व्यक्ति के रूप में, जिसने बीसवीं सदी की दुनिया को रूपांतरित करने में अधिकतम योगदान दिया, उन्हें स्थान दिया जाना अपरिहार्य है।"

प्रो० ऐलन ब्रिंकली

"विश्व में संघर्षों के समाधान के लिए हमारे द्वारा प्रयुक्त नितांत अप्रभावी तरीके स्वतः ही आधुनिक सभ्यता की कमज़ोरी को उजागर कर देते हैं। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में न तो परम्परागत कूटनीति ने और न ही सैन्य बल के प्रयोग के विभिन्न तरीकों ने उस संकरे हाशिये को बेहतर बनाया है, जिस पर यह दुनिया टिकी है। इतिहास के इस निराशापूर्ण पहलू को चुनौती देने वाला एक प्रतिवाद है— भारत में महात्मा गांधी की नीतियों और उनके अहिंसात्मक तरीकों का कार्यान्वयन। गांधी की सफलता से दो तथ्य सामने आते हैं — एक, मनुष्य का स्वभाव उसकी अनिवार्यता से मुक्त किया जा सकता है तथा दूसरा, आज के हालात में अहिंसा की व्यवहारिकता सम्भव है।"

प्रो० राल्फ बुल्टजेन्स

"पूरे विश्व के सामने गांधी एक भविष्य के रूप में विद्यमान हैं.... उस भविष्य को केवल इस रूप में नहीं देखा जाना चाहिए कि दूसरे देशों में और दुनिया में क्या होता है या क्या हो सकता है। अधिक महत्वपूर्ण है स्थानीय सामाजिक रूपान्तरण और स्थानीय स्वायत्त शासन। संसार के अनेक भागों में गांधी के गांव को नगरपालिका के नाम से जाना जाता है। उनकी पंचायत को 'स्थानीय सरकार' के नाम से भी जाना जाता है और भावी विश्व के तंत्र में सत्याग्रह और सर्वोदय को नींव के पत्थर के रूप में माना है। मनुष्य से मनुष्य का इलेक्ट्रॉनिकी सम्प्रेषण भी विश्व को गांधी के वैचारिक महासमुद्र के निकट ला पाएगा .... दुनिया एक कुटुम्ब— एक परिवार है.... गांधी ने राह दिखा दी है और वह रास्ता स्वयं ही एक उद्देश्य है।"

प्रो० योहान गाल्टुन्ग

"भौतिक शक्ति अल्पकालिक है, जैसे मानव शरीर अल्पकालिक है;
किंतु आत्मा की शक्ति स्थाई है और वह अनन्त है।"

चित्रांकनः गीता वधेरा

गांधी के कार्यकाल में वैश्विक और भारतीय परिदृश्य

जेने शार्प लिखते हैं, "गांधी, जार निकोलस, लेनिन एवं स्टालिन, कैसर विलहेल्म एवं एडोल्फ हिटलर, वूड्रो विल्सन एवं फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट, चीन के अंतिम सम्राट, सन यात सेन, चियांग काई शेक और माओत्से-तुंग के समकालीन थे। उन्होंने समय के दो अंतरालों — जब सेना द्वारा बन्दूकों से युद्ध किए जाते थे और जब ऐटम बमों द्वारा युद्ध होने लगे, को जोड़ा....। जातिवाद अपनी चरम सीमा पर था, स्त्रियों, अछूतों और अन्य कई लोगों को उचित आदर व अवसर नहीं मिलते थे, उन्हें सामाजिक और राजनैतिक बुराई समझा जाता था। इन समस्याओं का हल खोजने में गांधी प्रवृत्त हुए।"

भारतवर्ष के उस चुनौती भरे समय का मार्टिन ग्रीन ने अत्यंत कुशलता से वर्णन किया है, "भारत में क्रान्तिकारी साहित्य के जन्मदाता, एक बंगला उपन्यासकार, बंकिम चन्द्र चॅटर्जी (सन् 1838 से 1894 तक) थे, जिनका सबसे प्रसिद्ध उपन्यास *आनन्द मठ,* कई गोपनीय संस्थाओं के लिए, बाइबल के समान प्रेरणा-ग्रन्थ बन गया और जिसका नायक 'सत्यानंद' क्रान्तिकारियों का आदर्श बन गया। इस उपन्यास ने, जिसमें मन को उद्वेलित करने वाला गीत 'वन्देमातरम्' था, बंगाल के क्रान्तिकारियों के मन में वैसा ही स्थान बना लिया था जैसा रूसी क्रान्तिकारियों के लिए चेर्नीशेव्स्की का *व्हॉट देन मस्ट वी डू* (What Then Must We Do) का था।" वे विस्तार से वर्णन करते हैं कि जिसको इस उपन्यास ने सर्वाधिक प्रभावित किया, वे थे अरविन्द घोष जिन्होंने मेनचेस्टर से इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त की थी। फिर वे कैम्ब्रिज गए और तत्पश्चात् प्रतिष्ठापूर्ण आई.सी.एस. (भारतीय प्रशासनिक सेवा) के लिए चुने गए। परन्तु क्रान्तिकारियों के साथ काम करने के लिए उस पद को ठुकरा दिया। उसके तुरंत बाद उन्होंने अज्ञात लेखक के रूप में *भवानी मंदिर* लिखा जिसमें उन्होंने यह घोषित किया कि भारत-माता जिसे गरीबी, दुःख और शोषण के कारण, कमजोर आंका जाता है, उसे पुनः सशक्त और समुज्वल बनाने के लिए आत्म-बलिदान और शक्ति की देवी का आह्वान करने की आवश्यकता है। 1906 में एक नए बंगला साप्ताहिक *युगान्तर* का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, जिसमें प्रकाशित प्रत्येक पंक्ति 'एक बम की तरह' थी और जिसने अपने पाठकों को संबोधित करते हुए उनसे नायक बनने का आह्वान किया, यह कह कर कि यदि हम एक नायक का जीवन जी नहीं सकते तो कम से कम एक नायक की मौत तो मरें। *वर्तमान रणनीति* नामक पुस्तक श्री अरविन्द के एक मित्र द्वारा सन् 1907 में प्रकाशित हुई और उसने बाकूनिन के उस विचार का प्रचार किया कि 'विध्वंस रचना का ही दूसरा रूप है।' एक वैसा ही, किंतु कुछ कम व्यापक

क्रांतिकारी आन्दोलन, शिवाजी और गणपति-पूजन के नाम से बाल गंगाधर तिलक द्वारा महाराष्ट्र में प्रारंभ किया गया। क्रान्तिकारी संस्थाओं में एक संस्था 'मित्र-मेला' भी थी जिससे सावरकर और उनके भाई जुड़े थे। वह तिलक ही थे जिन्होंने सावरकर को लंदन जाने के लिए छात्रवृत्ति दिलवाई। वहां जा कर उन्होंने *इंडियन वार ऑफ इन्डिपेन्डेन्स* (Indian War of Independence) नामक पुस्तक सन् 1857 के सैन्य विद्रोह के बारे में लिखी और बम बनाने का तरीका भी सीखा। वह अपने साथ इस विषय की नियम पुस्तिका भी लाए। निष्कर्ष में ग्रीन लिखते हैं, "गांधी और उनके समर्थकों का न केवल बंगाल के क्रान्तिकारियों से बल्कि तिलक-सावरकर जैसे युद्ध-प्रिय राष्ट्रवादियों से भी घोर विरोध था। अनेक क्रान्तिकारी संस्थाओं को पं. श्यामजी कृष्णवर्मा नामक लन्दन स्थित भारतीय द्वारा विदेशी आर्थिक सहायता प्राप्त थी।"

सन् 1905 से 1915 के बीच भारत और इंग्लैण्ड में अनेक ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या हुई। वायसराय लॉर्ड हार्डिंग पर दिसम्बर 1912 में एक जुलूस के दौरान हमला हुआ, पर वे बाल-बाल बच गए। पीटर फ्रेंच उस आक्रमण का रोचक विवरण प्रस्तुत करते हैं, "सन् 1912 में, क्रिसमस के दो दिन पूर्व, हार्डिंग दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर उतरे और एक विशाल हाथी पर सवार हुए। वे चांदी के एक विशाल हौदे में बैठकर धीमे-धीमे चांदनी चौक की ओर बढ़े। किसी समय में यह मुगल साम्राज्य का बेहतरीन मुख्य मार्ग था जिसके दोनों ओर खूबसूरत दूकानें बनीं थी। 1857 के विद्रोह के परिणामस्वरूप यह स्थान शवों से पट गया था, जब विजयी अंग्रेजों ने असंख्य नवाबों, राजाओं और विद्रोहियों को यहां फांसी पर लटका दिया था। अब उसी मार्ग से वॉयसराय का जलूस जा रहा था जो एडविन ल्यूटेन्स और हरबर्ट बेकर द्वारा नई दिल्ली के निर्माण कार्य का उद्घाटन करने आए थे। महामहिम अधिक दूर तक नहीं जा पाए थे कि अचानक उनका हेल्मेट हवा में उछल पड़ा। छः मील दूर तक एक धमाका सुनाई दिया और राज-छत्र लिए हुए सेवक के टुकड़े-टुकड़े हो गए। एक अज्ञात भारतीय ने साम्राज्य की शक्ति के जीवंत प्रतीक के ऊपर बम फेंकने का साहस किया था। वायसराय के एक कान का ड्रम फ़ट गया और उनके शरीर में चुभे खपच्चे, कीलों तथा ग्रामोफोन की सुइयों को निकालने में न मालूम कितने वर्ष लगे होंगे। .... वह असफल हत्यारा कभी पकड़ा न जा सका। यह आक्रमण एक भारतीय राष्ट्रवादी द्वारा विद्रोही आतंकवाद का चरम उदाहरण था।"

सन् 1919 की अमृतसर कांग्रेस में जब गांधी ने 'सत्य और अहिंसा' के संबंध में वक्तव्य दिया, तब तिलक ने अत्यंत रूखेपन से प्रतिकार करते हुए कहा, "मेरे दोस्त! राजनीति में सत्य के लिए कोई स्थान नहीं है।" दो दशक पश्चात् सन् 1938 में

कांग्रेस अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस ने गांधी की अहिंसात्मक नीतियों का खुले आम विरोध किया और गुप्त रूप से भारत छोड़ कर जर्मनी और जापान चले गए। जापान के सहयोग से उन्होंने दक्षिण-पूर्व एशिया में जापान द्वारा बंदी बनाए ब्रिटिश फौज के भारतीय सिपाहियों को लेकर आज़ाद हिन्द फौज (Indian National Army) का गठन किया और भारत की ओर कूच कर दिया। उनका नारा था, "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।" यह गांधी के "चरखा और खड़ाऊं के स्थान पर बंदूक और जूते की नोक पर आजादी दिलाने का आह्वान था।" राजमोहन गांधी, इस प्रकार की चुनौतियों की ओर इंगित करते हुए कहते हैं, "केवल ये ही वे चुनौतियां नहीं थीं, जिनका उन्होंने सामना किया। ब्रिटिश हाथों से शासन की बागडोर उच्च जाति के लोगों के हाथों में चले जाने की आशंका से अनुसूचित जाति के लोग चिंतित थे। भारत के राजा-महाराजा अपनी ही प्रजा तथा कांग्रेस के इरादों को लेकर शंकालु थे। जमींदार अनुपस्थिति जमींदारों और शहर में रहने वाले ऋणदाताओं द्वारा पोषित छोटे खेतिहर किसानों से भयाकुल थे। सेना और पुलिस की नौकरी के लिए लालायित समुदाय एक दूसरे से भयग्रस्त थे। अपने विरोधियों से बचाव के लिए हर समुदाय, जाति या वर्ग अंग्रेजी राज की ओर उन्मुख होने लगता था और न चाहते हुए भी उनके आधिपत्य को और मजबूत करता जा रहा था, चाहे मन ही मन में सभी उनके विदेशी होने और उनके द्वारा पड़ने वाले बोझ के विरोधी थे।" भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और भारतीय जनता से अपनी अहिंसात्मक रणनीतियों का समर्थन पाने में गांधीजी इसीलिए सफल हुए क्योंकि इस महान नैतिक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति ने गरीबी से त्रस्त भारतीय जनता से स्वयं को जोड़ा और सन् 1920 के बाद चलाए गए अपने सत्याग्रह अभियानों में असाधारण सफलता प्राप्त की।

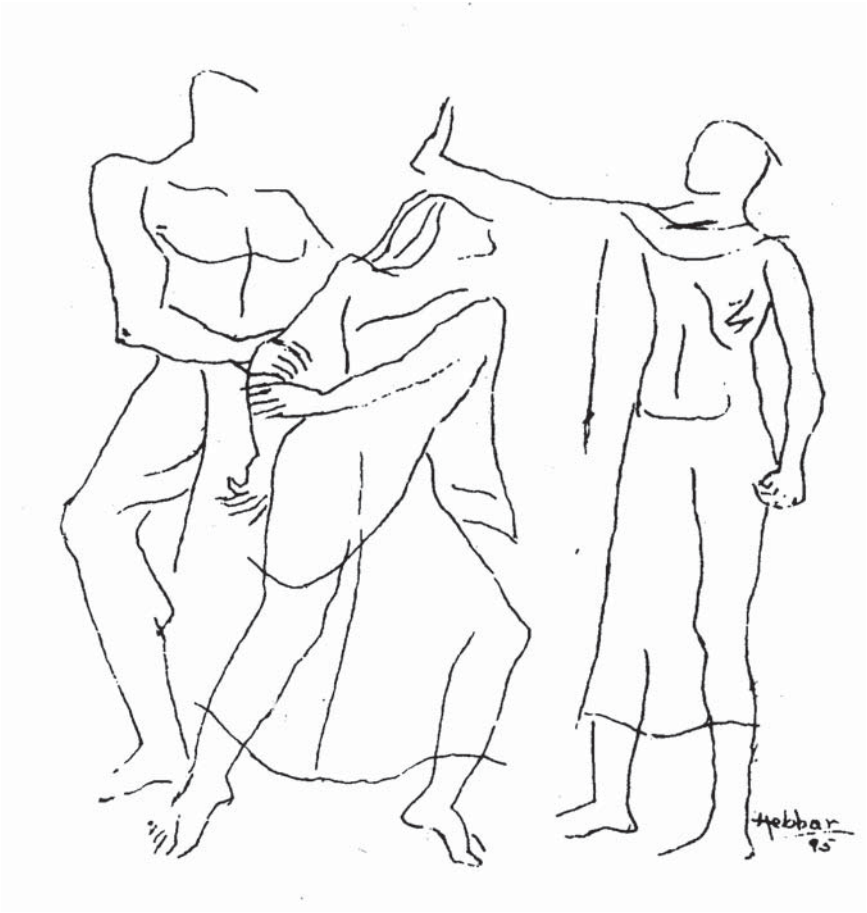

"शक्ति शारीरिक क्षमता से नहीं आती। यह
अदम्य इच्छा-शक्ति से प्रस्फुरित होती है।"
चित्रांकनः के. के. हेबार

गांधी के नेतृत्व के अवयव

क. दूरदृष्टि

गांधीजी के नेतृत्व का प्रमुख घटक था, उनकी दूरदृष्टि। वह दृष्टि, जो ईश्वर की सर्वोत्तम रचना अर्थात् मनुष्य को सत्य, न्याय, प्रेम और अहिंसा का दृढ़ता से पालन करते हुए, सद्भाव व शान्ति से रहने की क्षमता दे सकती है। "अहिंसा हमारा जातिगत नियम है, ठीक उसी तरह जैसे हिंसा पशु का नियम है। पाशविक व्यक्ति की अंतरात्मा प्रसुप्त होती है, वह बल प्रयोग के अतिरिक्त और कोई भी नियम नहीं जानता । मानव की गरिमा उसे एक अन्य नियम का पालन करने के लिए प्रेरित करती है— वह है अंतरात्मा का नियम। मानव जाति पर प्रेम का नियम ही राज्य कर सकता है। यदि हम पर हिंसा अर्थात् घृणा का राज्य होता तो हम बहुत पहले ही विलुप्त हो चुके होते। मानव जाति को केवल अहिंसा के मार्ग पर चल कर ही हिंसा से छुटकारा मिल सकता है, घृणा पर केवल प्यार द्वारा विजय पाई जा सकती है।"

अपने अनुभवों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उन्होंने यह अनुभव किया कि तानाशाहों और आततताइयों की ओर लोगों का भयवश झुकाव अल्पकालीन होता है। वे सारे साम्राज्य, जो तलवार की नोक पर कायम किए जाते हैं, अंततः इतिहास की धूल में लुप्त हो जाते हैं। केवल वे साम्राज्य जो सच्चाई, प्रेम और बड़े मनीषियों, भविष्यदृष्टा, पीर-पैगम्बर, साधु-संतों के आत्म-त्याग द्वारा स्थापित हुए, वे ही बचे रहे और समृद्ध भी हुए। क्योंकि मानव 'ईश्वर की दृष्टि' द्वारा निर्मित रचना है और सभी उस 'दैवी स्फुलिंग' से ओत-प्रोत हैं, अतः उनका नेतृत्व सत्य एवं प्रेम से होना चाहिए, न कि भय और घृणा से। हमें सत्य के लिए ही जीना और आवश्यकता पड़ने पर सत्य के लिए ही जान देने को तत्पर रहना चाहिए, किंतु किसी को भी चोट पहुंचाना या मारना नहीं चाहिए।

गांधी के लिए सत्य उतना ही वास्तविक और सर्वशक्तिमान था जितना स्वयं ईश्वर। वस्तुतः सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर ही वह सच्चाई है जो शाश्वत है। उनका कथन था, "विश्व सत्य की आधारशिला पर टिका हुआ है.... इसलिए कभी भी नष्ट नहीं किया जा सकता। संक्षेप में यही सत्याग्रह का सिद्धान्त है।" सत्य सही मार्ग है, और जो सही है वही शक्तिशाली है न कि उसका विलोम। वे अक्सर भगवद्गीता के दार्शनिक दृढ़ कथन, 'सत्यनास्ति परो धर्मः', अर्थात् सत्य का परिपालन करने से बड़ा कोई कर्तव्य नहीं है, को उद्धृत करते थे।"

सत्य में न्याय समाहित है और दोनों ही शांति प्राप्ति की अनिवार्य आवश्यकताएं हैं। "शांति तभी प्राप्त होगी, जब सत्य को अपनाया जाएगा और सत्य में न्याय सन्निहित है।" विरोधी के विचारों और आवश्कताओं को उचित महत्व दिया जाना ही न्याय की मांग है। "यदि हम अपने विरोधी के स्थान पर स्वयं को रख कर उसके दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करें तो संसार के तीन चौथाई दुःख और गलतफहमियां समाप्त हो जाएंगीं।" न्याय की भी यही मांग है कि अंतिम समझौता सभी सम्बद्ध लोगों को मान्य होना चाहिए।

यद्यपि गांधीजी युवावस्था से ही सत्य के प्रति उत्कट रूप से समर्पित थे, विशेष रूप से तब से जब से उन्होंने हरिश्चन्द्र की कहानी पढ़ी कि किस प्रकार असंख्य कठिनाइयों का सामना करते हुए भी, हरिश्चन्द्र ने सच्चाई का साथ नहीं छोड़ा। अहिंसा के प्रति गांधी जी का गहरा लगाव लगभग तीस वर्ष की आयु से आरम्भ हुआ जब उन्होंने ईसा मसीह का *सर्मन ऑन द माउन्ट* (Sermon on the Mount) और टॉल्सटॉय की *किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू* (Kingdom of God is Within You) पुस्तकों का अध ययन किया। अपने जन्म स्थान गुजरात के जैन सम्प्रदाय की अहिंसा की दृढ़ परम्पराओं की गहरी नींव ने स्वतः ही उन्हें मानसिक रूप से इसके लिए तैयार कर दिया था। इस प्रकार अहिंसा उनके लिए सत्य की प्राप्ति का अपरिवर्तनीय मार्ग बन गया। उनके लिए उसका अर्थ न केवल दूसरों को दी जाने वाली शारीरिक, मानसिक और संवेदनात्मक चोट से स्वयं को सर्वथा दूर रखना था, बल्कि घृणा और बदला लेने की भावना से स्वयं को सर्वथा मुक्त रखना भी था। बुराई से प्रत्येक व्यक्ति को घृणा करनी चाहिए एवं उसका सामना भी करना चाहिए, लेकिन बुरा करने वाले से भी प्यार करो, क्योंकि उसमें भी वह दैवी स्फुलिंग है जो प्यार द्वारा स्फुरित हो सकता है और उसका हृदय परिवर्तन कर सकता है। उनके अनुसार "अहिंसा इस धारणा पर आधारित है कि, सारांश में सभी मनुष्यों का स्वभाव सर्वथा एक समान है जो प्यार की पहल पर सदैव प्रतिक्रिया करता है। जिस तरह कठोर से कठोर धातु भी उपयुक्त ताप से पिघल जाती है, उसी तरह कठोरतम हृदय भी अहिंसा की उष्मा से पिघलता है। अहिंसा की उष्मा उत्पन्न करने की क्षमता की कोई सीमा नहीं है।"

उनके कथनानुसार, "समस्त अहिंसात्मक गतिविधियों का उद्देश्य सदैव आपसी समझौता है, नीचा दिखाना या मात देना नहीं, और विरोधी की अवमानना करना तो कदापि नहीं है।" और "एक अहिंसात्मक क्रांति, शक्ति और अधिकार छीनने का कार्यक्रम नहीं है। यह सम्बन्धों के परिवर्तन का कार्यक्रम है, जिसकी परिणति शक्ति या अधिकार के शांतिपूर्ण स्थानान्तरण से होती है।"

गांधी की विचारधारा को, यद्यपि कुछ लोगों ने घोर आदर्शवादी और कुछ अन्य लोगों ने देहाती कहा है, किन्तु वास्तव में यह विचारधारा अत्यन्त उन्नत, बहुआयामी और दार्शनिक दिव्यता से परिपूर्ण होते हुए भी अत्यन्त व्यवहारिक थी। विशाल रेडवुड वृक्ष की तरह जो क्षितिज को बहुत दूर तक देख सकता है किंतु साथ ही साथ वह अपनी वैभवशाली परिधि और भीतर फैली गहरी जड़ों द्वारा आस-पास होने वाले, पर्यावरणीय सूक्ष्म भेदों से भी पूर्ण अवगत होता है, उसी प्रकार गांधी को भी विभिन्न क्षेत्रों में, मानव व्यवहार के सूक्ष्म और बृहत प्रभावों की गहरी परख थी। अतः गांधीजी की विचार-दृष्टि निश्चित रूप से असाधारण कही जा सकती है।

ख. साहस और चरित्र

गांधी जन्म से साहसी नहीं थे। अपने बचपन और युवावस्था में वे बेहद शर्मीले थे। बचपन में वे सांपों, भूतों, चोर-डाकुओं और अंधेरे से बहुत घबराते थे। उनकी स्वामिभक्त सेविका रम्भा ने उन्हें इस प्रकार के भय पर विजय पाने के लिए बार-बार यह समझाया कि राम नाम का जाप इस पर विजय पाने का सबसे प्रभावी तरीका है। अपने स्कूल के दिनों में वे विद्यालय की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेते थे जिसमें खेलकूद भी शामिल थे। कई बार खेल के मैदान में उन्होंने अम्पायर (निर्णायक) की भूमिका भी निभाई। पर यह आत्म-विश्वास केवल उन लोगों तक ही सीमित था जिनसे वे भलीभांति परिचित थे।

सन् 1892 में लंदन से लौटने पर, जब उन्होंने बम्बई में वकालत शुरु की, उस समय तक वे इतने भीरु थे कि वे अपने पहले मुकदमे में ही बहस करने में असफल रहे। अपनी 'आत्मकथा' में वे लिखते हैं, "मैं खड़ा हुआ, पर मेरा हृदय मानो बैठ गया था। मेरा सिर घूम रहा था और मुझे ऐसा लगा जैसे पूरा अदालत कक्ष घूम रहा हो। पूछने को मुझे एक भी प्रश्न नहीं सूझा। न्यायाधीश जरूर हंस पड़े होंगे, किन्तु मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। मैं बैठ गया और मैंने अपने मुवक्किल से कहा कि मैं उसका मुकदमा नहीं लड़ सकता। मैं हड़बड़ा कर अदालत के कमरे से भाग खड़ा हुआ, बिना

यह जाने कि मेरा मुवक्किल हारा या जीता। मैं स्वयं पर शर्मिन्दा था और मैंने तब तक कोई भी मुकदमा अपने हाथ में न लेने का निर्णय किया जब तक मैं सही रूप में बहस करने का साहस नहीं जुटा पाता। सच तो यह है कि मैं दक्षिण अफ्रीका जाने तक दोबारा अदालत में गया ही नहीं।"

अपने डरपोक स्वभाव से निर्भीकता का परिवर्तन सर्वप्रथम उनमें तब आया जब दिसम्बर 1892 में, राजकोट में ब्रिटिश पोलिटिकल एजेंट चार्ल्स ऑलिवेंट द्वारा उन्हें अनादर के साथ दफ्तर से बाहर निकाल दिया गया। लन्दन से ही उनसे परिचित होने के कारण, गांधीजी अपने भाई लक्ष्मीदास की ओर से, चार्ल्स ऑलिवेंट द्वारा प्रतिकूल नोटिस जारी किए जाने के कारण मध्यस्थता करने आए थे। वे उस अशिष्ट व्यवहार के कारण इतने क्षुब्ध हुए कि उन्होंने उसका उल्लेख 'पहले झटके' के रूप में किया। इस 'पहले झटके' ने उनके जीवन का मार्ग इस प्रकार बदल दिया कि उन्होंने ऑलिवेंट के इस 'आघात' के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही करने की दिशा में गम्भीरता से विचार किया। विख्यात बैरिस्टर फिरोजशाह मेहता ने उन्हें उसके विपरीत सलाह दी। किंतु ऑलिवेंट के इस दुर्व्यवहार के बाद उन्होंने किसी अनुपयुक्त मामले में सहयोगी न बनने का और किसी भी प्रकार से भारत छोड़ने का निश्चय कर लिया। इस घटना के तुरंत बाद उनको दक्षिण अफ्रीका की डरबन स्थित अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी द्वारा उनके कानूनी सलाहकार बनने का निमंत्रण मिला, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। 'पहले झटके' के विषय में लेखक एन्थनी कोपले लिखते हैं, "इस झटके से गांधी ने एक बहुत दूरगामी शिक्षा ली, कि आने वाले समय में ईमानदारी और भ्रष्टाचार विरोधी सार्वजनिक नीति को परिवार, जाति और समुदाय की सभी मांगों से परे स्थान दिया जाए ताकि एक ऐसी मूल्यांकन प्रणाली विकसित हो जो भारतीय समाज को इस सर्वनाशी परिणाम से बचाए।"

उनकी प्रकृति में दूसरा आंतरिक परिवर्तन दक्षिण अफ्रीका पहुंचने के दस दिनों के भीतर ही आया। वे डरबन से जोहानिसबर्ग रेलगाड़ी से यात्रा कर रहे थे, जब उन्हें पीटर मेरिट्जबर्ग स्टेशन पर ट्रेन से उतार दिया गया जबकि उनके पास प्रथम श्रेणी का वैध टिकट था, वे उचित वेशभूषा धारण किए हुए थे और उन्होंने किसी अन्य सहयात्री को कोई असुविधा नहीं पहुंचाई थी। उनका अपराध केवल इतना था कि वे 'केवल श्वेत लोगों' के लिए आरक्षित डिब्बे में बैठे थे और उन्होंने 'वैन' में बैठने से इन्कार कर दिया। उस समय उनकी आयु मात्र चौबीस वर्ष थी। उन पर इस अपमानजनक घटना की प्रतिक्रिया ऑलिवेंट द्वारा अनादर से बिल्कुल अलग प्रकार से हुई। यह घटना उनके व्यक्तित्व के विकास और नेतृत्व की भावना के अंकुरित होने का प्रमाण है। अपनी 'आत्मकथा' में वे

लिखते हैं, "मैंने अपने कर्तव्य के बारे में सोचना आरम्भ किया। क्या मुझे अपने अधिकार के लिए लड़ना चाहिए या भारत वापस लौट जाना चाहिए?.... अपने उत्तरदायित्व को पूरा किए बिना भारत भाग जाना कायरता होगी। जिस कठिनाई का सामना मुझे करना पड़ा है वह केवल बाहरी थी, रंगभेदी पक्षपात की गहरी मानसिक बीमारी का एक लक्षण मात्र। यदि संभव हो तो मुझे प्रयास करना चाहिए कि इस बीमारी को जड़ से उखाड़ डालूं, चाहे इसके लिए मुझे कठिनाईयां क्यों न झेलनी पड़ें। गलत बातों का मैं उस हद तक सुधार करूं जितना रंगभेदी पक्षपात को समाप्त करने के लिए आवश्यक है।"

अपने 'पहले झटके' के विपरीत जब कि ऑलिवेंट से क्षमा याचना मंगवाना ही उनकी प्राथमिकता थी, इस बार अपनी गरिमा की रक्षा के लिए नहीं बल्कि रंगभेदी पक्षपात के गम्भीर रोग ने उन्हें उसके विरूद्ध कार्य करने को प्रेरित किया। यद्यपि मन ही मन वे दक्षिण अफ्रीका छोड़ने के लिए उत्कंठित होने लगे थे, उन्होंने दृढ़ता से स्वयं को रोका, क्योंकि ऐसा करना 'कायरता होती'। इस घटना के अनेक वर्षों बाद एक ईसाई धर्म-प्रचारक जॉन मॉट द्वारा यह पूछे जाने पर कि उनके जीवन का सबसे बड़ा 'रचनात्मक अनुभव' कौन सा था.... उन्होंने पीटर मेरिट्जबर्ग के अनुभव का उल्लेख किया। "उस अनुभव ने मेरे जीवन की धारा बदल दी। मेरी सक्रिय अहिंसा उसी दिन से शुरू हो गई और इसी यात्रा में ईश्वर ने मेरी परीक्षा ले डाली।" हालांकि इन दोनों ही झटकों ने गांधी की जीवन-धारा को बदल दिया, पहला झटका उनकी 'आत्म-प्रतिष्ठा की लड़ाई' का था, जबकि दूसरा रंगभेदी पक्षपात की सामाजिक बुराई के विरूद्ध जागरूकता लाने वाला था। हालांकि सत्याग्रह के सिद्धांत का प्रारम्भ अभी तेरह वर्ष दूर था।

पीटर मेरिट्जबर्ग में रेलगाड़ी से उतार दिए जाने के बाद अगली सुबह उन्होंने रेलवे के मुख्य-प्रबंधक को एक लम्बा तार भेजा। इस 'गहरी-बीमारी' को समझने और इसकी जड़ें कितनी गहराई तक पहुंची हैं, यह जानने के लिए वे स्थानीय भारतीयों से मिले और उनसे भी इस विरोध में सम्मिलित होने का आग्रह किया। प्रिटोरिया जाने के मार्ग में तथा वहां पहुंचने के पश्चात् उन्हें वहां और भी अपमान सहना पड़ा। उन्होंने भारतीयों की एक सभा आयोजित की और एक संघ की स्थापना का प्रस्ताव रखा, जिसके माध्यम से उनकी शिकायतों को अधिकारियों तक पहुंचाया जा सके। उन्होंने संघ को अपना 'अधिकतम समय और सेवाएं' देने का प्रस्ताव भी रखा। परिणाम-स्वरूप सन् 1894 में 'नैटाल इंडियन कांग्रेस' की स्थापना हुई। भारतीयों से प्रतिवर्ष लिए जाने वाले 25 पाउन्ड के पोल-टैक्स की राशि को घटा कर 3 पाउन्ड करवाना उनकी पहली सफलता थी। रेलवे

द्वारा, उपयुक्त पोशाक पहने हुए भारतीयों को प्रथम श्रेणी में यात्रा करने की अनुमति मिलना— उनकी दूसरी— सफलता शीघ्र ही प्राप्त हुई।

गांधी के एक अत्यधिक भीरु और शर्मीले स्वभाव के व्यक्ति से एक साहसी नायक में परिवर्तन का मूल कारण उनका आध्यात्मिक विकास था। उनका पालन-पोषण एक श्रद्धावान वैष्णव हिन्दू के रूप में हुआ था और वे जीवन-पर्यन्त भगवान राम के भक्त रहे। हालांकि उन्होंने भगवद्गीता लंदन पहुंचने तक नहीं पढ़ी थी, पर उन्हें लंदन में दो थियोसोफिस्टों के सम्पर्क में आने के बाद भगवद्गीता के विषय में पता चला। ये दोनों थियोसोफिस्ट एडविन ऑर्नल्ड के *सॉन्ग सेलेस्टियल* द्वारा भगवद्गीता से परिचित हुए थे। अपनी 'आत्मकथा' में वे लिखते हैं, "मुझे यह सोचकर बहुत शर्म आई कि मैंने उस दिव्य-गीत को न तो संस्कृत और न ही गुजराती में पढ़ा था। मैंने गीता उनके साथ पढ़नी शुरू की। दूसरे अध्याय के श्लोकों का मेरे ऊपर गहरा असर पड़ा, और वे पंक्तियां आज भी मेरे कानों में गूंजती हैं-

"यदि कोई किसी वस्तु का विचार करता है तो आकर्षण उत्पन्न हो जाता है,
आकर्षण से जाग्रत होती है कामना जो तीव्र आकांक्षा के रूप में धधकने लगती है,
तीव्र आकांक्षा से उत्पन्न होता है दुस्साहस, तब बुद्धि व स्मृति पूरी तरह भ्रमित हो जाती है,
तब अच्छे उद्देश्य तिरोहित हो जाते है, मस्तिष्क निचुड़ने लगता है
तब तक, जब तक कि उद्देश्य, बुद्धि और स्वयं मनुष्य सभी विनष्ट न हो जाएं।"

कालांतर में उन्होंने गुजराती और संस्कृत में गीता पढ़ी और उसे कंठस्थ कर लिया। वह उनके लिए 'आचरण की अचूक निर्देशिका', उनका 'दैनिक शब्दकोष' और 'सत्य के ज्ञान की सर्वोत्तम पुस्तक' बन गई। उसने उनको उन अनिवार्य सच्चाइयों से अवगत कराया जैसे 'आत्मा अमर है', 'मृत्यु जीवन का अंत नहीं है बल्कि एक नया आरंभ है' तथा 'जब झूठ और अन्याय का सामना करना पड़े तो मनुष्य का परम कर्तव्य है कि वह उसका विरोध करे।' बाइबिल तथा ईसामसीह के *सर्मन ऑन द माउन्ट* (Sermon on the Mount) से भी उनका परिचय लन्दन में ही हुआ। सत्य पर आधारित उनकी सत्याग्रह की रणनीति का दूसरा आधार स्तम्भ *सर्मन ऑन द माउन्ट* (Sermon on the Mount) था जिससे प्रेरित होकर उन्होंने अहिंसा को अपनाया।

टॉल्सटॉय की पुस्तक *किंगडम ऑफ़ गॉड इज विदिन यू* (Kingdom of God is Within You) 1894 में डरबन में पढ़ कर वे अभिभूत हो गए, जिसने उन पर एक अमिट छाप पड़ी। उन्होंने रस्किन की पुस्तक *अन टु दिस लास्ट* (Unto this Last) 1904 में

जोहानिसबर्ग से डरबन तक की रेल यात्रा के दौरान पढ़ी। अपनी 'आत्मकथा' में वे लिखते हैं, "इससे मेरे जीवन में तत्काल एक व्यवहारिक परिवर्तन आया। मुझे विश्वास है कि रस्किन की इस महान पुस्तक में मैंने अपनी मन की गहराईयों में निहित दृढ़ विश्वासों को पाया।" वे उस पुस्तक द्वारा इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसका गुजराती में अनुवाद कर, उसका शीर्षक *सर्वोदय* (Sarvodaya) रखा। यह उनके आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रमों का प्रकाश-स्तम्भ बन गया।

11 सितम्बर 1906 को जोहानिसबर्ग के एम्पायर थिएटर में आयोजित एक विशाल आम-सभा, जिसको गांधी ने स्वयं आयोजित किया था और लुई फिशर के अनुसार जिसमें उन्होंने हिमालय जैसा अभूतपूर्व आत्मविश्वास प्रदर्शित किया। इस ऐतिहासिक सभा के तुरंत बाद ही 'सत्याग्रह' का जन्म हुआ। इस सभा में उपस्थित सभी लोगों ने एक सामूहिक शपथ ली। उसके पश्चात् उन्होंने, लोगों द्वारा निर्णय किए इस नए अहिंसक संघर्ष को उचित नाम देने के लिए एक पुरस्कार की घोषणा की। उनके चचेरे भाई मगन लाल ने सदाग्रह (अच्छे काम के लिए आग्रह) शब्द सुझाया। उन्होंने इसी नाम को परिमार्जित कर सत्याग्रह (सच्चाई का आग्रह से पालन) नाम दिया। लुई फिशर व्याख्या करते हुए लिखते हैं, "सत्याग्रह, गांधी के लिए सत्य का प्रमाण था, अपने विरोधी को कष्ट पहुंचाकर नहीं बल्कि स्वयं को कसौटी पर कसकर। इसके लिए आत्म-नियंत्रण की आवश्यकता होती है। सत्याग्रही के हथियार उसके अतंर्मन में होते हैं। सत्याग्रह शांतिपूर्ण होता है। यदि शब्द विरोधी को प्रभावित करने में असफल रहें तो शायद पवित्रता, विनम्रता और ईमानदारी ऐसा कर सकेगी। विरोधी की गलती सहानुभूति और धैर्य से छुड़ानी होती है। विरोधी की गलती को छुड़ाना है, उसे कुचलना या दबाना नहीं है, बदलाव लाना है, विनाश नहीं करना है.... मनुष्य का सिर काट कर उसके मस्तिष्क में नए विचारों को नहीं डाला जा सकता, न ही आप विरोधी के हृदय में नई भावना भरने के लिए खंजर से वार करेंगे।"

एम्पायर थियेटर, जोहानिसबर्ग
(यह भवन अब विद्यमान नहीं है।)

जब तक 'सत्याग्रह' का जन्म हुआ गांधी ने अपने कानूनी-दफ्तर और घर को छोड़ दिया एवं वे अपने परिवार के पास 'फीनिक्स आश्रम' में चले गए। उन्होंने अपनी

सारी सम्पत्ति और अर्जित धन का एक कोष बना दिया ताकि सत्याग्रही परिवारों की देख-भाल हो सके और अपनी बीमा पॉलिसी को स्खलित हो जाने दिया, इस आशय से कि परिवार की देख-रेख ईश्वर करेगा। उन्होंने ब्रह्मचर्य की शपथ भी ली। इस प्रकार से एक उत्कृष्ट नेतृत्व की मजबूत नींव रखी जा सकी। यह नींव पुख्ता हुई "ईश्वर के भी द्वारा परित्यक्त देश दक्षिण अफ्रीका में जहां मैंने अपना ईश्वर पाया।"

जुलाई 1907 में गांधी ने अपना पहला सत्याग्रह आरंभ किया। यह 'एशियन रजिस्ट्रेशन एक्ट' (Asian Registration Act) के विरुद्ध था जो दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों के लिए एक 'काला कानून' था। गांधी के नेतृत्व में उन्होंने निर्णय लिया कि वे पंजीकरण नहीं करवाएंगे। ट्रांसवाल के इंटीरियर मिनिस्टर जनरल स्मट्स ने गांधी को एक समझौते के लिए छल से तैयार कर लिया कि भारतीय स्वेच्छापूर्वक अपना पंजीकरण करा लें और उसके पश्चात यह कानून खारिज कर दिया जाएगा। जब ऐसा नहीं हुआ तो गांधी और उनके समर्थक सत्याग्रहियों ने सार्वजनिक रूप से अपने परमिट जोहानिसबर्ग की हमीदिया मस्जिद के सामने जला दिए। इसके लिए उन्हें बन्दी बना लिया गया। जेल से बाहर आने पर उन्होंने जोहानिसबर्ग के बाहरी क्षेत्र में 'टॉल्सटॉय फार्म' की स्थापना की ताकि सत्याग्रहियों के परिवारों को वहां बसाया जा सके।

गांधी ने हेनरी डेविड थोरो की *सिविल डिसओबिडिएंस* (Civil Disobedience) नामक पुस्तक अक्टूबर 1908 में पढ़ी जब वे वोक्सरस्ट जेल में थे। यह पुस्तक जेल के पुस्तकालय में थी। गांधी को यह एक 'पांडित्यपूर्ण शोध निबंध' लगा। बंदी होने के विषय में लिखे थोरो के विचारों का उन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। "मुझे एक क्षण भी बन्दी होने की अनुभूति नहीं हुई और जेल की दीवारें मुझे पत्थर व गारे की बहुत बड़ी बरबादी के रूप में प्रतीत हुईं.... वे मुझ तक पहुंच नहीं पाए इसलिए उन्होंने मेरे शरीर को सजा देने की ठान ली थी।" हालांकि 'सर्वेन्ट्स ऑफ इन्डिया सोसाइटी' (Servants of India Society) के कोदन्ड राव को लिखे पत्र में उन्होंने कहा, "यह कथन कि, मैंने सविनय अवज्ञा के विचार को थोरो के लेखों से अपनाया है, सही नहीं है। दक्षिण अफ्रीका में सत्ता के विरोध का विचार थोरो के लेखों को पढ़ने के बहुत पहले काफी आगे तक जा चुका था। किंतु तब यह आन्दोलन एक निष्क्रिय विरोध के रूप में जाना गया। क्योंकि यह अपूर्ण था, मैंने गुजराती पाठकों के लिए 'सत्याग्रह' शब्द गढ़ा था।"

सितम्बर 1913 में ट्रांसवाल सुप्रीम कोर्ट (Transvaal Supreme Court) के इस निर्णय के विरोध में कि हिन्दू, मुसलमान और पारसी विवाह वैध नहीं माने जाएंगे, गांधी

ने दो हजार से अधिक सत्याग्रहियों के जनसमूह के साथ मार्च करते हुए ट्रांसवाल में प्रवेश किया। उसके साथ ही न्यू-कासल कोयला खदानों के करारबद्ध भारतीय कामगार भी हड़ताल पर चले गए। इस बात से स्मट्स ने आत्म-समर्पण कर दिया। सन् 1914 में गांधी-स्मट्स समझौता हुआ और तदुपरांत जून 1914 के 'इंडियन रिलीफ एक्ट' (Indian Relief Act) ने अनेक दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों की कठिनाइयों की समाप्ति की, तथा हिन्दू, मुस्लिम एवं पारसी विवाहों को मान्यता दी और बिना समझौते वाले भारतीय मजदूरों द्वारा दिए जाने वाले तीन पाउन्ड के घृणित वार्षिक कर को समाप्त कर दिया। गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में समझौते को मैग्ना कार्टा (Magna Carta) 'भारतीयों के महाधिकार पत्र' के रूप में उल्लेख किया है। यह उनके नेतृत्व की पहली महान उपलब्धि थी।

1918 में पीटर मैरिट्जबर्ग की घटना के पच्चीस वर्ष बाद उन्होंने लिखा, "हमें डरपोक समझा जाता है" और सत्याग्रह को भारतीयों के रूपान्तरण की उस तरह की तकनीक के रूप में प्रयोग करने का सुझाव दिया, जिस तरह सत्याग्रह ने उन्हें एक अत्यन्त डरपोक व्यक्ति से एक साहसी व्यक्ति के रूप में परिवर्तित कर दिया था। उनके लिए अहिंसा 'वास्तव में साहसी व्यक्ति का हथियार' था और 'जो डर जाता है, वह मर जाता है' कहावत सत्य थी। एक अहिंसक योद्धा के कवच के रूप में ईश्वर के प्रति उनका अडिग विश्वास था तथा उन्हें किसी भी चीज से भय नहीं था, मृत्यु से भी नहीं, क्योंकि मृत्यु भी विजय दे सकती है। उन्हीं के शब्दों में "वे मेरे शरीर को कष्ट दे सकते हैं, मेरी हड्डियां तोड़ सकते हैं, मेरी हत्या भी कर सकते हैं.... पर तब उनके पास मेरा मृत शरीर होगा, आज्ञा पालन नहीं।"

निडरता के विषय में उनके अन्य उल्लेखनीय कथन हैं:-

"भय और सत्य आपस में विरोधी तत्व हैं।"

"भय का दास होना दासता का निकृष्टतम रूप है।"

"हम जो काम सही समझते हैं, उसको निर्भीकता से करना ही सबसे सुनहरा नियम है।"

"मुझे सबसे बड़ी सहायता तुम तब दोगे जब अपने हृदय से भय का पूर्ण परित्याग कर दोगे।"

"तुम नहीं जानते, जब मैं जवान था कितना डरपोक था। आज मैं उतना डरपोक नहीं हूं। मेरे उदाहरणों को गुणा करोगे तो तुम्हारे सन्मुख पूर्णरूप से भय-रहित पूरा राष्ट्र खड़ा होगा।"

ग. करुणा, समर्पण भावना और दृढ़ संकल्प

दलित और अशक्त लोगों पर निरंतर पूरा ध्यान रखना गांधी के करुण भाव का स्पष्ट प्रमाण है। उन्होंने ऐसे लोगों के साथ सहज ही तादात्म्य स्थापित किया, सदैव उनके प्रति सहानुभूति का भाव रखा, उन्हीं की तरह वेश-भूषा धारण की और 1917 के पश्चात् तो उन्हीं की तरह झोपड़ी में रहने लगे, यद्यपि उनका बचपन और युवावस्था सापेक्षिक रूप में विलासिता में बीता था और उन्होंने ब्रिटिश कानूनी उपाधि भी प्राप्त की थी। उन्होंने दृढ़ता पूर्वक कहा, "मैं उस भारत के लिए कार्य करूंगा जिसमें सबसे दरिद्र व्यक्ति भी यह अनुभव करे कि यह उसका अपना देश है, जिसके निर्माण में उसकी अपनी राय भी प्रभावपूर्ण है।"

दांडी मार्च के पहले लार्ड इर्विन को संबोधित अपने लम्बे पत्र में उन्होंने लिखा, "ब्रिटिश राज को मैं एक अभिशाप के रूप में क्यों मानता हूं?.... इसलिए क्योंकि उसने करोड़ों मूक लोगों को एक क्रमबद्ध एवं नियोजित तरीके से, लगातार उनका शोषण कर, उन पर महंगी विध्वंसक सेना और नागरिक प्रशासन का वह बोझ डाल कर जिसे हमारा देश वहन नहीं कर सकता, अशक्त बना दिया है।" अपने भाषणों एवं लेखों में करोड़ों मूक दलितों का उल्लेख उन्होंने अनेकों बार किया है। उनका खादी को महत्व देने का प्रमुख कारण भी उन दरिद्रों को लाभ पहुंचाने के लिए था। उनका कथन था, "खादी का अर्थ है गरीबों को रोजगार देना और भारत को आजाद कराना। अंग्रेजों ने भारत को इसलिए जकड़ रखा है क्योंकि यहां लंकाशायर के लिए लाभकारी बाजार उपलब्ध है...."

गांधीजी का करुणा भाव उनके द्वारा भारत के नए नेताओं को दिए गए 'ताबीज' सें भी पुष्ट होता है। "जब भी शंका हो अथवा अहं बहुत बढ़ जाये तब निम्नलिखित कसौटी अपनाओ। किसी अत्यन्त गरीब और कमजोर आदमी का चेहरा याद करो जिसे तुमने कभी देखा हो, और अपने-आप से प्रश्न करो कि जो कदम तुम उठाने का विचार कर रहे हो वह उस व्यक्ति के लिए उपयोगी होगा या नहीं? क्या उससे उसे कुछ भी लाभ होगा?

मूर्तिकारः बी. बी. तालिम

क्या उससे वह पुनः उस स्थिति में आ सकेगा कि अपने जीवन और अपने भाग्य को नियन्त्रित कर पाये? दूसरे शब्दों में, क्या तुम्हारे कार्य से कोटि-कोटि भूखे और आध्यात्मिक रूप से वंचित लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा?"

उनकी करुणा का सबसे उत्तम व प्रत्यक्ष प्रमाण है, अगस्त 1947 में नोआखाली की नंगे पांव यात्रा। जब उनकी भतीजी मनु ने इसका विरोध किया तब उन्होंने उत्तर दिया, "हम अपने मंदिरों, मस्जिदों और गिरिजाघरों में जूते पहन कर नहीं जाते हैं। .... अब हम उस धरती पर चल रहे हैं जहां लोगों ने अपने प्रियजनों को खोया है। मैं उस स्थान पर चप्पल कैसे पहन सकता हूं?"

गांधी की समर्पण भावना का प्रमाण, विशेष रूप से भारत की एकता और अखण्डता के प्रति उनका आग्रह, सितम्बर 1944 में जिन्ना के साथ हुई वे चौदह मुलाकातें हैं, जिनके दौरान उन्हें प्रधानमंत्री पद देने का प्रस्ताव भी रखा गया जिसे उन्होंने नकार दिया। यद्यपि गांधीजी की राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्ता जिन्ना से कहीं अधिक थी किंतु उन्होंने इन चौदह मुलाकातों के लिए जिन्ना के बम्बई स्थित निवास स्थान, 10 माउन्ट प्लेजेन्ट रोड पर जाने में तनिक भी संकोच नहीं किया।

गांधी की सम्पत्ति

जब जनवरी 1948 में गांधीजी की हत्या हुई, उनके पास केवल लपेटने के लिए दो जोड़ी सूती धोतियां, एक हाथ की घड़ी, उनकी ऐनक, तीन धार्मिक पुस्तकें, लकड़ी के दो भोजन-पात्र और चम्मच, दो जोड़ी लकड़ी की खड़ाऊं तथा एक छड़ी मात्र थी। आत्म-त्याग की ऐसी समर्पण भावना अद्‌भुत और बेमिसाल है।

गांधी की दृढ़ निश्चय की भावना का उदाहरण हमें इस घटना से मिलता है कि मार्च 1919 से आरम्भ किया गया सविनय अवज्ञा आन्दोलन हिंसक घटनाओं के होने पर उन्होंने तुरंत समाप्त कर दिया था। आन्दोलन समाप्त करते हुए उन्होंने कहा "मैंने सत्याग्रह के लिए लोगों की उपयुक्तता जानने के पहले ही उनसे सविनय अवज्ञा करने का आग्रह किया था जो मेरी भयंकर भूल थी। मेरी यह भूल हिमालय पर्वत से भी विशाल थी।"

इस पर टिप्पणी करते हुए विंसेंट शीन ने लिखा, "भारतीय जनता के लिए गांधी के जीवन का कोई भी अन्य कार्य इतना स्तम्भित कर देने वाला नहीं था जितना कि उस समय सत्याग्रह को समाप्त कर देना। समस्त भारतवासियों— हिन्दू और मुसलमान, दोनों को ही यह समझने में बहुत समय लगा कि यह दुबला-पतला व्यक्ति जो कहता है वही करता है। उसका निश्चय लोहे के समान है और अपने सिद्धान्तों के विरूद्ध कोई भी कार्य करने के लिए उसे फुसलाया नहीं जा सकता।"

उनका दृढ़-प्रतिज्ञ होना, सितम्बर 1932 की उस ऐतिहासिक घटना से भी दृष्टिगोचर होता है, जब अंग्रेजी शासन द्वारा अछूतों के लिए अलग मतदान नियत किए जाने के विरुद्ध उन्होंने आमरण अनशन करने की ठान ली थी। उन्होंने इस बात को एक घृणित षडयंत्र के रूप में देखा जिसके द्वारा हिन्दुओं के बीच में फूट पड़ जाए और उनके मन-मस्तिष्क में छुआछूत जड़ तक घुस जाए। उन्होंने अपना अनशन तभी तोड़ा जब अछूतों के नेता डा. बी. आर. अम्बेडकर गांधी के अछूतों के लिए समान व्यवहार के आश्वासन से सहमत हुए और उन्होंने आश्वासन दिया कि उनका कोई भी व्यक्ति अछूतों के लिए निर्धारित अलग मतदान केन्द्र का उपयोग नहीं करेगा। सितम्बर 25, 1932 के पूना समझौते में इन आश्वासनों को सम्मिलित किया गया और यह गांधी की दो-तरफा विजय का एक अच्छा उदाहरण है। अछूतों के लिए अलग मतदान क्षेत्रों के बदले में उनके लिए आरक्षित सीटों की संख्या में वृद्धि हुई और अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा अम्बेडकर को 71 आरक्षित स्थानों के बदले 149 स्थानों की पेशकश की गई। पूना समझौते के विषय में राजमोहन गांधी लिखते हैं, "जेल की सलाखों के पीछे से एक कैदी ने राष्ट्र की रूढ़ियों को हिला दिया और अपनी इच्छा एक साम्राज्य के ऊपर लाद दी।.... सारा संसार चकित रह गया। *बोस्टन ग्लोब* के एक लेखक ने कहा कि, "जिस ऋण का गांधी जी ने भुगतान कराया है वह एक मानवीय अंतर्विवेक का अन्य मानवीय अंतर्विवेकों के ऊपर ऋण है।"

गांधी की करूणा, समर्पण भावना और दृढ़ निश्चय की भावना का साकार रूप जब दृष्टिगोचर होता है जब उन्होंने 15 अगस्त 1947 के स्वतंत्रता दिवस समारोह में दिल्ली न जा कर साम्प्रदायिक हत्याओं को रोकने के लिए कलकत्ता जाने का निर्णय लिया। "मेरी अंतरात्मा की आवाज मुझे पूरे संसार से लड़ते रहने को प्रेरित करती है चाहे मैं अकेला ही हूं।" संकट के ऐसे क्षणों में उनका प्रिय गीत, रवीन्द्र नाथ टैगोर का 'ऐकला चॉलो रे' था, जिसका अनुवाद इस प्रकार है-

यदि तेरी आवाज पर कोई न आए
तो तू अकेला चलता जा
यदि भय करे कोई
यदि सभी मुख मोड़ रहें बोले ना कोई
तो फिर ओ अभागे
मुक्त कंठ अपनी बात कह अकेला रे....

जेम्स के. मैथ्यूज गांधी के दृढ़ संकल्प की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, "उनके सफल नेतृत्व का बहुत कुछ श्रेय उनके उद्देश्य की दृढ़ता में निहित था। वे बार-बार उसकी पुनरावृत्ति करते थे ताकि उनके और उनके सहयोगियों के सन्मुख वह उद्देश्य सदैव स्पष्ट बना रह सके।"

घ. सम्प्रेषण निपुणता

गांधी की सम्प्रेषण निपुणता प्रारंभ में दक्षिण अफ्रीका के और ब्रिटिश अधिकारियों को पत्र लिखते हुए निखरी। 1903 में, दक्षिण अफ्रीका में, उन्होंने अपना पहला समाचार पत्र *इंडियन ओपिनियन* (Indian Opinion) आरंभ किया तथा बाद में भारत में *यंग इंडिया* (Young India) और *हरिजन* (Harijan) की अंग्रेजी में और *नवजीवन* (Navajivan) की गुजराती में शुरूआत की। इन सभी समाचार पत्रों में उन्होंने सामयिक विषयों पर खुल कर लिखा, ताकि सभी सम्बद्ध लोगों और विरोधियों को भी उनके विचारों, कार्यक्रमों और योजनाओं की पूरी जानकारी मिलती रहे।

उन्होंने अपनी उल्लेखनीय पुस्तक *हिन्द स्वराज* (Hind Swaraj), 1909 में 13 से 23 नवम्बर के बीच, *किल्डोनन कासल* नामक जहाज पर दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए, मात्र दस दिनों में लिखी। इसे भारत की आजादी की घोषणा नीति के रूप में जाना जाता है। वे लंदन में अपने असफल प्रचार के बाद दक्षिण अफ्रीका लौट रहे थे। इस पुस्तक को पूर्ण रूप से जहाज में उपलब्ध स्टेशनरी की सहायता से लिखा गया था और कुछ ज्ञात स्रोतों के अनुसार 'जब उनका दाहिना हाथ थक जाता था तो वे बाएं हाथ से लिखना प्रारंभ कर देते।' इस प्रकार उन्होंने 276 पृष्ठों की पांडुलिपि के चालीस पृष्ठ बाएं हाथ से लिख डाले थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई दैवीय प्रेरणा उन्हें प्रोत्साहित कर, उन्हें लेखन के लिए शक्ति प्रदान कर रही थी। एन्टनी परेल लिखते हैं, *"हिन्द स्वराज* वह बीज है जिससे गांधी की विचारधारा का वृक्ष विशालकाय रूप में विकसित हुआ है। उन सभी के लिए जो उनके विचारों को अधिक व्यवस्थित रूप में पढ़ना चाहते हैं, यह पुस्तक वह आदर्श है,

जिसके द्वारा उनकी अपनी आत्मकथा सहित अन्य रचनाओं के सैद्धांतिक महत्व को आंका जा सकता है।" इस पुस्तक की तुलना रूसो के *सोशल कोन्ट्रैक्ट* (Social Contract) और सेंट इग्नेशियस लॉएला (St. Ignatius Loyola) की *स्पिरिचुयल एक्सरसाइजज* (Spiritual Exercises) जैसी विविध पुस्तकों से की जाती है। 1927 में प्रकाशित *सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा* उनके अन्य सभी लेखों की तुलना में सबसे अधिक सम्प्रेषण करने वाली पुस्तक है। इसमें बहुत ही स्पष्ट और खुले रूप में उनके बचपन के संस्मरण, लालन-पालन के प्रसंग, युवा कमजोरियां, कम उम्र में विवाह, तीव्र वासना की ललक और उसके परिष्कार के प्रयास एवं उन ईश्वरीय और साहित्यिक प्रभावों का उल्लेख किया गया है, जिन्होंने उनके व्यक्तित्व के विकास को संवारा और साकार किया।

उनके सम्प्रेषण के अन्य तरीके थे— सत्याग्रह, पद-यात्राएं, उपवास या अनशन तथा प्रार्थना-सभाएं। इनमें से सबसे प्रभावशाली रहे हैं चम्पारन, खेड़ा, बारदोली और 'भारत छोड़ो' सत्याग्रह आंदोलन, ट्रांसवाल और दांडी की पदयात्राएं तथा 1932 व 1947 के उपवास।

उनकी ऐतिहासिक नमक आंदोलन की पद-यात्रा और खुले आम नमक कानून का विरोध, विचारों के संप्रेषण का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसका समाचार विश्व के एक हज़ार

गांधी नमक यात्रा पर

उनका हर अनशन सम्पूर्ण भारत ही नहीं, अंग्रेजों को भी बेचैन करता रहा। उनके 1932 के उपवास के विषय में फिशर ने लिखा, "उपवास प्रारंभ करने के एक दिन पूर्व, पहली बार इलाहाबाद के बारह मंदिरों का प्रवेश-द्वार हरिजनों के लिए खोल दिया गया.... 26 सितम्बर तक हर दिन और 27 सितम्बर से गांधी के जन्मदिन, 2 अक्टूबर तक के समय को 'छुआछूत उन्मूलन सप्ताह' के रूप में मनाया गया, जब अनेकों धार्मिक स्थानों के द्वार हरिजनों के लिए खुल गए.... गांधी के उपवास ने भारत के हिन्दू हृदयों को छू लिया था। उनके पास, मनुष्य के आंतरिक हृदय के तारों को छूने की, एक कलाकार जैसी प्रतिभा थी.... उनके उपवास उनके मनोभावों को दूसरों तक पहुंचाने का सशक्त साधन थे। उनके अनशन की खबर प्रत्येक समाचार पत्र में छपती थी। पढ़ने वाले लोगों ने, न पढ़ने वाले लोगों को भी बताया। शहर जान जाते, शहर में व्यापार करने वाले व्यापारी, किसान जान जाते और फ़िर यह खबर गांवों तक पहुंच जाती....।"

अगस्त 1947 में कलकत्ता के अनशन के बाद साम्प्रदायिक झगड़ों के थम जाने पर लॉर्ड माउन्टबेटन ने उनकी सराहना करते हुए लिखा, "पंजाब में हमारे पचपन हजार सिपाही हैं और बहुत बड़ी संख्या में साम्प्रदायिक झगड़े हो रहे हैं। बंगाल में हमारी सेना का केवल एक व्यक्ति है और वहां कोई दंगा नहीं है। क्या मैं उस एक व्यक्ति की सुदृढ़ रक्षक शक्ति को प्रणाम कर सकता हूं?" इतिहासकार ई. डब्ल्यू. आर. लुम्बी ने लिखा, "उनकी विजय हर प्रकार से सम्पूर्ण थी और जो शांति उन्होंने हासिल की, वह निश्चित ही स्थिर रहने वाली थी।.... वस्तुतः उन्होंने एक चमत्कार कर दिखाया था.... संभवतः आधुनिक काल का सबसे बड़ा चमत्कार।"

उनकी प्रार्थना सभाएं आम तौर पर उनके आश्रम में होती थीं, किंतु कभी-कभी सार्वजनिक स्थानों में भी आयोजित की जाती थीं। ऐसे समय में उनमें हजारों व्यक्ति शामिल होते थे। कलकत्ते में 3 फरवरी 1946 की प्रार्थना सभा में अनुमानतः 5 लाख से भी अधिक व्यक्ति उपस्थित थे। प्रत्येक प्रार्थना सभा के पश्चात्, वे सामयिक विषयों पर चर्चा करते थे, उनका संदेश भारत और विदेशों के करोड़ों व्यक्तियों तक पहुंच जाता था।

गांधी के प्रभाव का, नेहरू इस प्रकार उल्लेख करते हैं, "उनकी आवाज अन्य व्यक्तियों से कुछ अलग थी। वह शांत और धीमी थी किंतु फिर भी वह बहुसंख्यकों के शोर के बीच भी सुनी जा सकती थी, वह आवाज बहुत भद्र और मधुर थी किंतु फिर भी उसके भीतर कहीं न कहीं लोहे की सी दृढ़ता छिपी हुई थी.... हम पूरी तरह से समझ नहीं पाते थे कि वह क्या थी.... पर हम सब रोमांचित थे।"

1995 के 'गांधी शांति प्रतिष्ठान व्याख्यान' में प्रसिद्ध स्तंभ-लेखक निखिल चक्रवर्ती ने इस बात पर ध्यान आकर्षित किया कि गांधी लिखे हुए शब्दों को कितना महत्व देते थे और उनके साप्ताहिक पत्र *इंडियन ओपिनियन* (Indian Opinion), *यंग इंडिया* (Young India) और *हरिजन* (Harijan) के नौ विभिन्न भाषाओं में, बारह परिशिष्ट निकलते थे। उनकी अन्य सभी गतिविधियों और जेल में बंदी होने के बावजूद भी यह कार्य सुचारू रूप से चलता रहता था। उन्होंने कहा, "एक संदेश प्रेषक के रूप में गांधीजी को अपने पाठकों और श्रोताओं की समझ के स्तर को समझने की आवश्यकता का भान था। .... एक संचारक के सही मानदण्ड के अनुसार गांधी ने संघर्ष का जो तरीका चुना, उसका लक्ष्य और यहां तक कि उनके प्रत्येक अभियान की भाषा जन-साधारण के स्तर और उनकी चेतना के अनुरूप थी।"

गांधी की संप्रेषण प्रवीणता ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम को एकांगी, छोटे, परिष्कृत, शहरी समुदाय से ले जा कर एक सर्व-जन अभियान का रूप दे दिया जिसमें समाज के हर वर्ग के करोड़ों भारतीयों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। यह इतिहास का सबसे बड़ा ''जनशक्ति का संघर्ष'' था।

ड. संगठनात्मक कुशलता और चमत्कारी व्यक्तित्व

गांधी ने जिस प्रकार से 1915 और 1930 के बीच भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन को पुनः संजोया, वह उनकी संगठनात्मक कुशलता का सर्वोत्तम उदाहरण है। जब वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हुए, उसमें कई कमियां थीं। यद्यपि भारत की 25 करोड़ जनता का मात्र एक प्रतिशत भारतीय अंग्रेजी भाषा में बातचीत करता था, उसकी सारी कार्यवाही अंग्रेजी में होती थी। इसमें मुख्य रूप से हिन्दू, ब्राह्मण और ऊंची जाति के लोग ही शामिल थे। उसकी सदस्यता मुख्यतः कलकत्ता, बंबई, और मद्रास जैसे बड़े शहरों तक ही सीमित थी। उसमें प्रभावपूर्ण कार्यकारी प्रशासन तंत्र की कमी थी।

गांधीजी का पहला कदम था— गुजरात के कोचरब गांव में एक आश्रम की स्थापना करना। इस कार्य से उन्होंने ग्रामीण भारत में किसानों के समीप रह कर काम करने के लिए अपना आधार मजबूती से स्थापित कर दिया। कुछ महीनों के पश्चात् जब यह क्षेत्र कॉलरा से ग्रसित हुआ तब इस आश्रम को अहमदाबाद के समीप साबरमती गांव में स्थानान्तरित किया गया। ये दोनों आश्रम, उनके दक्षिण अफ्रीका के 'फीनिक्स आश्रम'

और 'टॉल्सटॉय फार्म' की तरह, सामुदायिक जीवन-यापन और अहिंसा के प्रशिक्षण केन्द्र बन गए। उनके कथनानुसार, "प्रशिक्षण, सविनय अवज्ञा के लिए भी उतना ही आवश्यक है जितना कि सैनिक विद्रोह के लिए।"

इसके पश्चात् उन्होंने प्रांतीय स्तर पर, अंग्रेजी भाषा का बहिष्कार कर, कार्य-संचालन भारतीय भाषाओं में करने पर आग्रहपूर्वक बल दिया। 11 नवम्बर 1917 को गुजरात की पहली राजनैतिक सभा में उन्होंने निर्णय लिया कि सभी भाषण गुजराती भाषा में होंगे। जिन्ना समेत हर व्यक्ति की उसमें सहमति थी, केवल तिलक ने मराठी में भाषण दिया। किंतु अंग्रेजी भाषा में कोई भी नहीं बोला।

उन्होंने फिर नये क्षेत्रों के नेताओं को सम्मिलित किया जैसे कि गुजरात, संयुक्त प्रांत (जिसकी राजधानी इलाहाबाद थी) और बिहार। इन नेताओं में विशेष उल्लेखनीय हैं वल्लभभाई पटेल, महादेव देसाई, राजेन्द्र प्रसाद, विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण, जे. बी. कृपलानी, सी. राजगोपालाचारी और सबसे विशेष रूप में मोतीलाल नेहरू और जवाहर लाल नेहरू। कुछ वर्षों के पश्चात् असाधारण व्यक्तित्व वाले खान अब्दुल गफ्फार खान भी इससे जुड़ गए।

इन नेताओं के कांग्रेस में जुड़ने पर टिप्पणी करते हुए एन्टनी कोपले ने लिखा "इन अनुयाइयों पर गांधी के चरित्र का आश्चर्यजनक प्रभाव था। ये सभी ऐसे व्यक्ति थे, जो अपने व्यवसायिक अथवा प्रशासकीय जीवन-वृत्ति का सफलता पूर्वक निष्पादन कर सकते थे। इनमें से सबसे विस्मयकारी उदाहरण, संभवतः मोतीलाल नेहरू का था जो पश्चिमी परिवेश से पूर्णतः प्रभावित एक सफल वकील थे, वे गांधीजी के लिए अपने जीवन भर के तौर-तरीके छोड़ने, अपने पुत्र जवाहर लाल की तरह खादी धारण करने और गांधीजी की असहयोग नीति को अपनाने को तत्पर हो गए।" गांधी के चमत्कारिक व्यक्तित्व से अभिभूत हो जाने वाले मोतीलाल नेहरू के संबंध में मार्टिन ग्रीन ने लिखा है, "मोतीलाल अदालत तक जाने के लिए उम्दा नस्ल के घोड़ों की सवारी का प्रयोग करते थे। कई वर्दीधारी सेवकों का समूह उनके पीछे-पीछे चलता था। वे 'आनन्द भवन' नामक घर में रहते थे जो समस्त आधुनिक विदेशी सुख-सुविधाओं से सुसज्जित था, जिसमें विदेशी शराब, सिगार आदि सब कुछ उपलब्ध रहता था। जब मोतीलाल ने गांधी के खेमे में, जवाहर लाल का अनुसरण किया, उनकी जीवन शैली में आमूल परिवर्तन आया- गाड़ियां, कपड़े, भोजन, पेय पदार्थ— समस्त साधन विदेशी से स्वदेशी हो गए। वे आधुनिक से परम्परागत होते चले गये। एक आलीशान जीवन के बदले उन्होंने सरल व सादा जीवन अपना लिया। 'आनन्द भवन' में विदेशी कपड़ों का होलिका दहन संभवतः उनका सबसे बड़ा व सर्वोच्च त्याग रहा होगा।"

भारत और विदेशों में स्थित इस प्रकार के अनेक प्रभावशाली व्यक्तियों को अपने साथ जोड़ना, गांधी की सबसे बड़ी उपलब्धि थी और यह उनके चमत्कारी व करिश्माई व्यक्तित्व का सबसे बड़ा प्रमाण है।

1919 के रॉलेट एक्ट के अनुसार सरकार को किसी भी व्यक्ति को छोटी से छोटी बात पर गिरफ्तार करने और बिना मुकदमा चलाए बंदी बना लेने का अधिकार प्राप्त हो गया था। इस ऐक्ट ने गांधी को भारत में अपना पहला सत्याग्रह आरंभ करने का एक अच्छा अवसर प्रदान किया और कांग्रेस सदस्यता के आधार का भी विस्तार हुआ। 24 फरवरी 1919 के दिन बंबई में सत्याग्रह सभा की स्थापना हुई, जिसमें दृढ़ता पूर्वक इस 'काले अधिनियम' का विरोध कर न्यायिक गिरफ्तारी करवाने का निर्णय लिया गया। मार्च के मध्य तक 800 व्यक्तियों ने इस विरोध के समर्थन में सत्याग्रही के रूप में स्वयं को नामांकित करा लिया था और जेल जाने तथा किसी भी प्रकार की आगामी कठिनाई का सामना करने के लिए, शपथ द्वारा अपनी स्वीकारोक्ति दे दी थी। 7 अप्रैल को गांधी ने *हिन्द स्वराज* और अन्य प्रतिबन्धित साहित्य को खुले आम बेच कर अपने सत्याग्रह का आरंभ कर दिया। उनकी गिरफ्तारी होते ही अहमदाबाद और अन्य स्थानों में दंगे शुरू हो गए। 13 अप्रैल को अमृतसर के जलियांवाला बाग में 379 पुरूषों, स्त्रियों और बच्चों की नृशंस हत्या हुई। उस समय गांधी ने एक सक्रिय नायक की भूमिका बखूबी निभाई, जिसने उन्हें राष्ट्रीय महत्व के गरिमामय मुकाम तक पहुंचाया। उनके इस प्रभाव का वर्णन करते हुए नेहरू ने कहा, "यह कार्यक्रम (सत्याग्रह) कांग्रेस द्वारा किए गए अब तक के कार्यों से सर्वथा भिन्न था। यह वस्तुतः पूरे विश्व के लिए एक अनोखी चीज थी, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका में जो सत्याग्रह हुआ था, उसका कार्यक्रम काफी सीमित था।.... कांग्रेस के पुराने और अनुभवी नेता हिचकिचा रहे थे और उनके मन में अनेक प्रकार के संशय थे। किंतु औसत कांग्रेस कार्यकर्त्ता, आम आदमी या जन समुदाय तनिक भी विचलित न था। एक तरह से मंत्र मुग्ध होकर यह लोग गांधी के साथ कदम से कदम मिला कर चल पड़े। गांधी ने इन सबको चमत्कृत कर अपने साथ जोड़ लिया था।"

1920 के नागपुर कांग्रेस के सत्र में गांधी का यह प्रस्ताव मान लिया गया कि पंद्रह सदस्यों को चुन कर एक कार्यकारी समिति बनाई जाए। इनका चयन 350 लोगों की अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के द्वारा किया जाना था। इसका चयन राज्य स्तर पर और इन राज्य स्तरीय कमेटियों का गठन जिले और ताल्लुक के स्तर पर चुनी हुई समितियों द्वारा किया जाना था। इस प्रकार की संगठन संबंधी संरचना द्वारा कांग्रेस अखिल भारतीय स्तर की राजनीतिक संस्था होने का दावा पहली बार कर सकी। इसके अतिरिक्त अन्य

दो राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओंः 'अखिल भारतीय हाथ-करघा संघ' और 'अखिल भारतीय ग्रामीण उद्योग संघ' की स्थापना भी की गई।

दक्षिण अफ्रीका में गांधी के, जाति भेद संबंधी उत्पीड़न के विरूद्ध संघर्ष में उनके प्रबल समर्थकों में कई मुसलमान भी थे। उनमें से कुछ कांग्रेस के भी सदस्य थे। अतएव उन्होंने इसका हल निकालने का निश्चय किया और 1917 में मुस्लिम लीग के कलकत्ता में आयोजित सत्र में भाग लिया। उस समय ऑटोमन टर्की के भविष्य के विषय में काफी चिंता थी, विशेष रूप से इस्लाम के पवित्र स्थानों पर खलीफा का आधिपत्य निरंतर जारी रखने पर। तत्काल कार्यवाही की धमकाने वाली बात हो रही थी। 1919 में भारतीय खिलाफत कमेटी ने गांधी के परामर्श और सहयोग के लिए उनसे सम्पर्क किया। इसे उन्होंने मुसलमानों का दिल जीतने के अच्छे अवसर के रूप में देखा। वे खिलाफत आंदोलन को सहयोग देने को तैयार हो गए। उन्होंने इस विषय पर, कांग्रेस के अधिक उत्साहित न होते हुए भी, उसकी रजामन्दी प्राप्त कर ली। अक्टूबर 1920 से मार्च 1922 तक के लगभग 18 महीनों तक गांधी ने समन्वित रूप से स्वराज्य तथा ब्रिटेन व फ्रांस द्वारा लागू की गई 'सेवरेस की संधि' पर पुनर्विचार के संघर्ष का नेतृत्व किया। इस दौरान हिन्दू और मुसलमानों के बीच अंतरंग एकता थी। बी. आर. नन्दा ने गांधी द्वारा खिलाफत आन्दोलन का समर्थन करने के प्रमुख उद्देश्यों के संबंध में बताया कि, "इस समर्थन का कारण उस विद्रोह को उग्र होने से बचाना और मुस्लिम समुदाय को राष्ट्रीय आंदोलन की परिधि में सम्मिलित करना था।" अपनी बात को विस्तार से स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं कि "गांधी को अपने पहले उद्देश्य में काफी हद तक सफलता मिली, किंतु दूसरे उद्देश्य में नहीं। कांग्रेस और खिलाफत संस्थाओं के बीच का महत्वपूर्ण गठबंधन स्थाई हिन्दू मुस्लिम एकता के रूप में नहीं पनप पाया।" फिर भी गांधी द्वारा खिलाफत आन्दोलन का समर्थन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वे दोनों समुदायों को साथ ले कर चलना चाहते थे और उनकी तीव्र इच्छा थी कि हिन्दू मुस्लिम एकता सुदृढ़ हो। यदि ऐसी एकता संभव हो पाती तो भारत के बंटवारे की नौबत ही न आती, क्योंकि तब जिन्ना के पास मुस्लिमों को संगठित करने और उनका नेतृत्व करने के लिए अलगाववादी मुस्लिम क्षेत्र ही नहीं होता।

1920 के दशक के असहयोग और सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा चम्पारन, खेड़ा और बारडोली सत्याग्रहों ने कांग्रेस की छवि को बदल दिया। 1915 तक जो कांग्रेस अनिवार्य रूप से संभ्रांत वर्ग की शहरी वाद-विवाद वाली संस्था के रूप में दृष्टिगोचर होती थी, वह सन् 1925 तक अपना रूप बदल कर, एक सुसंगठित, अनुशासित और जन-साधारण के लिए गठित राजनैतिक और स्वतंत्रता आंदोलन वाली संस्था के रूप में

परिवर्तित हो गई। इसका नेतृत्व देश के प्रत्येक भाग, जिनमें छोटे-छोटे कस्बे भी शामिल थे, के नेताओं द्वारा होने लगा। इसका मूल उद्देश्य प्रभुता प्राप्त करने के स्थान पर स्वराज्य प्राप्त करना हो गया— यह मुख्य रूप से गांधी का योगदान था। पैट्रिक फ्रैंच लिखते हैं, "गांधी ने कांग्रेस के स्वरूप को पूर्णतः बदल दिया। जो संस्था उच्च ब्राह्मण जाति के लोगों की, और अंग्रेजी भाषा के प्रयोग करने वालों की थी जिसे भारतीय जनसंख्या का मात्र एक छोटा सा अंश ही समझ सकता था, उसे बिल्कुल नया मोड़ दे दिया।.... यदि 1919 ब्रिटिश सामग्री के बहिष्कार का वर्ष था तो 1920 शांतिपूर्ण सत्याग्रह का वर्ष था। दुकानों, विद्यालयों, कालेजों सभी का बहिष्कार किया गया और विदेशी आयातित कपड़ों का होलिका-दहन किया गया। जेल जाना शर्म के स्थान पर गौरव का प्रतीक बन गया। बहुत थोड़े से समय में गांधी कांग्रेस के निर्विवाद राजा बन गए, जिसमें उन्होंने जन-समूह का सम्पूर्ण समर्थन और अथाह लोकप्रियता हासिल कर, परम्परागत राजनीतिज्ञों को हाशिए पर कर दिया।"

च. रणनीति कौशल

अच्छे नेतृत्व के लिए रणनीति कुशलता आवश्यक है। गांधी इस संबंध में अत्यंत प्रतिभाशाली साबित हुए। सत्य, अहिंसा और आत्मपीड़न को समन्वित करते हुए, उन्होंने एक अनूठे सत्याग्रह की रणनीति बनाई। सर्वप्रथम 1907 में, दक्षिण अफ्रीका के ब्लैक एक्ट (Asian Registration Act) का विरोध करने के लिए इसका प्रयोग किया गया। किंतु इसकी प्रारंभिक अवधारणा सन् 1906 में बनी। सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है 'सत्य के लिए निष्ठा-पूर्वक दृढ़ रहना,' किंतु साधारणतः इसे 'सत्य की शक्ति', 'आत्मा की शक्ति' या 'प्रेम की शक्ति' के रूप में जाना गया है। यह ईसा मसीह की तरह का निष्क्रिय विरोध नहीं है, बल्कि बुराई और अन्याय के विरुद्ध सक्रिय अहिंसात्मक विरोध है। "निष्क्रिय विरोध को कमजोरों के हथियार के रूप में जाना गया है। यही कारण है कि 'सत्याग्रह' नाम की सृष्टि दक्षिण अफ्रीका में की गई ताकि उसे निष्क्रिय विरोध से अलग रूप में पहचाना जा सके। अहिंसा कमजोरों का हथियार नहीं है। यह

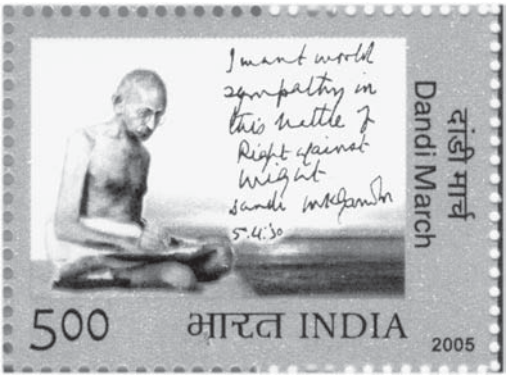

सौजन्यः भारतीय पोस्ट और टेलीग्राफ विभाग

सबसे शक्तिशाली और शूरवीर व्यक्ति का शस्त्र है।" अपने इस कथन की पुष्टि में उन्होंने कहा "यह बल (सत्याग्रह) हिंसा को समाप्त करने में है अतः इसका प्रयोग हर प्रकार के अत्याचार और अन्याय को मिटाने में है, वैसे ही जैसे प्रकाश अंधकार को मिटाने के लिए प्रयुक्त होता है। राजनीति में इसका उपयोग उस अपरिवर्तनीय उक्ति पर आधारित है कि जनता की सरकार तभी तक संभव है जब तक जनता जानते हुए अथवा अनजाने में उस सरकार द्वारा प्रशासित होने की अनुमति स्वयं दे।"

एरिक एरिक्सन, कृष्णलाल श्रीधरानी और रिचर्ड ग्रेग ने सत्याग्रह को क्रमशः 'युद्ध-प्रिय अहिंसा' 'बिना हिंसा के युद्ध' और 'नैतिक जूजित्सु' के रूप में माना है। गांधी की युद्ध-प्रियता के विषय में मार्क जुर्गेनस्मेयर ने लिखा है, "गांधी एक योद्धा थे। उनके संबंध में कोई चाहे कुछ भी कहे, कि वे एक संत थे, चतुर राजनीतिज्ञ थे या कि जैसा विन्स्टन चर्चिल ने एक बार कहा था कि वे 'राजद्रोही फकीर थे।' गांधी निश्चित रूप से जानते थे कि लड़ाई कैसे लड़नी है। वस्तुतः, संघर्षों के समाधान के लिए उनका दिखाया तरीका, मोहनदास गांधी की स्थाई विरासतों में से एक है।"

सत्याग्रह की रणनीति को साकार रूप देने के संबंध में गांधीजी ने किसी नए दर्शन या विचार द्वारा उसके अंकुरित होने की बात को नकारते हुए कहा "मैंने साधारणतः अपने ही तरीकों द्वारा सत्य और अहिंसा के शाश्वत सिद्धांतों का प्रयोग अपने दैनिक जीवन में और समस्याओं हेतु किया.... मेरे पास दुनिया को सिखाने के लिए कुछ भी नया नहीं है। सत्य और अहिंसा उतने ही पुराने है, जितने पर्वत हैं।" हालांकि राघवन अय्यर और एन्टनी कोपले तर्क करते हुए कहते हैं कि वस्तुतः सत्याग्रह उनका एक अत्यंत महत्वपूर्ण सैद्धांतिक योगदान था। कोपले लिखते हैं, "गांधी का यह दावा कि अहिंसा सत्य के हृदय में विराजमान रहती है एक रोचक तथा स्वयं में नितान्त अपरम्परागत था; पुराने वैदिक उद्धरणों और हिन्दुत्व संबंधी पुरातन आलेखों में अहिंसा के संबंध में ऐसा कोई भी दावा नहीं है। अहिंसा की संकल्पना हिन्दुत्व में, जैन और बौद्ध धर्म की समानान्तर विचारधाराओं से आई थी। गांधी अत्यन्त प्रभावकारी रूप में एक बेहद अभिनव और अपधर्मी रूप में दावा कर रहे थे।" जैसा कि हिन्दू धर्म में, जैन और बौद्ध मत के आविर्भाव के पूर्व, पशु बलि की परम्परा यथेष्ट रूप में प्रचलित थी, वह भी हिन्दू ही था, जिसने उस परम्परा को अवैध घोषित किया और 'अहिंसा परमो धर्माः' कह कर अहिंसा को सर्वोच्च कार्य के रूप में घोषित किया। इस दृष्टि से कोपले का अभिकथन उचित प्रतीत होता है।

गांधी द्वारा भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में मुख्य हथियार के रूप में 'चरखे' को अपनाना, उनके रणनीति-कौशल का एक अच्छा उदाहरण है। तब तक बुनाई करना

मुख्यतः महिलाओं का काम हुआ करता था और पुरुष इसमें बहुत कम शामिल थे। अपनी 'आत्मकथा' में गांधी उल्लेख करते हैं, "मुझे स्मरण नहीं है कि मैंने 1909 में *हिन्द स्वराज* में हाथ-करघे या चरखे का, भारत की कंगाली और दरिद्रता के लिए रामबाण के रूप में इसका जिक्र करने से पहले देखा भी था।.... 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने तक भी मैंने वास्तव में चरखा नहीं देखा था।" भारतीय रामबाण के रूप में चरखे की संकल्पना करना और स्वतंत्रता आंदोलन में इसका प्रयोग सबके लिए अनिवार्य बनाकर, उन्होंने ब्रिटिश सरकार के भारत पर आर्थिक प्रभुत्व को नकारा, बुनाई के कार्य में स्त्री और पुरुष की बराबरी को महत्व दिया और उससे भी अधिक अस्पृश्य-जनों को जन-साधारण से जोड़ने का प्रयास किया, जो अन्यथा कूड़ा-करकट ढ़ोने का काम और अन्य घृणित व उपेक्षित कार्य करते आ रहे थे। "चरखा उन अछूतों की सांत्वना और राहत है, जिनकी हमने अभी तक उपेक्षा की है और अवहेलना करने का पाप किया है", की उक्ति के साथ, हाथ के कते सूत से बुने कपड़े और टोपियां, राष्ट्रीयतावादियों का आम पहनावा बन गए और विदेशी कपड़ों का होलिका-दहन कर दिया गया। भारत के हथकरघा उद्योग का पुनर्जागरण हुआ और देश भर में विदेशी कपड़ों की बिक्री में अत्यधिक कमी आई। भारत के सैक्रेटरी आफ स्टेट ने हाउस ऑफ कॉमन्स में स्वीकार किया कि जब कि ग्रेट डिप्रेशन (Great Depression) के कारण भारत में ब्रिटिश कपड़ों की खरीद में 25 प्रतिशत की गिरावट आई थी, उसमें से 18 प्रतिशत तक की गिरावट, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार कार्यक्रम के परिणाम स्वरूप थी। अक्टूबर 1930 से अप्रैल 1931 के समय के बीच, जब यह बहिष्कार अपनी चरम सीमा पर था उपरोक्त गिरावट 84 प्रतिशत तक पहुंच गई थी। फिशर गांधी की चरखा नीति की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि "गांधी बुद्धि और बाहु-बल को संयुक्त करने का प्रयास कर रहे थे ताकि शहर और गांव जुड़ सकें, अमीर व गरीब मिल सकें। दलितों की सहायता करने के लिए तुम्हें उन्हें समझना चाहिए और उन्हें समझने के लिए तुम्हें कम से कम कुछ समय के लिए वही कार्य करना चाहिए जो वह करते हैं। बुनाई प्रेम का एक तरीका था— सम्प्रेषण का एक अनोखा ढंग। यह सबको संगठित करने का तरीका भी था।" "कोई भी जिला यदि खद्दर के लिए पूरी तरह संगठित है तो वह कष्ट सहने और सविनय अवज्ञा के लिए भी प्रशिक्षित है," उनका कथन था।

नमक सत्याग्रह गांधी की रणनीति-कौशल का विशेष उल्लेखनीय उदाहरण है। ज्यूडिथ ब्राउन एक 'अत्यन्त उत्कृष्ठ चयन' के रूप में इस कार्य की प्रशंसा करती हैं। एक गरीब से गरीब व्यक्ति के लिए नमक रोजाना की आवश्यक वस्तु है जो भारत के समुद्र

तटीय क्षेत्र में प्रचुरता से उपलब्ध था। फिर भी भारतीयों के नमक बनाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। केवल उपनिवेशीय सरकार उसका उत्पादन व विक्रय कर सकती थी। इसके अतिरिक्त उस पर लगाए गए कर से 6 करोड़ रूपये प्रति वर्ष की राशि एकत्र होती थी। अपने विशेष रूप से प्रशिक्षित 78 अनुयाइयों द्वारा दांडी तक की यात्रा की योजना ऐसे क्षेत्रों से गुजरते हुए सावधानी पूर्वक बनाई गई जहां के लोग सत्याग्रह करने को तत्पर थे। रास्ते में सैकड़ों लोग उस यात्रा में शामिल होते गए। दांडी पहुंचने तक वह संख्या बढ़ कर हजारों की हो चुकी थी। नमक बनाते गांधीजी के साथ सभी उस काम में जुड़ गये। इस तरह भारत के सभी तटीय क्षेत्रों के कस्बों और गांवों में नमक बनाया जाने लगा। यह उस अनुचित ब्रिटिश नियम के विरुद्ध एक सामूहिक अवज्ञा थी और साथ ही यह 'गांधीजी की बिना हथियार के बगावत' थी, जैसा कि फिशर ने वर्णन किया है।

फ्रांसिस हार्पर के लिए, "अहिंसा के पाठ में गांधी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान था उनका वह आग्रह जिसके अनुसार आंदोलनकारी को हर समय पहल करने को तत्पर होना चाहिए, विरोधी को पर्याप्त अवसर दिए जाने चाहिए ताकि वह उन प्रस्तावों पर विचार कर सके, पर उसे उनकी अवमानना करने का कोई अवसर नहीं देना चाहिए। गांधी यह पूरी तरह से समझते थे कि लड़ाई का सबसे कठिन समय वह होता है जब हम अपने विरोधी को यह समझाने में सफल हो जाते हैं कि उसे आंदोलनकारियों के साथ विचार-विनिमय करना होगा।"

कोपले लिखते हैं, "वॉयसराय इर्विन और गांधी के बीच का विरोध और अंततः समझौता, गांधीवादी सत्याग्रह के इतिहास का सर्वोच्च बिन्दु है।"

राजमोहन गांधी, जार्ज वुडकॉक का उद्धरण देते हुए कहते हैं "समय के अपने सर्वोत्तम संज्ञान द्वारा बलों के तालमेल हेतु अपनी द्रुत अंतर्प्रेरणा के फलस्वरूप, अपने प्रभावकारी प्रतीकात्मक कार्यों की प्रतिभा से तथा युद्ध-नीति पर अपनी पकड़ रख पाने की दृष्टि से गांधी अपने समय के सबसे योग्य राजनीतिज्ञ थे।"

छ. प्रबंधन कुशलता

गांधी के सत्याग्रहों, पद-यात्राओं, अनशनों, प्रार्थना सभाओं तथा राजनैतिक विरोधियों और अंग्रेजी सरकार के साथ किए गए समझौतों में प्रबंधन के प्रमुख तत्व थे पारदर्शिता, सुव्यवस्थित एवं मानवीय प्रस्ताव और वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किए जा रहे प्रयासों में नैतिक तरीकों के पालन पर जोर देना।

पूर्णतः पारदर्शिता का उनका तरीका, सत्य के प्रति उनकी सम्पूर्ण आस्था से ही उत्पन्न हुआ था। उन्होंने दृढ़ता से कहा,

"तुम्हारे चारों ओर सुरक्षा का एक कवच बना देना ही गोपनीयता का उद्देश्य है। अहिंसा इस प्रकार के समस्त बचावों से घृणा करती है। वह कल्पना से भी कहीं अधिक दुष्कर विषमताओं में भी ईमानदारी से खुल कर कार्य करने में विश्वास रखती है। हमें उस विशाल जन समुदाय को कार्यशील बनाने के लिए संगठित करना है, जिन्हें अकथनीय अत्याचार के तले सदियों तक कुचला गया है। पारदर्शिता और सच्चाई के अलावा, अन्य किसी भी तरीके से उन्हें संगठित नहीं किया जा सकता।"

गांधी के सभी सत्याग्रहों और पदयात्राओं के अभियानों में कुछ मौलिक नियमों का परिपालन होता था। वे कहते थे कि स्पष्ट रूप से उन समस्याओं को पहचानो जिन पर आंदोलन प्रारंभ किया जाएगा। अपने विरोधी के सामने उसकी सच्चाई को उजागर करो और समझौते का अनुरोध करो, अपने विरोधी और समाचार एजेंसियों को उस अभियान के उद्देश्य और योजना से पूरी तरह अवगत कराते रहो, अहिंसावादी सेनानियों को निर्देश दो, प्रेरित करो, प्रशिक्षित करो और उनका पथ प्रदर्शन करो, धन जुटाने की व्यवस्था करो और अपने अभियान को अधिकतम मितव्ययता से चलाओ ताकि आवश्यकतानुसार उतने लम्बे समय तक अभियान चालू रखा जा सके जब तक जरूरी हो, और वे लोग जो इस अभियान में जख्मी या बन्दी हों, उनके और उनके परिवार वालों की सेवा और देख-रेख के लिए समुचित प्रबंध करो। अंत में जब विरोधी समझौते के लिए मान जाए, तब ऐसे समझौते को स्वीकार करो जो दोनों पक्षों की रजामन्दी से हो और फिर उसका ईमानदारी से परिपालन करो। उनके लिए "प्रत्येक अहिंसावादी आंदोलन का उद्देश्य परस्पर सहमति से उत्पन्न स्वीकारोक्ति तक पहुंचना है। हमारा ध्येय यह कदापि नहीं है कि विरोधी की पराजय हो बल्कि उसकी कम से कम अवमानना हो।"

उनकी पारदर्शिता का सर्वोत्तम उदाहरण है वॉयसराय लॉर्ड इर्विन को लिखा उनका वह पत्र जो उन्होंने नमक-आंदोलन प्रारंभ करने के पूर्व लिखा था। उसमें भारतीय जनता पर हो रहे अनेक अन्यायों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा, "यदि इन सब कुकर्मों से निपटने के लिए आपके पास कोई रास्ता नहीं है और यदि मेरा यह पत्र आप के हृदय पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाता है तो इस माह की ग्यारह तारीख को मैं अपने आश्रम के, जितने ले जा सकता हूं उतने सहयोगियों के साथ, आपके नमक पर लगाए जाने वाले कर के विरोध में प्रदर्शन करूंगा। मैं इस कर को एक गरीब आदमी की दृष्टि

से सबसे अधिक अन्यायपूर्ण मानता हूं। .... यह पत्र किसी धमकी देने के आशय से नहीं लिखा गया है बल्कि यह एक सविनय अवज्ञा करने वाले का सहज और पावन कर्तव्य है।"

चम्पारन सत्याग्रह के दौरान उनके व्यवस्थित रूप से कार्य करने का सर्वोत्तम स्वरूप देखा जा सकता है, जो उन्होंने अप्रैल 1917 में एक अज्ञात, अनपढ़ नील की खेती करने वाले किसान के अनुनय पर किया। यह भारत में उनके सफल नेतृत्व की पहली परीक्षा थी जिसमें उन्होंने अपनी सत्याग्रह रणनीति के प्रभाव को स्थापित कर दिया था।

चम्पारन जाने का निर्णय लेने के बाद, वे मुजफ्फरपुर के रास्ते वहां गए ताकि वहां स्थित कला-विद्यालय (Arts College) के प्रो. जे. बी. कृपलानी से वे नील के उत्पादन की सही जानकारी प्राप्त कर सकें। तत्पश्चात् उन्होंने चम्पारन के लिए प्रस्थान किया और ब्रिटिश जमीदार संघ के सचिव से मुलाकात की। किसानों से जमींदारों की मांग संबंधित जानकारी प्राप्त करने की उनकी प्रार्थना को ठुकरा दिया गया। तब गांधी ने तिरहुत के डिवीजनल कमिश्नर से मिलने का अनुरोध किया। उन्होंने गांधी से मिलने से इन्कार करते हुए, उन्हें तुरंत वह क्षेत्र छोड़कर चले जाने के आदेश दिए। गांधी ने उस आदेश की अवज्ञा की और चम्पारन जिले की राजधानी मोतिहारी की ओर प्रस्थान किया। रेलवे स्टेशन पहुंचने पर जहां एक विशाल जन-समूह उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उन्हें उस जिले को छोड़कर जाने का आदेश दिया गया। गांधी ने आदेश-पत्र लेकर, वहीं उसमें लिख दिया कि वह उस आदेश की अवमानना कर रहे हैं। अगले दिन उन्हें न्यायालय में उपस्थित होने के आदेश प्राप्त हुए। उन्होंने तुरंत राजेन्द्र प्रसाद को पटना तार भेजा और उनसे मोतिहारी आने और कुछ भारतीय वकीलों को लाने को कहला भेजा। उन्होंने वॉयसराय को भी तार द्वारा सूचना दी।

जब गांधी न्यायालय पहुंचे, वहां चारों तरफ, हजारों किसान एकत्रित थे। न्यायालय में भारतीय वकील एवं संवाददाता भी थे। गांधी ने अपराध स्वीकार किया और उन्हें जमानत पर तब तक के लिए रिहा किया गया जब तक न्यायालय द्वारा उनके विरुद्ध दंडादेश नहीं जारी किया जाता। गांधी ने जमानत की राशि देने से इंकार कर दिया। मैजिस्ट्रेट के पास जमानत पर छूट देने के अतिरिक्त कोई चारा न था। कुछ दिनों पश्चात् बिहार के लेफ्टिनेंट-गर्वनर ने उस मुकदमे को खारिज करने के आदेश दे दिए।

गांधी ने फिर किसानों की शिकायतों की व्यापक, सार्वजनिक जांच-पड़ताल शुरू कर दी। राजेन्द्र प्रसाद और उनके वकील मित्रों ने उन्हें इसमें सहायता प्रदान की। लगभग दस हजार अभिसाक्ष्यों को संग्रहित किया गया और आवश्यक कागजात अत्यन्त कठिनाई से एकत्रित किए गए। उसके पश्चात् उन्होंने लेफ्टिनेंट गवर्नर सर एडवर्ड गेट से मुलाकात

की और उन्हें एक जांच आयोग नियुक्त करने के लिए राजी किया। इस आयोग में सरकारी अधिकारी और जमींदार थे तथा किसानों के प्रतिनिधि के रूप में गांधी स्वयं थे। जो तथ्य और प्रमाण उन्होंने प्रस्तुत किए वे इतने अभियोगात्मक थे कि जमींदारों के पास अन्य कोई विकल्प न बचा सिवाय इसके कि वे किसानों को हरजाना देने के लिए मान जाएं। जमीदारों को ऐसा प्रतीत न हो कि उन्हें नीचा दिखाया जा रहा है और उनके मन में कटुता उत्पन्न न हो, इस आशय से गांधी ने किसानों से अन्यायपूर्ण तरीके से लिए जाने वाले धन का 50 प्रतिशत ही लेने की मांग की, किंतु अंत में केवल 25 प्रतिशत पर ही समझौता किया। उसके बाद की घटना ने उनके दयालु रुख को उचित सिद्ध कर दिया। कुछ वर्षों के बाद जमींदारों ने वह भू-सम्पत्ति किसानों को हस्तांतरित कर दी और स्वयं भारत छोड़ कर चले गए।

जमींदारों के साथ सौहार्दपूर्ण समझौता होने के तुरंत बाद उन्होंने किसानों की शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए कार्य शुरू कर दिए। प्रारंभ में उनकी पत्नी कस्तूरबा, पुत्र देवदास और सचिव महादेव देसाई तथा नरहरि पारीख चम्पारन आए और बारी-बारी से इन सुविधाओं की व्यवस्था नियोजित करते रहे।

गांधी की चम्पारन में रहने की, आरंभ में, मात्र सात दिन की योजना थी किंतु अंततः उनका यह प्रवास सात माह तक चला। कुल मिला कर उसके पश्चात् उनके जीवन का लगभग एक वर्ष इस कार्य में व्यतीत हुआ। यह इस बात का स्पष्ट दृष्टांत है कि स्थानीय मुद्दों को सुलझाते समय भी उनके मस्तिष्क में बड़े-बड़े विचार होते थे जैसे भारत की स्वतंत्रता केवल ब्रिटिश साम्राज्य से ही नहीं, बल्कि गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, कुपोषण एवं कुस्वास्थ्य, गंदगी और भय जैसे समस्त उत्पीड़नों से होनी चाहिये। उन युद्धप्रिय राष्ट्रवादियों, जो अपनी भड़ास केवल उत्पीड़न करने वाले पर निकालते हैं, के ठीक विपरीत गांधी ने पीड़ितों पर भी अपनी दृष्टि केन्द्रित की और उन्हें हर प्रकार के दमन और शोषण, चाहे वह बाहरी हो या सामाजिक, के विरुद्ध साहस से संघर्ष करने को प्रेरित किया।

गांधी के लिए प्रयोग किए गए साधन उतने ही महत्वपूर्ण थे, जितना कि अंतिम समाधान या परिणाम। उनके अनुसार, "साधनों की तुलना बीज से की जा सकती है और परिणाम की वृक्ष से। साधन और परिणाम के बीच वैसा ही अटूट संबंध है जैसा कि वृक्ष और बीज के बीच में हैं। एक सत्याग्रही की पहली चिंता उसके कार्यों का परिणाम नहीं है। यह उसकी प्राथमिकता अवश्य होनी चाहिए। उसे अपने कार्य के कारण और साधन में विश्वास होना आवश्यक है और उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि अंत में सफलता हासिल होगी।" घृणित और उग्र तरीकों का परिणाम और अधिक घृणा और उग्रता है, जिससे

अपेक्षित उद्देश्य विकृत हो जाते हैं और मानव प्रवृत्ति पाशविक हो जाती है। इस विषय में गांधीजी अधिकतर आधुनिक नेताओं से बिल्कुल भिन्न थे, जिनके लिए क्रांति, व्यवहारिकतावाद ओर गोलाबारी की क्षमता का होना कामयाबी पाने के लिए अधिक महत्वपूर्ण रहा है।

ऑल्डस हक्सले गांधी के 'साधन और परिणाम के बीच के अटूट संबंध' से सहमत हैं। वे लिखते हैं, "किसी भी कार्य का परिणाम उस कार्य के लिए प्रयुक्त साधनों को उचित सिद्ध नहीं कर सकता, स्पष्टतः इसलिए क्योंकि प्रयुक्त साधन ही परिणाम की प्रकृति को तय करते हैं।" वे फ्रांसीसी आंदोलन से उदाहरण देते हैं, जहां उनके नेताओं द्वारा अपनाए गए पाशविक और जनता को उत्तेजित करने वाले साधन उन्हीं पर उल्टे पड़े, प्रजातंत्र ही ढ़ह गया, सैन्य तानाशाही का बीजारोपण हो गया और एक राजा का अंत हो गया जिसने फ्रांस को युद्ध में झोंक कर, बीस वर्षों के निरन्तर युद्ध द्वारा तीस लाख से भी अधिक लोगों को मौत के घाट उतार दिया था।

गांधी के 'साधन और परिणाम' संबंधी विचार पर टिप्पणी करते हुए कोपले मार्क्स, लेनिन, माओत्से-तुंग और गांधी का बीसवीं सदी के चार सबसे प्रभावी सामाजिक और राजनैतिक विचारकों के रूप में उल्लेख करते हैं और कहते हैं, "फिर भी गांधी उन चारों में से एकदम अलग व्यक्तित्व के रूप में प्रतीत होते हैं— अधिक उपयुक्त होगा यदि उन्हें उन चार व्यक्तियों के समानार्थक विचार वाला न मान कर, उनका विरोधी माना जाए।.... उनकी (मार्क्स, लेनिन, माओ) यह एक निष्ठुर, अविवेकपूर्ण और राजनैतिक साजिश वाली स्वीकारोक्ति थी कि कार्य के परिणाम द्वारा ही साधन का औचित्य प्रमाणित होता है अर्थात् बर्बर और बलपूर्वक राजनीति की हिंसा को सहना। गांधी में एक तीक्ष्ण नैतिक जागरूकता विद्यमान थी, वह यह कि साधन ही परिणाम को महत्वपूर्ण बनाता है जो उसमें नया रंग भर देता है तथा केवल सच्चा, अहिंसक साधन ही एक सच्चा और सद्भावपूर्ण-समाज का निर्माण कर सकता है। उनकी यही आशावादिता और सदैव विवादित विचार ही संभवतः गांधी को विलक्षण बनाता है और आज की दुनिया में उनके महत्व को इतना प्रासंगिक बनाता है।"

आम जनता के साथ सहानुभूति रखने, उनके साथ प्रार्थना करने, कार्य करने, कपड़ा या नमक जैसे उन छोटे-छोटे मुद्दों को उठाकर जिन्हें लोग समझ सकते थे, गांधी लोगों को प्रेरित व उत्साहित करने में सफल हुए। वे लोगों को यह विश्वास दिलाने में सफल हुए कि भारत की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक मुक्ति के सत्य, अहिंसा और करघा सबसे कारगर हथियार थे और मात्र एक लाख अंग्रेज भारत की पैंतीस करोड़ जनता पर राज नहीं कर सकते, यदि जनता उनका सहयोग करने से इन्कार कर दे और उसका परिणाम

झेलने को तत्पर रहे, सभी भारतीयों— स्त्री, पुरुष, अमीर, गरीब, उच्च व निम्न जाति और हरिजन सभी की भारत की आजादी में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही वे बड़े जन-समूहों के प्रशिक्षण, नियोजन, धन एकत्र करने, आर्थिक व्यवस्था करने, नेतृत्व करने में सफल हुए और विषम अभिरुचियों और विविध पृष्ठभूमि के विशाल समुदाय का प्रभावी रूप में संचालन करने में सफल हुए। उनकी एक आवाज पर लाखों लोग उठ खड़े हुए। उन्होंने चरखे पर सूत काता, विदेशी कपड़ों की होली जला दी, प्रहार सहे, जेल में बंदी हो गए और निरुद्वेग रह कर स्वयं को हिंसा से दूर रखा। एक लम्बे समय से अकर्मण्यता, भय और निराशा के सागर में डूबे एक महाद्वीप का यह सबसे चमत्कारी कायाकल्प था जो उत्साह और देशप्रेम की भावना से भरे भूखण्ड के रूप में जीवंत हो उठा था, जिसमें विभिन्न जाति, धर्म, सांस्कृतिक और सामाजिक विचारों वाले लोगों को एक साझे उद्देश्य की पूर्ति के लिए एकजुट कर लिया गया था, जिसमें सभी उस उद्देश्य के लिए जान देने के लिए तैयार हो गए थे, पर जान लेने के लिए कदापि नहीं। यह निश्चित रूप से बीसवीं सदी की प्रबंधन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। सुजेन और लॉयड रूडोल्फ ने लिखा, "गांधी ने स्वयं में और उन सबमें, जो उनकी आवाज सुनते थे, ऐसे स्फुरण को जागृत किया जिसने साधारण जीवन की रोजमर्रा की जिन्दगी से आगे बढ़ कर उसे असाधारण घटनाओं और चरित्र पर गहरे प्रभाव में परिवर्तित कर दिया, इस काया पलट को 'चमत्कारिक' कहा जा सकता है।"

ज. उदारता

गांधी की उदारता का सर्वोत्तम रूप तब देखा जा सकता है जब हम यह देखते हैं कि उन्होंने उन सबको क्षमा कर दिया, जिन्होंने उनसे घृणा की, उनका तिरस्कार किया और उन पर आघात किया। चार अलग-अलग अवसरों पर उन पर प्रहार किया गया— जनवरी सन् 1907 में डरबन में, फरवरी 1908 में जोहानिसबर्ग में, जून 1934 को पुणे में और 20 जनवरी 1948 को दिल्ली में (जब उनकी प्रार्थना सभा में एक बम विस्फोट हुआ)। प्रत्येक अवसर पर उन्होंने अपने ऊपर आक्रमण करने वाले को क्षमा कर दिया और इस बात पर जोर दिया कि उन लोगों के विरूद्ध कोई भी मुकदमा न चलाया जाए। जोहानिसबर्ग में उन पठानों की गिरफ्तारी के बाद, जिन्होंने उन पर प्रहार किया था, उनका यह वक्तव्य अनोखा था, "उन्हें मुक्त कर दिया जाना चाहिए। उनका विचार था कि वे ठीक कर रहे थे और मुझे उन्हें दण्ड दिलवाने की कोई इच्छा नहीं है।"

उनके सबसे बड़े राजनैतिक प्रतिद्वन्दी और विरोधी अम्बेडकर, चर्चिल और जिन्ना थे। पहले विरोधी ने उन्हें, "भारतीय इतिहास का सबसे बेईमान राजनीतिज्ञ.... घातक, सनकी संत" कहा और दूसरे विरोधियों ने "अध-नंगा और राजद्रोही फकीर", और "पुराना धोखेबाज" कह

कर तिरस्कृत किया। किंतु फिर भी गांधी ने उन सबके विषय में जो कहा, वह इस प्रकार है:-

"मेरे मन में डा. अम्बेडकर के लिए सर्वाधिक सम्मान है। उन्हें कटुता रखने का पूरा अधिकार है। वह हमारा सिर नहीं फोड़ देते, यह उनके आत्म-नियंत्रण का उदाहरण है.... ऐसा ही मेरे शुरूआती दिनों में, दक्षिण अफ्रीका में भी मेरे साथ हुआ था— वहां मैं जहां भी गया, यूरोपीय लोग मेरे पीछे पड़ गए। उनका आक्रोश व्यक्त करना स्वाभाविक ही है।"

"श्रीमान चर्चिल एक महान व्यक्ति हैं। वे इंग्लैंड के अभिजात्य वर्ग से संबंधित हैं। मार्लबरो परिवार, ब्रिटेन के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। जब ग्रेट-ब्रिटेन बड़े खतरे में था, तब उन्होंने उसकी पतवार संभाली थी.... निस्संदेह, उन्होंने उस समय ब्रिटिश साम्राज्य को एक बड़े खतरे से बचाया.... किंतु फिर भी श्रीमान चर्चिल ने एकबारगी सामान्यीकरण करने में काफी जल्दबाजी दिखाई। भारत की जनसंख्या कई करोड़ है। उनमें से केवल कुछ ही लोगों ने क्रूरता का रास्ता अपनाया है।"

1944 में जिन्ना के साथ चौदह लम्बी वार्ताओं के विफल होने के पश्चात् प्रेस-संवाददाताओं से मिलने पर उन्होंने कहा, "हम दोस्तों की तरह जुदा हुए हैं। ये दिन व्यर्थ नहीं गए हैं। मेरा विश्वास है कि श्री जिन्ना एक अच्छे व्यक्ति हैं। मुझे आशा है कि हम पुनः मिलेंगे। मैं प्रार्थना में आस्था रखने वाला व्यक्ति हूं और मैं आपसी सहमति के लिए प्रार्थना करूंगा।"

झ. आत्म-विश्वास

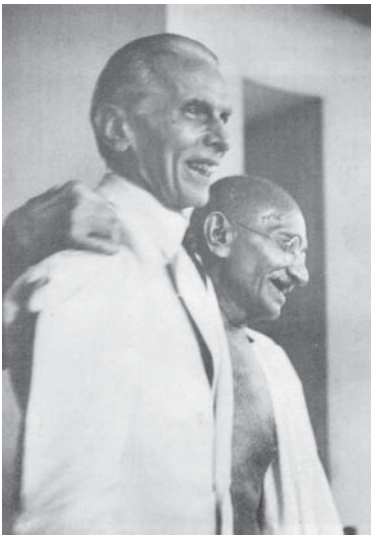

अब्राहम लिंकन की ही तरह, गांधी आत्म-विश्वास, आत्म-संयम और विनोदी प्रवृत्ति से सम्पन्न थे। इन्हीं गुणों के कारण जब भी उनका परिहास किया गया और उन पर झूठे अभियोग लगाए गए, वे अप्रभावित रह पाए। जब भी किसी राजनैतिक प्रतिद्वंदी ने लिंकन को 'दो मुंह वाला' कहा, उन्होंने सीधे सादे रूप में उत्तर दिया कि "यदि मैं दो चेहरे वाला होता तो क्या मैं यह मुखौटा धारण करता?"

जब युवा सरोजिनी नायडू, लंदन में गांधी से मिलने गईं (वे 1915 में भारत जा रहे थे), उन्होंने उनको जमीन पर, जेल के एक काले कम्बल के

ऊपर बैठा पाया। वे एक लकड़ी के कटोरे में, जैतून का तेल युक्त, पिसे टमाटर का रात्रि का भोजन कर रहे थे और उनके समीप मूंगफली और बिस्कुट के टूटे-फूटे टिन बिखरे पड़े थे। यह देख कर सरोजनी नायडू खिलखिला कर हंस पड़ी और बोली कि वे दक्षिण अफ्रीका के एक बड़े भारतीय नायक की अपेक्षा 'मिकी माउस' की तरह अधिक दिख रहे थे। इस बात पर उन्होंने हंसकर उत्तर दिया, "तुम अवश्य सरोजिनी नायडू होगी। उसके अलावा और कौन इतना श्रद्धाहीन हो सकता है ? आओ ! मेरे साथ भोजन करो।" इस एक छोटे से मजाकिया कटाक्ष ने सरोजिनी नायडू को विमोहित कर दिया। उन्होंने गांधी के 'निकृष्ट और गड़बड़-सड़बड़' भोजन को ग्रहण करने से तो इंकार कर दिया, किंतु उनकी समर्पित शिष्या अवश्य बन गईं और तब तक बनी रही जब तक वे जीवित रहे। अगले तैंतालीस वर्षों तक, उनके निधन के बाद भी, सरोजिनी नायडू उनके प्रति समर्पित रहीं, जिसके एक वर्ष बाद ही उनका भी निधन हो गया। यह सरोजिनी नायडू ही थीं जिन्होंने गांधीजी को अत्यन्त श्रद्धापूर्वक 'राष्ट्र पिता' कह कर संबोधित किया था।

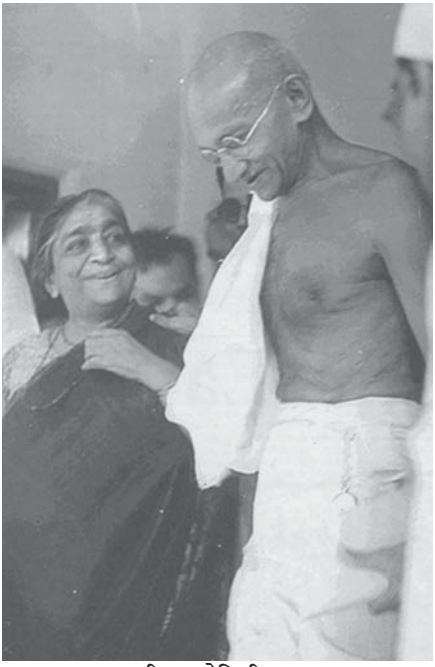

श्रद्धाहीन सरोजिनी नायडू
'राष्ट्र-पिता' गांधी के साथ

1931 में द्वितीय गोल-मेज सम्मेलन के पश्चात् जब किंग जार्ज पंचम ने गांधी का स्वागत किया और रुखाई से पूछा, "तुमने मेरे पुत्र का बहिष्कार क्यों किया?" (प्रिंस ऑफ वेल्स की सन् 1921 में भारत यात्रा के समय गांधी द्वारा प्रेरित उनके बहिष्कार का उल्लेख कर रहे थे)। गांधी ने तुरंत उत्तर दिया, "आपके पुत्र का नहीं महामहिम, बल्कि अंग्रेजी सल्तनत के सरकारी प्रतिनिधि का।" गांधी के बकिघंम पैलेस से विदा होते समय पत्रकारों ने उनकी वेशभूषा पर, जिसे पहन कर वे किंग जॉर्ज से मिलने गए थे, अत्यधिक हैरानी प्रकट की। इस सवाल पर उन्होंने लापरवाही से उत्तर दिया, "महामहिम ने जितने वस्त्र धारण किए थे, हम दोनों के लिए पर्याप्त थे।" तदुपरांत किंगस्ले हॉल जहां वे ठहरे हुए थे उनसे यह प्रश्न पूछे जाने पर "ए गांध ी तुम्हारी पतलून कहां है?" वे खूब खुल कर हंसे और बोले, "तुम सब लोग चार कपड़े अधि क पहनते हो, मैं चार कम।"

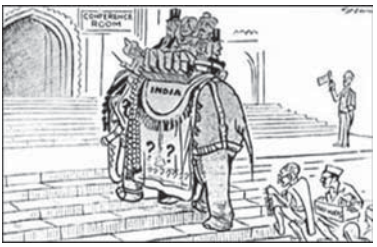

पर्ल बक उनके परिहास की सराहना करते हुए कहती हैं, "गांधी एक संत ही नहीं थे, वे एक विनोदी व्यक्ति भी थे। किसी एक व्यक्ति में इस प्रकार की दो क्षमताओं का मेल, अधिकतर दिखलाई नहीं पड़ता। पर जब ऐसा होता है तो वह व्यक्ति अजेय होता है।"

गांधी लगभग चार दशक तक यूरोपीय और अमेरिकी व्यंग-चित्रकारों का प्रिय विषय रहे। ये सभी व्यंग-चित्र उनको भी उतना ही आनन्दित करते थे जितना कि देखने वाले अन्य लोगों को।

ञ. धर्म, देश-भक्ति और राष्ट्रीयता पर प्रबुद्ध विचार

GANDHI IN CARTOONS
गांधी व्यंग्यचित्र संग्रह

धर्म के क्षेत्र में गांधीजी का मूल योगदान था परम्परावादी रीतियों के स्थान पर सच्चाई को प्राथमिकता देना। वस्तुतः उन्होंने यह घोषणा करते हुए सभी प्रकार की नैतिकता के लिए सत्य को आधार बनाया, "मैं उस धार्मिक शिक्षा का प्रतिकार करता हूं जो युक्ति-संगत न हो और जो नैतिकता की विरोधी हो।"

हालांकि गांधी पक्के हिन्दू थे पर धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण 'सर्व धर्म सम्भाव' अर्थात सब धर्मों के लिए समान आदर से भरपूर था। उनके अनुसार सब धर्म समान हैं और ईश्वर मिलन के लक्ष्य को पाने के विभिन्न मार्ग हैं। उनका धर्म वह था "जो हिन्दुत्व से भी आगे बढ़ जाए, जो व्यक्ति का स्वभाव बदल दे, आन्तरिक रूप से सत्य के साथ अटूट सम्बन्ध बनाए और उसे शुद्ध करे। धर्म मानव स्वभाव का वह स्थाई तत्व है जो आत्मा को उस स्तर तक अतृप्त और बेचैन रखे, जब तक आत्मा स्वयं को प्राप्त न कर ले।" उनका दृढ़ कथन था, "मेरे विचार से विभिन्न धर्म एक बाग के सुन्दर फूल हैं, एक भव्य पेड़ की अलग अलग शाखाएं हैं।" उनकी प्रार्थना-सभाओं में सारी धार्मिक पुस्तकों का पाठ होता था। उनका प्रिय भजन था, 'वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाने रे।' उनके लिए 'प्रार्थना

करते हुए होठों की अपेक्षा सेवा करने वाले हाथ, अधिक पवित्र और शुभ हैं।' उनका धर्म निश्चित रूप से अत्यन्त गहन आध्यात्मिक मानवता था।

उन्होंने दृढ़ता-पूर्वक कहा, "स्वतंत्र भारत जिसकी मैंने परिकल्पना की है, उसमें विभिन्न ध र्मों के सभी भारतीय पूर्ण मैत्रीभाव के साथ रहेंगे। . ... ईश्वर ने मनुष्य को ऊंचे या नीचे का ठप्पा लगा कर नहीं बनाया। ऐसे किसी भी धर्म-ग्रंथ का अनुसरण हम नहीं कर सकते जो जन्म के आध ाार पर व्यक्ति को निम्न कोटि या अछूत का नाम दे। यह ईश्वर और सत्य का तिरस्कार है, उस सत्य का, जो स्वयं ईश्वर है।"

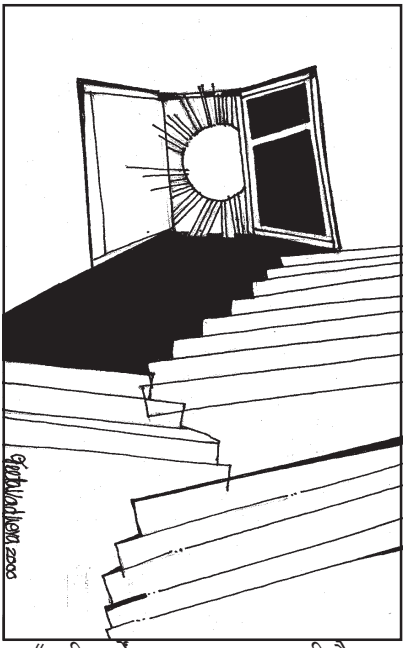

"सभी धर्मों का मूल तत्व एक ही है, केवल उस तक पहुंचने के रास्ते अलग-अलग हैं।"

1931 में *यंग इंडिया* (Young India) में उन्होंने लिखा, "यह कहा जा रहा है कि स्वराज्य में बहुमत वाले समुदाय अर्थात् हिन्दुओं का शासन होगा .... यदि यह सत्य होता तो मैं सर्वप्रथम इसे स्वराज्य कहने से इंकार करता और मेरे पास जितनी भी ताकत होती उससे, उसके विरोध में, मैं लड़ता। मेरे लिए हिन्दू स्वराज्य का तात्पर्य जनता और न्याय का राज्य है।"

23 जनवरी 1948, अपनी हत्या के केवल एक सप्ताह पूर्व उन्होंने घोषित किया, "यह हिन्दू धर्म और बहुमत समुदाय दोनों का विनाश कहा जाएगा, यदि बहुमत समाज अपनी सत्ता के नशे में इस विश्वास को प्रश्रय दे कि वह अल्पमत के समुदाय को कुचल सकता है और सिर्फ एक हिन्दू राष्ट्र स्थापित होगा।"

उनकी इस प्रबुद्ध सोच की प्रशंसा करते हुए फिशर ने लिखा, "महात्मा गांधी, एक परम हिन्दू होते हुए भी, धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ण, या किसी भी अन्य कारण के आधार पर किसी के साथ भी भेद-भाव करने के सर्वथा अयोग्य थे। अछूतों की समानता का और उस शिक्षा का जिसके अनुसार भारत की नई पीढ़ी हिन्दू, मुसलमान, पारसी या ईसाई न होकर, केवल भारतीय थी— गांधी जी के इस योगदान का पूरे विश्व में महत्व है।"

कुरान के प्रति गांधीजी की अथाह श्रद्धा निम्न कथनों से दृष्टिगोचर होती है:-

"मैंने कुरान का अध्ययन एक से अधिक बार किया है। मेरे धर्म ने मुझे इस योग्य बनाया है, और मैं उसका ऋणी हूं, क्योंकि मैं संसार में विद्यमान सभी बड़े-बड़े धर्मों की अच्छी बातों को आत्मसात कर सकता हूं। मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि कुरान की शिक्षा अनिवार्य रूप से अहिंसा के समर्थन में है। उसमें कहा गया है कि अहिंसा, हिंसा से श्रेष्ठ है। अहिंसा हमारा कर्तव्य है, जब कि हिंसा की अनुमति केवल तब दी जा सकती है, जब अत्यावश्यक हो।"

"भारत की राष्ट्रीय संस्कृति में इस्लाम का प्रत्यक्ष योगदान उस विशुद्ध विश्वास द्वारा है- जो 'ईश्वर एक है' का भाव व्यक्त करता है तथा अपने आस-पास के सभी व्यक्तियों के प्रति भाई-चारे की भावना का सत्यता से परिपालन करता है। हिन्दुत्व में भाई-चारे की भावना अत्यन्त दार्शनिक हो गई है। इसी प्रकार, यद्यपि हिन्दू दर्शन में कोई दूसरा ईश्वर नहीं है, ईश्वर एक ही है, किंतु इस सत्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि व्यवहारिक रूप में इस विषय में हिन्दू धर्म उतना एकमत नहीं है, जितना कि इस्लाम।"

सी. एफ. एन्ड्रयूज ने लिखा है, "पैगम्बर मुहम्मद के एक आस्थापूर्ण और कर्मशील व्यक्ति के रूप में तथा उनके दामाद को प्यार करने वाले और कष्ट सहने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व से गांधी बहुत प्रभावित थे। उन्होंने इस्लाम के उत्थान के इतिहास का बहुत ध्यानपूर्वक अध्ययन किया था जिसके कारण वे प्रारम्भिक खलीफा की सौम्यता तथा पैगम्बर के पहले अनुयायियों की अटूट श्रद्धा से अत्यन्त प्रभावित हुए। उनका साधारण जीवन-यापन, निर्धनों के प्रति साहसिक समर्पण, ईश्वर की असीम तेजस्विता में उनका अटूट विश्वास— इन सारे गुणों का उन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा— क्योंकि महात्मा गांधी में शुद्ध एवं पावन जीवन-यापन का एक जन्मजात स्वभाव था— ऐसी विशेषताएं ऐसे महानुभावों को स्वतः ही आकर्षित करती है।"

ईसा मसीह के प्रति गांधी की श्रद्धा इन शब्दों में निहित है:-

"मेरे लिए ईसा मसीह के क्या अर्थ हैं? आज तक के सभी शिक्षकों की तुलना में मानवता के सबसे बड़े शिक्षक ईसा मसीह थे।"

"ईश्वर की मनोकामना तथा भावनाओं का व्यापक वर्णन ईसा मसीह के अतिरिक्त कोई भी नहीं कर पाया। इसलिए मैं उन्हें ईश्वर के सदृश्य देखता हूं। ईसा मसीह के जीवन की महत्ता तथा उत्कृष्टता के कारण ही मेरा विश्वास है कि वे केवल ईसाइयों से नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व की सब जातियों और मनुष्यों से सम्बद्ध थे। अपने पूर्वजों से विरासत में मिले एक भगवान की पूजा करो या किसी आस्था का प्रचार करो या किसी सिद्धान्त का पालन करो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।"

1931 के गोलमेज सम्मेलन के बाद लंदन से स्वदेश लौटते समय वे रोम्यां रोलां से मिलने ल्यूसेन में रूके तथा रोम का सेन्ट पीटर्स और सिस्टीन चैपल देखने गए। चैपल में ईसा के सूली

पर चढ़े हुए एक चित्र को देख कर उनका कथन था, "ईसा के सूली पर चढ़े इस पवित्र चित्र के समक्ष नत मस्तक हो पाने के लिए मैं कुछ भी कर सकता हूं। इस दृश्य को देखते ही मुझे विश्वास हो गया कि व्यक्ति और देश का निर्माण क्रॉस पर सही गई पीड़ा और वेदना द्वारा ही सम्भव है किसी और प्रकार से नहीं। वास्तविक आनन्द की अनुभूति दूसरों को कष्ट पहुंचा कर नहीं, बल्कि स्वेच्छा से वेदना सहन कर के ही प्राप्त होती है।"

लुई फिशर लिखते हैं कि मई 1942 में सेवाग्राम आश्रम पहुंचने पर उन्होंने गांधी जी की मिट्टी से निर्मित कुटिया में केवल एक चित्र देखा, वह था ईसा मसीह का काले और सफेद रंग से बना चित्र, जिसके नीचे लिखा था, "यह हमारी शांति है।" उसके विषय में पूछे जाने पर गांधी बोले, "मैं ईसाई हूं, और एक हिन्दू हूं, एक मुस्लिम हूं, एक यहूदी हूं..... सर्व धर्म सम्भाव की दृष्टि से देखने पर हमें विश्वास हो जाएगा कि हमें दूसरे धर्मों के सद्गुणों, सद्विचारों का अपने धर्म में आत्मसात कर लेना ही हमारा कर्तव्य है।"

सारे धर्मों के प्रति गहन आदर भाव के कारण ही गांधीजी धर्म परिवर्तन के विरोधी थे। धर्म-परिवर्तन के लिए एक धर्म को दूसरे धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठतर बता कर प्रचार किया जाता है, जिसके कारण सामाजिक संघर्ष और कलह होती है, विशेषकर भौतिक प्रलोभनों की स्थिति में। 23 अप्रैल 1931 को उन्होंने अपने पत्र '*यंग इंडिया*' में लिखा था, "आस्था धर्म निरपेक्षता का विषय नहीं है, इसे मन की भाषा के द्वारा लोगों को सिखाया जाता है। यदि किसी व्यक्ति में जीवन्त आस्था है तो वह गुलाब के फूल की सुगंध की तरह फैलती है। अदृश्यता के कारण उसका प्रभाव दूर तक फैलता है। मैं धर्म-परिवर्तन का विरोधी नहीं हूं, परन्तु उसके आधुनिक तरीकों के विरोध में हूं। धर्मान्तरण आजकल अन्य व्यापारों की तरह हो गया है। मैंने एक धर्म-परिवर्तन की रिपोर्ट पढ़ी थी जिसमें एक व्यक्ति के धर्म बदलने के खर्चे में और अगले सत्र के बजट प्रस्तुत करने के खर्चे में तुलना की गई थी। आत्म-शुद्धि तथा आत्म-बोध में बदलाव लाना आज की सबसे बड़ी जरूरत है।"

1936 में अपने ज्येष्ठ पुत्र हरिलाल के इस्लाम धर्म अपनाने के अवसर पर गांधीजी ने कहा था, "अगर उसने हृदय से और बिना किसी भौतिक लालच के स्वीकार किया होता तो मुझे किसी तरह का क्षोभ नहीं होता। पर इस बारे में मुझे गहरी शंका है। मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि लोग उसे अब्दुल्ला कहें या हरिलाल, अगर वह ईश्वर का सच्चा भक्त बन जाए— क्योंकि दोनों नामों का एक ही अर्थ है।"

पुरातन भारतीय उक्ति, 'उदार चरिता नाम तु वसुधैव कुटुम्बकम्' (उदार व्यक्ति के लिए पूरा विश्व ही एक कुटुम्ब है) के अनुरूप गांधी की देश-भक्ति और राष्ट्रीयता विशाल दृष्टिकोण

वाली थी। उन्होंने संकुचित दृष्टिकोण के अनुसार भारत को एक राष्ट्र नहीं माना, बल्कि उसे एक ऐसी सभ्यता की संज्ञा दी, जिसमें विशेष दैवीय गुणों के साथ साथ मानवता की सेवा करने की कर्तव्य भावना भी विद्यमान थी। उन्होंने कहा, "मैं भारत की स्वतंत्रता के लिए जीता हूं और उसी के लिए मर भी जाऊंगा। किंतु मेरी देशभक्ति अलग नहीं है। इस शब्द के सच्चे अर्थ में, सभी के लाभ के लिए इसका परिकलन किया गया है। भारत की मुक्ति द्वारा, मैं विश्व की तथाकथित कमजोर प्रजातियों की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना चाहता हूं।.... मेरे लिए देशभक्ति और मानवीयता एक हैं। यह दोनों अलग नहीं हैं। मैं देशभक्त हूं क्योंकि मैं मानव हूं और मुझमें मानवीयता विद्यमान है। मैं भारत की सेवा करने के लिए इंग्लैंड या जर्मनी को चोट नहीं पहुंचाऊंगा।"

राष्ट्रीयता के संबंध में उन्होंने लिखा, "मेरी राष्ट्रीयता के अंतर्गत विश्व के सभी राष्ट्रों के प्रति प्रेमभाव आता है चाहे वे किसी भी समुदाय के क्यों न हों।.... जो अनिष्टकर है, वह राष्ट्रीयता नहीं है, अनिष्ट संकीर्णता, स्वार्थ और पृथकत्व तक सीमित रहने की प्रवृत्ति में है, जो आधुनिक काल में राष्ट्रों के विनाश का कारण है। प्रत्येक राष्ट्र दूसरे की बरबादी और दूसरे राष्ट्रों के खंडहर पर अपना उत्थान करना चाहता है। मैं आशा करता हूं कि भारतीय राष्ट्रीयता ने, सम्पूर्ण मानवता के उत्थान और उसकी सेवा के लिए, सम्पूर्ण रूप से आत्माभिव्यक्ति करने की पूरी तरह एक अलग राह अपनाई है।"

ट. विश्व के प्रति व्यापक दृष्टिकोण

गांधी, यद्यपि पूरी तरह से भारत के स्वतंत्रता संग्राम में लीन थे, वे विश्व और विश्व में आए संक्रमण-काल के प्रति सदैव सचेत रहे। दुनिया के प्रति उनका दृष्टिकोण विशाल और प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टि रखने वाला था। इंग्लैंड में शिक्षा प्राप्त करने के कारण वे वहां की राजनीति, संस्कृति और लोगों से भलीभांति परिचित थे। वहां उनके कई मित्र थे, विशेष रूप से शाकाहारी, थियोसोफिस्ट और उदारवादी। दक्षिण अफ्रीका जहां उन्होंने इक्कीस वर्ष व्यतीत किये, वहां उन्होंने अंग्रेजी और बोअर जातिवाद का सबसे कसैला और कड़ुआ अनुभव पाया। वहां पर उनके प्रारंभिक समर्थकों में दो यहूदी व्यक्ति और एक ब्रिटिश पादरी थे। इन यहूदियों द्वारा उन्हें रूस में हो रहे सामन्ती दमन की जानकारी मिली। टॉल्सटॉय की पुस्तक *दि किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू* (The Kingdom of God is Within You), पढ़ने के पश्चात् उन्हें रूसी कृषक वर्ग की असहाय स्थिति का और अधिक आभास हुआ। सन् 1905 में *इंडियन ओपिनियन* (Indian Opinion) में उन्होंने लिखा, "एक वायसराय का पद किसी भी दृष्टि से रूस के जार से कम नही है। अंतर केवल इतना है कि ब्रिटिश लोग अपने दमनकारी तरीकों में अधिक कुशल और कम असभ्य है। परिणामतः रूसी हताश हो कर आतंकवादी और उग्रवादी बन गए।"

गांधी के भारत लौटने के पश्चात् ब्रिटिश राज के साथ उनका मुकाबला, दक्षिण अफ्रीका की अपेक्षा अधिक चुनौतीपूर्ण था। उसके लिए उन्हें अपना पूरा समय व ऊर्जा लगाने की आवश्यकता थी। किंतु फिर भी उन्होंने विश्व को अपनी दृष्टि से ओझल नहीं किया।

1917 में हुई सोवियत रूस की क्रांति के विषय में उन्होंने मद्रास में अपने भाषण में घोषणा की थी, "बोल्शेविक वाद से मैं अभी तक अनभिज्ञ हूं। मुझे नहीं मालूम कि यह रूस के भविष्य के लिए लाभकारी होगा या नहीं। पर मैं यह जानता हूं कि हिंसा और ईश्वर से विमुखता पर आधारित होने के कारण मैं इसके विरुद्ध हूं।"

25 मई 1920 को सी. एफ. एन्ड्रयूज को लिखे पत्र में 1920 की सेवेर्स संधि के विषय में उन्होंने लिखा, "शांति संधि के कारण उत्पन्न स्थिति पूर्णयता असहनीय है। सुल्तान के अधीन अरबवासियों ने अपनी स्वतंत्रता पूरी तरह से खो दी है क्योंकि वे उसका सामना नहीं कर सके। और अगर अब हिजाज के राजा और अमीर फैजल मदद कर सके तो अरब और मेसोपोटामिया पूरी तरह असहाय हो जाएंगे— क्योंकि यह दोनों व्यक्ति ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ की कठपुतली बन जाएंगे। इन अधिकारियों का ध्येय ब्रिटिश पूंजीपतियों के लिए पैसा बनाना ही होगा।" कुछ दिनों बाद 30 जून 1920 को *यंग इन्डिया* में "मोसुल में तेल पर ब्रिटिश नजर" की चर्चा की थी।

स्पेन और चीन के बारे में उन्होंने लिखा, "प्रजातांत्रिक स्पेन का भाग्य अधर में लटका हुआ है। वैसा ही चीन के संबंध में भी कहा जा सकता है। यदि अंत में उनकी हार होती है, तो वह इसलिए नहीं होगी कि उनका ध्येय गलत था.... मैं यह सुझाव दूंगा कि यदि यह बहादुरी है कि सारी विषमताओं के बावजूद भी लड़कर मर जाओ तो उससे भी बड़ी बहादुरी होगी कि लड़ाई से ही इंकार कर दिया जाए, अथवा अनाधिकार छीनने वाले के सामने समर्पण करने से सर्वथा इंकार कर दिया जाए।"

1938 के म्यूनिख संधिपत्र के पश्चात् जिसमें इंगलैंड और फ्रांस ने जर्मन लोगों द्वारा चैकोस्लोवाकिया पर उनके कब्जे को स्वीकार कर लिया था, उन्होंने दैविक दूरदर्शिता के साथ लिखा, "इंग्लैंड और फ्रांस, जर्मनी और इटली की संयुक्त हिंसा से घबरा गए। जिस संधिपत्र में हस्ताक्षर हुए हैं, वह शांति के लिए नहीं है। युद्ध केवल कुछ समय के लिए टल गया है।"

नाज़ी आक्रमण के विरुद्ध, पोलैंड के वीरोचित विरोध के पश्चात् उन्होंने लिखा, "पोलैंड के लोग जानते थे कि उन्हें कुचल कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाएगा, किंतु फिर भी उन्होंने जर्मनों का विरोध किया। यही कारण है कि मैं इसे लगभग अहिंसक विरोध कहता हूं।"

1942 के आरंभ में भारत पर जापान की सैन्य धमकी के कारण युद्ध का भय गहराता जा रहा था। गांधी ने राष्ट्रपति रूजवेल्ट को एक पत्र लिखा, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त जो लिखा था, वह इस प्रकार थाः-

प्रिय मित्र,

मैं दो बार आपके महान राष्ट्र में आते-आते रह गया। मैं सौभाग्यशाली हूं कि वहां पर मेरे अनेकों मित्र हैं, जिनमें से मैं कुछ को जानता हूं और कुछ को नहीं। मेरे कई देशवासियों ने अमेरिका से उच्च शिक्षा प्राप्त की है और अभी भी प्राप्त कर रहे हैं। मैं यह भी जानता हूं कि कई लोगों ने वहां आश्रय भी पाया है। मैं थोरो और एमरसन के लेखन से बहुत लाभान्वित हुआ हूं। मैं यह सब इसलिए लिख रहा हूं ताकि मैं यह बता सकूं कि मैं आपके देश से कितना जुड़ा हुआ हूं.... मेरी निजी स्थिति स्पष्ट है। मैं हर प्रकार के युद्धों से घृणा करता हूं। अतः यदि मैं अपने देशवासियों से आग्रह करता, तो वे अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान देते। हालांकि विदेशी शासन के अंतर्गत हम इस युद्ध में कोई प्रभावशाली योगदान नहीं दे सकते, सिवाय दासता के। .... मैंने यह सुझाव दिया है कि यदि मित्र-राष्ट्र आवश्यक समझें तो अपनी सेनाओं को भारत में रख सकते हैं, किंतु अपने स्वयं के खर्च पर। यह सुझाव आंतरिक व्यवस्था के लिए नहीं है, बल्कि यह जापान के आक्रमण को रोकने और चीन के बचाव के लिए है। जहां तक भारतवर्ष का सबंध है, इसे स्वतंत्र होना ही चाहिए जैसे अमेरिका और ब्रिटेन हैं। इस प्रस्ताव के माध्यम से मैं आपको यह पत्र लिख कर आपकी सक्रिय सहानुभूति प्राप्त करना चाहता हूं।"

जर्मनी के यहूदी लोगों की दुःख-पूर्ण घटना ने उनके मन पर गहरी छाप छोड़ी। अपने पत्र *हरिजन* (Harijan) के 11 और 26 नवम्बर 1938 के अंकों में उन्होंने लिखा, "मेरी सारी सहानुभूति यहूदियों के साथ है। मैंने दक्षिण अफ्रीका में काफी अंतरंगता से उन्हें जाना है। इन मित्रों द्वारा ही मैंने लम्बे समय से उन पर हो रहे अत्याचार के बारे में जाना। वे ईसाई सम्प्रदाय के अछूतों के सदृश्य हैं।.... जर्मन लोगों द्वारा यहूदियों पर इस प्रकार के अत्याचार का इतिहास में कोई अन्य उदाहरण नहीं है। पुराने प्रशासकों की तानाशाही इतनी क्रूर और उन्मत्त कभी नहीं थी जितनी कि हिटलर की । यदि मानवता के नाम पर, और मानवता के लिए, कोई भी औचित्यपूर्ण लड़ाई लड़ी जा सकती है, तो वह होगी जर्मनी के विरूद्ध एक समूची जाति को आमूल नष्ट करने के लिए लड़ी गई लड़ाई। किंतु मैं किसी भी युद्ध में विश्वास नहीं करता।.... जर्मनी के यहूदी दक्षिण अफ्रीका में स्थित भारतीयों से कहीं अधिक बेहतर अपना सत्याग्रह आरंभ कर सकते हैं। जर्मनी में यहूदी एक सुसम्बद्ध और समांगी समुदाय हैं। वे दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रतिभाशाली हैं और पूरे विश्व का वैचारिक समर्थन प्राप्त करने में उन्हें सफलता मिली है। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि उनमें से साहस, समझ व दूरदर्शिता रखने वाला कोई एक नेता अहिंसात्मक कार्यों में उनका नेतृत्व करने को उठ खड़ा हो तो उनकी हताशा का बर्फानी मौसम आशा रूपी धूप बन सकता है।"

यहूदियों के प्रति अत्यधिक सहानुभूति होते हुए भी फिलिस्तीनी भूमि में उनके अलग राज्य की मांग से वे सहमत नहीं थे। उनका कथन था, "उनके प्रति मेरी सहानुभूति होने के बावजूद

मैं न्याय की जरूरतों के सामने आंखें नहीं मूंद सकता। यह गलत और अमानवीय है कि यहूदियों को अरबों के ऊपर थोपा जाए। आज जो कुछ भी फिलिस्तीन में हो रहा है, उसे किसी भी नैतिक आचरण-संहिता के अंतर्गत न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद मित्र-राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत 'मैन्डेट' का कोई औचित्य नहीं है। एक आदर्श तरीका यही होना चाहिए कि यहूदियों के प्रति एक न्यायोचित व्यवहार का दृढ़ निश्चय किया जाए, चाहे वे जहां भी पैदा हुए और पले-बढ़े हों, उन्हें वहीं पर न्याय मिले। फ्रांस में पैदा हुए और पले-बढ़े यहूदी फ्रांसीसी हैं, बिल्कुल उसी तरह जैसे फ्रांस में पैदा हुए ईसाई फ्रांसीसी हैं। हर राष्ट्र उनका घर है जिसमें फिलिस्तीन भी सम्मिलित है किंतु जोर जबर्दस्ती से नहीं, बल्कि प्रेम भाव से।"

यहूदी दार्शनिक मार्टिन बूबर का गांधी से इस बात पर मतभेद था कि दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों तथा जर्मनी में यहूदियों की दशा समान थी तथा हिटलर के विरुद्ध अहिंसक आन्दोलन सफल हो सकता है। 24 फरवरी 1939 को जेरूसलम से बहुत आदर के साथ लिखे एक लम्बे पत्र में यह अभिपुष्टि की थी, "'सत्य बल' से लैस कोई भी 'सत्याग्रह' एक सम्पूर्ण पैशाचिक दमनकारी शक्ति का सामना नहीं कर सकता।" इजराइली भूमि पर आधिपत्य के लिए अरब तथा यहूदियों के दावे के विषय में उन्होंने लिखा, "हमें यहां बसाने वाले लोग पश्चिम के उपनिवेशियों की तरह नहीं आए हैं, जो अपना काम स्थानीय निवासियों से करवाते हैं। वे तो स्वयं हमारे कंधे से कंधा मिला कर मेहनत से इसे खुशहाल बनाते हैं। परन्तु इस जमीन को उपजाऊ बनाने की इच्छा सिर्फ हमारी नहीं हैं। यहूदी किसानों ने अपने अरब भाईयों को सिखाना शुरू कर दिया है कि जमीन को अच्छी तरह कैसे जोता जाए। उनके साथ मिल कर हम इस धरती की सेवा करना चाहते है। यह धरती जितनी अधिक उपजाऊ और खुशहाल बनेगी हम दोनों के लिए उतना अधिक स्थान होगा। हमें उन्हें बेदखल करने का कोई इरादा नहीं है। हम उनके साथ मिलजुल कर रहना चाहते है। हमें राज नहीं चाहिए, हम सेवा करना चाहते हैं। महात्मा, आपने एक बार कहा था कि आज के युग में राजनीति हमें सांप और केचुल की तरह एक दूसरे से जोड़े रखती हैं। आप ने कहा था कि आप सांप से लड़ना चाहते हैं। अब सांप अपनी पूरी शक्ति के साथ आपके सामने है। यहूदी और अरबी दोनों इस धरती पर अधिकार करना चाहते हैं। दोनों के अधिकार पर समझौता सम्भव है यदि लोगों और उनके बच्चों की जरूरतों को प्राथमिकता दी जाए। परन्तु सिद्धान्तों और राजनीति का दुरुपयोग कर के संधि के स्वरूप को तोड़-मरोड़ दिया जाता है। कूटनीति केवल आत्मा को ही नहीं जीवन को भी भ्रष्ट कर देती है। इस सांप का सामना कौन करेगा।"

इन चतुराई भरी दलीलों से गांधी के विचारों में कोई अन्तर नहीं पड़ा। उनके मित्रों हर्मन कालेनबाक की मदद से यहूदी समुदाय के एक प्रतिनिधि इमैन्युल ओल्सबैगर के साथ मुलाकात के बाद भी उनके विचार नहीं बदले। सिमोन पैन्टरब्रिक ने हाल ही में लिखी पुस्तक "गांधी और मध्यपूर्व" में इस भेंट की चर्चा की है।

युद्ध के पश्चात् और सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन के पूर्व जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ का गठन हुआ, उन्होंने एक वक्तव्य जारी किया, जिसमें निम्न अनुच्छेद था:-

"मैं अपनी दृढ़ धारणा को पुनः दोहराता हूं कि मित्र-राष्ट्रों और पूरे विश्व में शांति तब तक कायम नहीं होगी जब तक वे युद्ध की प्रभावोत्पादकता के विश्वास का और उससे जुड़े भयंकर धोखे और कपट का त्याग नहीं करते। शांति न्यायोचित होनी चाहिए। इसके लिए उसे न तो दंडात्मक होना चाहिए और न ही बदले की भावना से प्रेरित। जर्मनी और जापान को अपमानित नहीं किया जाना चाहिए। शांति के फल में सभी का बराबर का हिस्सा होना चाहिए। किसी एक राष्ट्र द्वारा दूसरे का शोषण या प्रभुत्व का उस दुनिया में कोई स्थान नहीं है जहां युद्धों पर ही पूर्ण विराम लगाने की कोशिश हो रही हो। शक्तिशाली राष्ट्रों को कमजोर राष्ट्रों की सहायता करनी चाहिए न कि उनका दमन और उन पर प्रभुत्व प्राप्त करने का प्रयास। भावी शांति, सुरक्षा और क्रमिक विकास हेतु विश्व में एक विश्व स्तरीय महासंघ की स्थापना होनी चाहिए, जो अपने अंगभूत हिस्सों की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करे।"

मार्च 1947 में, नई दिल्ली में हुए 'एशियाई संबंधों के सम्मेलन' (Asian Relations' Conference) के समापन सत्र में अपना उद्‌बोधन देते हुए गांधीजी ने कहा "यह एक अत्यन्त दुःखद स्थिति होगी यदि हम इस सम्मेलन से एक दृढ़ निश्चय लेकर न जा पाएं कि एशिया भी हर पश्चिमी राष्ट्र की तरह जीवित रहेगा और स्वतंत्र रहेगा।.... यदि तुम पश्चिम को एक संदेश देना चाहते हो, तो वह प्रेम और सच्चाई का संदेश होना चाहिए।"

गांधी— 'एशियाई संबंधों के सम्मेलन' [Asian Relations' Conference] के सहभागियों के साथ

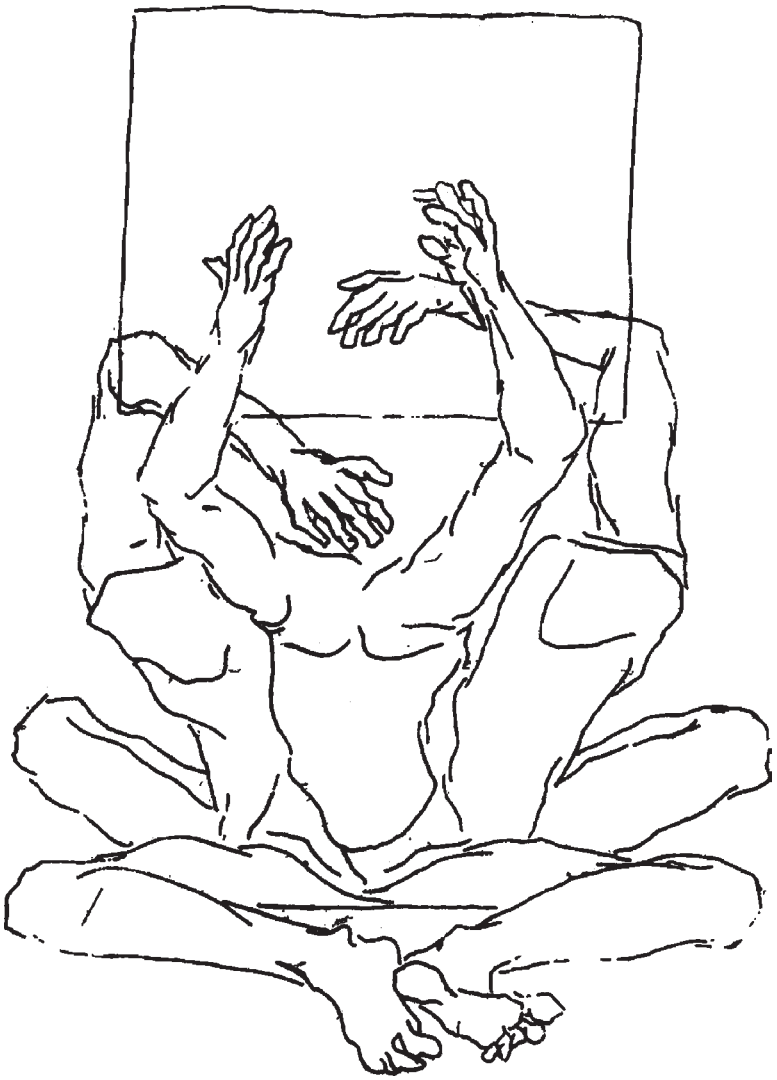

"बदले की भावना मनुष्य को अंधा बना देती है। परिणामतः सम्पूर्ण विश्व के विनाश की संभावना उत्पन्न हो जाती है"

कलाकारः शमशाद हुसैन

गांधी के नेतृत्व की उपलब्धियां

क. भारतीय जनता का संगठन एवं पुनर्नवीकरण

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एरिक एरिक्सन, जिन्होंने गांधी के एक प्रारंभिक सत्याग्रह का विश्लेषण किया था, वह था 1918 में अहमदाबाद के मिल मजदूरों की हड़ताल का सत्याग्रह। उन्होंने अपनी पुस्तक *गांधीज ट्रुथ* (Gandhi's Truth) में लिखा, "मैने जब इस पुस्तक को लिखना आरंभ किया, मैने यह आशा नहीं की थी कि मैं सत्य, आत्म-यंत्रणा और अहिंसा के संबंध में किए मनोविश्लेषण का पुनः अन्वेषण करूंगा। परन्तु अब, जब मैंने ऐसा कर लिया है, मैं बेहतर रूप से अनुभव कर सकता हूं और आशा करता हूं कि मेरा पाठक भी उस अनुभव को मेरे साथ प्राप्त करना चाहेगा। अहमदाबाद की उस घटना की ओर मैं इसलिए आकर्षित हुआ था क्योंकि मैं गांधी के सत्य और आधुनिक मनोविज्ञान की अंर्तदृष्टि के बीच में एक लगाव देख पा रहा था।" यहां तक कि एरिक्सन दलित और विक्षिप्त व्यक्तियों की विकास प्रक्रिया को पुनर्जीवित करने की फ्रॉयड की तकनीक की तुलना गांधी द्वारा निरुत्साहित दलित लोगों में आशा उत्पन्न करने के तरीकों से करने लगे। गांधी ने सचेत रूप में फ्रायड की तकनीक का अनुसरण किया या नहीं, यह तो स्पष्ट नहीं है, किंतु सबसे उल्लेखनीय यह तथ्य है कि वे भारत की 35 करोड़ गरीबी से बेहाल और निराश लोगों के मन में आशा की किरण पैदा करने में सफल हुए और उन्हें संगठित कर आजादी के राष्ट्रीय अहिंसक आंदोलन में सहभागी बनने के लिए प्रभावकारी रूप से प्रेरित कर सके। सन् 1912 में, गांधी के शुरूआती समय से ही दक्षिण अफ्रीका में उनके अहिंसात्मक संघर्ष को देख कर वरिष्ठ भारतीय राष्ट्रवादी गोपालकृष्ण गोखले ने घोषित कर दिया था कि "गांधी के भीतर चमत्कारिक दिव्य शक्ति है जो अपने आस-पास रहने वाले साधारण व्यक्ति को भी नायक और शहीद बनने को प्रेरित कर देती है।"

भारतीय जनता को देश के अहिंसात्मक स्वतंत्रता संग्राम में प्रवृत्त करने में उनको उल्लेखनीय सफलता तब मिली जब उन्होने युद्ध-प्रेमी पठानों को भी इस कार्य के लिए संगठित कर लिया। उनके साढ़े छः फुट के असाधारण कद्दावर नेता खान अब्दुल गफ्फार खां जो 'सीमांत गांधी' कहे जाने लगे थे, और बाद में जिन्हें 'मुस्लिम सेन्ट फ्रांसिस' भी कहा जाने लगा था, ने अपने ऊपर गांधी के प्रभाव का उल्लेख इस प्रकार किया है, "एक युवा के रूप में मुझमें हिंसात्मक प्रवृत्तियां विद्यमान थीं, एक पठान का गरम खून मेरी रगों में बह रहा था। किंतु जेल में मेरे पास कुछ भी करने को न था सिवाय कुरान का अध्ययन करने के। मैंने मक्का के पैगम्बर मोहम्मद के बारे में पढ़ा, उनके धैर्य, उनकी

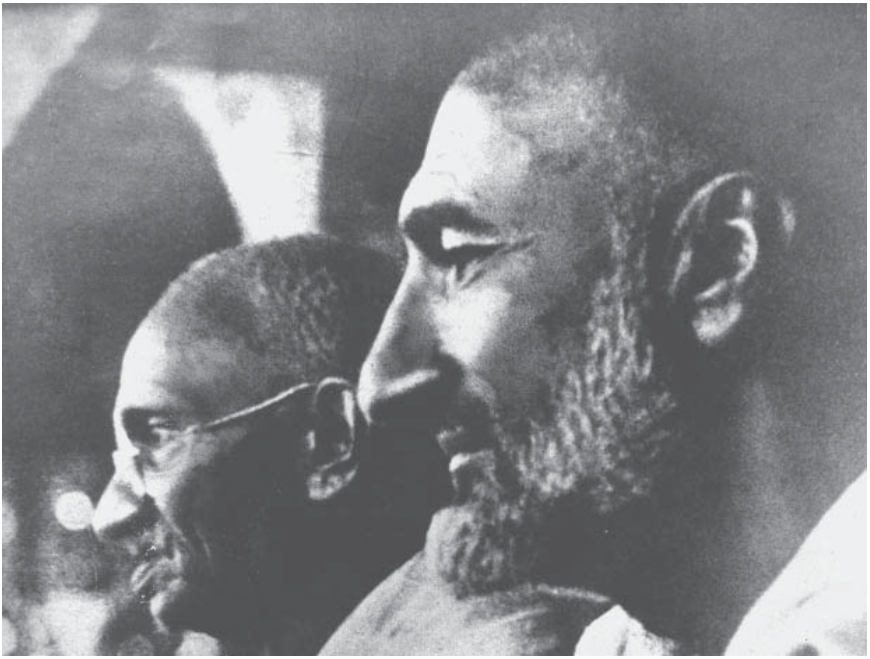

गांधी-सीमांत गांधी के साथ

व्यथा और समर्पण भावना के संबंध में जाना। मैंने यह सब पहले भी पढ़ा था जब मैं बालक था। पर अब मैंने उस सब का अध्ययन गांधीजी द्वारा ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध छेड़े गए संघर्ष की पृष्ठभूमि में किया, जिसके बारे में चारों ओर से चर्चाएं सुन रहा था। अंत में, जब मैं गांधीजी से मिला, मैंने उनके अहिंसात्मक विचारों और रचनात्मक कार्यों की पूर्ण जानकारी प्राप्त की। उस जानकारी से मेरी जिंदगी हमेशा के लिए बदल गई।"

गफ्फार ख़ान ने एक लाख अहिंसावादी शक्तिशाली पठान योद्धाओं; 'खुदाई खिदमतगारों' की सेना संगठित की, जो उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में स्वतंत्रता संघर्ष के लिए तैयार थे। उनसे प्रेरित होकर पठान महिलाएं भी अपने अंक में कुरान को दृढ़ता पूर्वक पकड़े हुए ब्रिटिश सेना का सामना करने को तैयार हो गईं।

अपने खुदाई खिदमतगारों के लिए गफ्फार खान ने जिस वन्दना गीत की रचना की उसका भाव इस प्रकार थाः

हम खुदा के बन्दे सैनिक हैं, हम मौत से डरना क्या जानें?
हम धन की ख्वाहिश ना करते,
हम अपने नेता संग चलते,

हम मानव की सेवा करते,
हम अपना मकसद चुन बैठे, हम चलते छाती को ताने।
हम खुदा के बन्दे सैनिक है, हम मौत से डरना क्या जानें?
हम भाई बंधु से प्रेम करें,
हम आजादी का लक्ष्य धरें,
आगे बढ़ जाएं, नहीं डरें,
हम अपनी जान गंवा देंगे, हम आजादी के परवाने।
हम खुदा के बन्दे सैनिक हैं हम मौत से डरना क्या जाने?

राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन को अमेरिकी राष्ट्रपतियों में सबसे अधिक प्रखर बुद्धि वाला नहीं माना जाता, किंतु फिर भी उन्होंने नायकत्व के संबंध में अत्यन्त अनुबोधक टिप्पणी की। उन्होंने कहा, "महान नायक स्वयं महान कार्य नहीं करते, वे अपने लोगों को महान कार्य करने को प्रेरित करते हैं।" गांधी निश्चित रूप से इस मानदंड पर खरे उतरे।

ख. औपनिवेशिक अधीनता से भारत की अहिंसात्मक मुक्ति

प्रथम विश्वयुद्ध के अंत में, जब गांधी ने भारतीय राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश किया, इंग्लैंड शक्ति के उच्चतम शिखर पर था। जर्मन, ऑस्ट्रियाई, ओटोमन साम्राज्य पराजित हो कर समाप्त हो चुके थे। ब्रिटिश साम्राज्य के मुकुट में भारत 'सबसे द्युतिमान रत्न' की तरह चमक रहा था। पूर्व में फिजी से लेकर पश्चिम में वैंकुवर तक ब्रिटिश साम्राज्य फैल चुका था। यहां तक कि नवम्बर 1942 में चर्चिल ने दृढ़ता से भारत की आजादी की मांग का समर्थन करने से यह कहते हुए इंकार कर दिया था, "वे राजा का प्रधानमंत्री इसलिए नहीं बने हैं कि उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य के समापन का संचालन करना पड़े।" फिर भी पांच वर्षों के भीतर भारत आजाद हो गया और अंग्रेजों को भारत छोड़ कर जाना पड़ा— एक घृणित औपनिवेशक शक्ति के रूप में नहीं बल्कि एक मित्र की तरह। स्वतंत्र भारत ने अपने अंतिम वॉयसराय लार्ड माउन्टबेटन से उसके प्रथम गवर्नर-जनरल बनने का आग्रह किया। इसके तुरंत बाद, भारत ने एक समानार्थी साझेदार के रूप में कॉमनवेल्थ का सदस्य बनने का निश्चय किया। इस प्रकार गांधी के इस सिद्धान्त का जोरदार समर्थन हुआ कि "एक अहिंसात्मक आंदोलन, शासन पर कब्जा करने का कार्यक्रम नहीं है बल्कि यह संबंधों के उस रूपांतरण का कार्यक्रम है जिसकी परिणति अधिकार के शांतिपूर्ण स्थानान्तरण से होती है।"

गांधी की कमजोरियों और सनकों के सबसे बड़े आलोचक पैट्रिक फ्रैंच यह स्वीकार करते हैं कि, "वे अद्वितीय कौशल और दृढ़-निश्चय वाले राजनैतिक और सामाजिक नायक थे, जिनके बिना भारत सन् 1947 में ब्रिटिश राज्य से स्वतंत्र नहीं हो सकता था। वे स्वतंत्रता आन्दोलन के ध्रुव थे।"

गांधी लॉर्ड और लेडी माउन्टबेटन के साथ

ऑर्नल्ड टॉयनबी ने गांधी की सराहना करते हुए कहा, "उन्होंने ब्रिटेन का भी उतना ही हित किया, जितना कि स्वयं अपने देश का। उन्होंने हमारे लिए भारत पर शासन करते रहना असम्भव बना दिया, पर साथ ही उन्होंने यह भी संभव कर दिया कि हम बिना किसी विद्वेष और अपमान के देश छोड़ कर जा सकें।"

ग. राजनैतिक परिदृश्य में गौरवशाली समझौतों एवं पारदर्शिता का सूत्रपात

क्लॉड मार्कोविट्स लिखते हैं, "गांधी द्वारा भारत को दी गई सबसे स्थाई राजनैतिक धरोहर थी एक महान बहुवर्गीय राजनैतिक दल जो सन् 1990 के प्रारंभिक वर्षों तक प्रभुत्व में रहा। 1930 के दशक के अंतिम वर्षों से उस पार्टी ने गांधी के आदर्शों का पूर्णतः प्रतिनिधित्व नहीं किया.... किंतु उन्होंने कभी भी प्रत्यक्ष रूप में उसका परित्याग भी नहीं किया, जिस कारण यह संभव हो सका कि उनके अनुयायी उनके चमत्कारी प्रभाव का लाभ उठाकर अपनी स्वयं की राजनैतिक प्रभु-सत्ता कायम कर सके।.... उनके पूर्व, उपनिवेशवादियों से बातचीत द्वारा समझौता करने को मात्र सौदेबाजी या कमजोरी का प्रदर्शन माना जाता था अर्थात् घोर हीन मनोग्रन्थि का संकेत। उन्होंने यह विचार प्रतिपादित किया कि भारतीय, उपनिवेशवादी सरकार से, समान स्तर पर बातचीत कर के समझौता कर सकते हैं और कायर कहलाए बिना भी रियायतें प्राप्त कर सकते हैं।.... अपनी गतिविधियों के प्रबंधन में उन्होंने पारदर्शिता के सिद्धांत को अपनाया जो इसके पूर्व ज्ञात नहीं था। सारे व्ययों का औचित्य सिद्ध करना और प्रतिदिन के खर्च का ब्यौरा लिखना आवश्यक था। गांधी ने आर्थिक-गणना की पारदर्शिता आरंभ की जो राजनैतिक परिमंडल में लागत एवं लाभ के प्रति जागरूक रह सके।"

1931 के गोलमेज सम्मेलन, लन्दन, में गांधी

घ. अस्पृश्यता उन्मूलन

सत्य के लिए गांधी की अटल खोज ने शीघ्र ही उन्हें जाति-प्रथा के उत्पीड़न एवं अनादर भाव का अनुभव करा दिया था। वे जान गए थे कि निम्न जाति के लोग जो अछूत या अस्पृश्य कहलाते थे, यहां तक कि जिन्हें अति शूद्र, चांडाल और लावारिस भी कहा जाता था, वे कितनी अवमानना और दमन सह रहे थे। वे अभागे व्यक्ति जिन्हें सदियों से गांव की सीमा के बाहर रहना पड़ता था, अपने जीविकोपार्जन के लिए निम्नतम व घृणित कार्य करते थे और उन्हें जीवनयापन के लिए सड़े-गले मांस पर निर्वाह करना पड़ता था। गांधी ने उन्हें 'हरिजन' (ईश्वर की संतान) का नाम दिया और स्वतंत्रता के राष्ट्रीय संघर्ष में उनकी मुक्ति को उस संग्राम का अविभाज्य अंग बनाया। उन्होंने इस नए नाम के लिए जो तर्क दिया वह था कि "'हरिजन' का तात्पर्य 'ईश्वर की संतान' है। दुनिया के सभी धर्म ईश्वर को उनके उत्कृष्ट रूप में, मित्र-विहीनों का मित्र, असहायों के सहायक और निर्बलों का रक्षक मानते हैं।.... भारत में इन व्यक्तियों को जिन्हें अस्पृश्य कह कर वर्गीकृत किया गया है, उनसे अधिक मित्र-विहीन, असहाय और निर्बल भला और कौन हो सकता है?"

सन् 1920 में अहमदाबाद में दलित वर्गों के सम्मेलन में बोलते हुए उन्होंने कहा, "जिन दंडनीय अपराधों के लिए हम सरकार को पैशाचिक प्रवृत्ति वाली मानते हैं, क्या हम स्वयं अपने अस्पृश्य भाइयों के प्रति उसी अपराध के दोषी नहीं हैं?.... हम उन्हें पेट के बल, घुटनों पर चलने को मजबूर करते हैं, हम उन्हें जमीन में नाक रगड़ने को बाध्य करते हैं, गुस्से से लाल आंखें दिखा कर हम उन्हें रेलगाड़ी से नीचे धकेल देते हैं। हम साम्राज्य के 'लावारिस'

बन गए हैं, क्योंकि हमने अपने ही बीच 'लावारिस' पैदा कर लिए हैं। गुलामों का मालिक हमेशा गुलामों से अधिक चोट खाता है।.... यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मैं एक अस्पृश्य के घर में जन्म लेना चाहूंगा ताकि मैं उनके दुःखों, कष्टों और उन पर लगाए गए कटाक्षों का साझीदार हो सकूं और स्वयं को व उनको इस त्रासदायी परिस्थिति से मुक्त कर सकूं।"

यंग इंडिया (Young India) के 25 मई 1921 के अंक में उन्होंने लिखा, "स्वराज्य अथवा स्वतंत्रता बेमानी है यदि हम भारत की जनता का पांचवां भाग निरन्तर आधीन बनाए रखेंगे। जब हम स्वयं अमानवीय हैं तो हम ब्रिटिश राज से दूसरों की अमानवीयता से परित्राण की बात कैसे कह सकते हैं?" तदुपरांत उन्होंने लिखा, "यदि मेरे सन्मुख यह सिद्ध कर दिया जाए कि अस्पृश्यता हिन्दुत्व का अभिन्न भाग है तो मैं उसके विरोध में खुले रूप में स्वयं को बागी घोषित कर दूंगा।"

गांधी ने अस्पृश्यता को हिन्दुत्व की भद्दी विकृति माना और उसके उन्मूलन के लिए निरंतर अथक कार्य किया। जब उन्होंने भारत में, अहमदाबाद के ठीक बाहर अपना पहला आश्रम स्थापित किया, उन्होंने उसका नाम 'हरिजन आश्रम' रखा और उसमें एक हरिजन परिवार को रखा। उस परिवार की पुत्री लक्ष्मी को उन्होंने अपनी पुत्री के रूप में गोद लिया। इसके प्रतिकार में उच्चवर्ग के कुछ हिन्दुओं ने उस आश्रम को आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया। किंतु गांधी को अपने निश्चय से कोई भी डिगा न पाया।

सन् 1924 में उन्होंने ट्रावनकोर राज्य के वाइकोम तक यात्रा की और अस्पृश्य लोगों द्वारा मंदिर तक जाने वाले सार्वजनिक मार्गों के प्रयोग को वर्जित किए जाने के विरोध में सत्याग्रह किया। उन्होंने सत्याग्रहियों को प्रेरित करते हुए कहा, "हम हिन्दुत्व को उसके सबसे बड़े दाग से मुक्त कराने का प्रयास कर रहे हैं। जिस पूर्वाग्रह से हमें लड़ाई लड़नी है, वह एक लम्बे समय से चला आ रहा पूर्वाग्रह है। यह संघर्ष एक बहुत बड़ी लड़ाई की छोटी सी मुठभेड़ मात्र है। हम आशा करते हैं कि हमारे प्रयत्न का परिणाम अस्पृश्यों की सामान्य स्थिति में चतुर्दिक सुधार के रूप में होगा।" लम्बे समय तक चला यह सत्याग्रह केवल आंशिक रूप में सफल हुआ। किंतु इसका लाभकारी प्रभाव अन्य स्थानों के उच्चवर्ग के हिन्दुओं पर पड़ा और इसने अन्य अस्पृश्य लोगों को अन्य नगरों के मंदिरों के सबंध में भी इसी प्रकार का कदम उठाने को प्रेरित किया।

सन् 1932 में उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा अस्पृश्यों के लिए अलग मतदान-केन्द्र की स्थापना के जातीयतावादी निर्णय के विरोध में आमरण अनशन कर दिया, क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया कि इस प्रकार का निर्णय हिन्दुओं के मध्य अलगाव पैदा करेगा और

छुआछूत को बढ़ावा देगा। यह अनशन उच्च जाति के हिन्दुओं को अस्पृश्यता के पाप के विषय में जागरूक करने के लिए भी था। उनके अनशन की समाप्ति के तुरंत बाद, उसकी परिणति पूना पैक्ट (Poona Pact) के रूप में हुई, जिसमें प्रसिद्ध कानूनविद् और अस्पृश्यों के नेता बी. आर. अम्बेडकर ने यह स्वीकार किया कि उनका समाज अलग मतदान-केन्द्रों का प्रयोग नहीं करेगा। उन्होंने 'हरिजन सेवक समाज' की स्थापना की, साप्ताहिक *हरिजन* (Harijan) का प्रारंभ किया और अगले नौ महीने पूरे भारत का भ्रमण कर अलग-अलग स्थानों में अस्पृश्यता विरोधी अभियान चलाया।

स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर जब नेहरू अपनी अंतरिम मंत्रि-परिषद् के गठन में संलग्न थे, गांधी ने उन्हें बी. आर. अम्बेडकर को अपने मंत्रिमंडल में लेने का आग्रह किया। इस विषय में जब नेहरू ने तर्क किया कि वह कांग्रेस दल के सदस्य नहीं हैं और पार्टी को बदनाम कर रहे हैं, तब उन्होंने सख्ती से यह समझाया कि अधिकार भारत को वापस मिला है, न कि कांग्रेस दल को। इस प्रकार से अम्बेडकर कानून मंत्री और संविधान का प्रारूप तैयार करने वाली समिति के अध्यक्ष नियुक्त किए गए। इसके परिणाम स्वरूप अम्बेडकर को पर्याप्त अवसर मिल गया कि वे संविधान के प्रारूप में अपनी मुहर लगा कर साधन-विहीन सामाजिक वर्ग के हितों की रक्षा के लिए उचित उपाय पहले से ही सुनिश्चित कर सकें। सबसे महत्वपूर्ण था कि हर प्रकार की अस्पृश्यता पर पूर्णरूप से पाबन्दी लगा दी गई। यह कांग्रेस पार्टी के भारी मात्रा में बहुमत प्राप्त करने और सभी पर गांधी के उच्च चरित्र का प्रभाव था, जिससे यह सुनिश्चित हो सका कि इन निर्णयों का पूरी तरह पालन हो सके।

धनंजय कीर, जो अम्बेडकर को 'आधुनिक मनु' कहते हैं, लिखते हैं, "एक अस्पृश्य व्यक्ति जिसे अपने बचपन में दुतकार कर गाड़ी से उतार दिया गया था और स्कूल में अलग बिठाया गया था, जिसकी एक प्राचार्य के रूप मे अवमानना हुई, जिसे छात्रावास, भोजनालयों, नाई की दुकानों, मंदिरों से बेदखल किया गया हो और जिसे अंग्रेजों के पिट्ठू के रूप में धिक्कारा जाता रहा हो.... अब एक स्वतंत्र देश का प्रथम कानून मंत्री और उसके संविधान का प्रमुख शिल्पी बन गया। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि और भारतीय इतिहास का एक चमत्कार था।"

वे सभी जो पहले अस्पृश्य और तदुपरांत हरिजन और दलित जाने जाते थे, सन् 1980 के दशक के प्रारंभ से एक महत्वपूर्ण राजनैतिक समूह के रूप में उभरे और आज उनका अपना स्वयं का राष्ट्रीय स्तर का राजनैतिक दल है। एक दलित महिला भारत के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश की सन् 1998 से 2003 तक के समय में दो बार मुख्यमंत्री बन चुकी है। एक प्रतिभाशाली दलित जिसने लन्दन स्कूल ऑफ इकॉनामिक्स से डिग्री प्राप्त

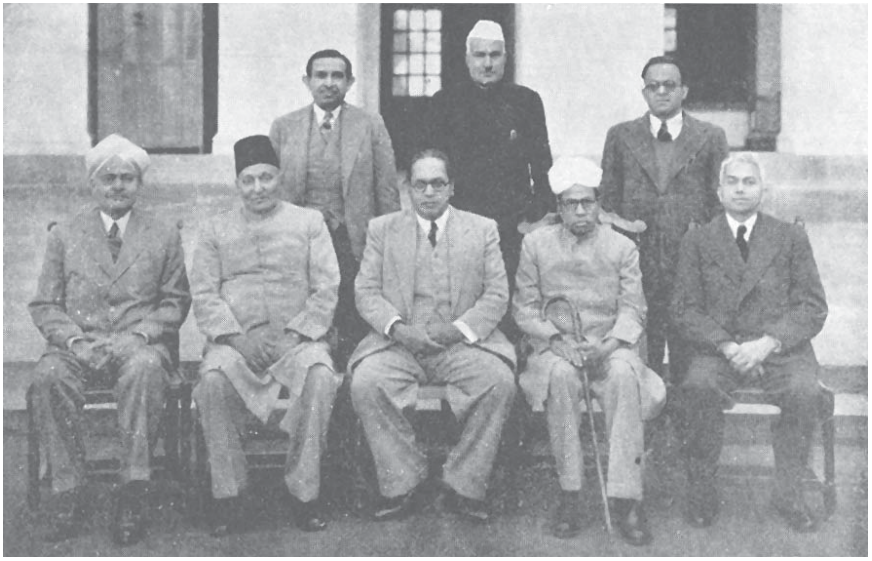

संविधान प्रारूप तैयार करने की समिति के सदस्यों के साथ डा. अम्बेडकर

की, टर्की, चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका में भारत के राजदूत और तदुपरांत विज्ञान और प्रौद्योगिकी के मंत्री, भारत के उपराष्ट्रपति और सन् 1997 से 2002 तक भारत के राष्ट्रपति बने। गांधी जीवित होते तो यह सब देखकर आह्लाद से भर उठते किंतु संभवतः आंशिक रूप में। दिसम्बर 1947 में जब उनसे एक संवाददाता द्वारा यह पूछा गया कि "भारतीय गणराज्य का राष्ट्रपति कौन होगा? क्या जवाहरलाल नेहरू को यह पद नहीं मिलना चाहिए?" तब उनका उत्तर था "यदि मेरे तरीकों से चलें तो भारतीय गणराज्य की प्रथम राष्ट्रपति दलित जाति की एक बहादुर भंगी लड़की होगी। यदि सत्रह वर्ष की युवती इंग्लैंड की महारानी बन सकती है तो एक भंगी लड़की जिसे अपने लोगों का यथेष्ठ स्नेह प्राप्त हो, तथा वह पूर्ण निर्दोष एवं उच्च चरित्र वाली हो, भारत की प्रथम राष्ट्रपति क्यों नही बन सकती?"

दुर्भाग्यवश भारत के स्वतंत्र होने के मात्र छः महीनों के भीतर ही गांधी की हत्या और तत्पश्चात् ग्राम आधारित 'रचनात्मक कार्यक्रमों' के स्थान पर शहरी उद्योग विकास की ओर ध्यान दिये जाने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों के दलितों को उनकी पहली जैसी शोचनीय अवस्था में छोड़ दिया गया। हालांकि उनमें से बड़ी संख्या में लोग ऊंचे सरकारी और राजनैतिक पदों पर पहुंचे हैं, किंतु कुछ क्षेत्रों में उनकी स्थिति और भी शोचनीय हुई है क्योंकि उनके शिक्षा प्राप्त करने और राजनैतिक सहभागिता ने केवल उच्च जाति के लोगों

में ही नहीं बल्कि उनसे एक या दो स्तर ऊपर की जाति के लोगों में भी क्रोध और हिंसा को भड़का दिया है। जैसा कि एक समाजशास्त्री ने तमिलनाडु का संदर्भ देते हुए कहा "पहले दलित वर्ग वर्जित और कुचला हुआ था। अब तो वे सम्मिलित और उत्पीड़ित हैं।" सन् 1991 से भारत के आर्थिक उदारीकरण और वैयक्तीकरण की नीति ने उन्हें बुरी तरह प्रभावित किया है क्योंकि गैर सरकारी व्यवसायिक प्रतिष्ठान, पब्लिक सेक्टरों की तरह नौकरी के लिए उनकी नियत संख्या के अनुरूप उन्हें काम देने के लिए सहमत नहीं हैं।

ड. भारतीय नारी की मुक्ति

पारम्परिक रूप से भारतीय नारी का कार्यक्षेत्र परिवार और घर तक ही सीमित था। 1900 के दशक में आरम्भ हुए 'वूमनस इंडियन एसोसिएशन' (Women's Indian Association) और 'नेशनल काउंसिल फॉर इंडियन वूमन' (National Council for Indian Women) जैसे संस्थान यद्यपि अस्तित्व में थे किंतु उनमें बड़ौदा और भोपाल की महारानियों जैसी धनाढ्य वर्ग की महिलाएं ही सम्मिलित होती थीं। वे अंग्रेजों के साथ अपने घनिष्ठ संबंध बनाए रखती थीं और उनका मुख्य ध्यान दान और पर-हित तक ही सीमित था। साधारण भारतीय नारी सार्वजनिक क्षेत्र से पूर्णतः अनुपस्थित थी।

अपने राष्ट्रीय संघर्ष के प्रारंभिक दिनों में ही गांधी ने घोषित किया था, "जब तक महिलाएं सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में उतर कर उसे परिष्कृत नहीं करतीं, हमें स्वराज्य मिलने की सम्भावना नहीं है। यदि हमें स्वराज्य मिल भी जाए तो भी मेरे लिए उस स्वराज्य का कोई प्रयोजन नहीं है जिसमें महिलाओं ने अपना पूरा योगदान न दिया हो।" उन्होंने भारतीय महिलाओं से आजादी के संघर्ष में जुड़ने का आह्वान किया। उनके इस प्रस्ताव के उत्तर में महिलाएं आगे आईं। प्रारंभ में महिलाएं कांग्रेस के सत्रों में स्वयंसेवी के रूप में आईं किंतु असहयोग आंदोलन, विदेशी वस्त्रों का विरोध और नमक सत्याग्रह तक हजारों महिलाएं इस आंदोलन की सक्रिय सहभागी हो गईं थीं। कवियत्री सरोजनी नायडू उनकी अधीनस्थ सहकर्मी बन गईं। उनके एक आग्रह पर महिलाओं ने अपने आभूषण दान कर दिए, जुलूसों में भाग लिया, विदेशी शराब और विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरने दिए, सड़कों पर खड़े होकर खादी के वस्त्र बेचे और अपने घरों में सत्याग्रहियों को आश्रय दिया। उनके द्वारा संग्रहित आभूषणों के संबंध में फिशर लिखते हैं "धन एकत्र करने में गांधी अत्यंत दृढ़प्रतिज्ञ और किसी भी अवरोध को न मानने वाले थे। उन्हें महिलाओं से उनके आभूषण उतरवाने में विशेष रस मिलता था।" वे गांधी को उद्धृत करते हैं, "मैं उनके भीतर आभूषणों के अत्यधिक लोभ के प्रति अरुचि पैदा करना चाहता हूं और एक ऐसी अभिलाषा पैदा करना चाहता हूं कि वे निर्धनों के निर्वहन के लिए उनका परित्याग कर सकें।" गांधी इस प्रयास

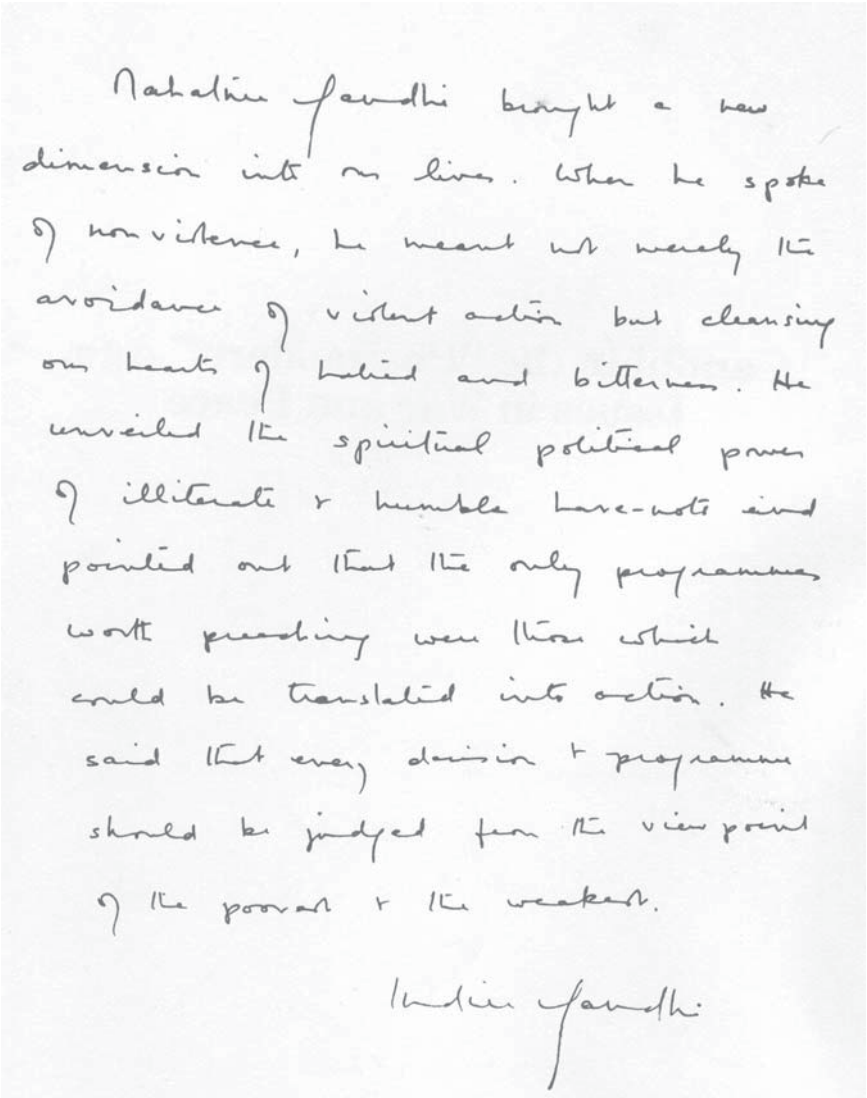

Mahatma Gandhi brought a new dimension into our lives. When he spoke of non-violence, he meant not merely the avoidance of violent action but cleansing our hearts of hatred and bitterness. He unveiled the spiritual political power of illiterate & humble have-nots and pointed out that the only programmes worth preaching were those which could be translated into action. He said that every decision & programme should be judged from the viewpoint of the poorest & the weakest.

Indira Gandhi

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी
सौजन्यः **प्रोफेसर राल्फ बुल्टजन्स**

में उल्लेखनीय रूप से सफल रहे, विशेष रूप में इस बात को ध्यान में रखते हुए कि साधारण भारतीय महिलाएं अपने पतियों की अपेक्षा अपने आभूषणों से अधिक लगाव रखती हैं।

जब 1942 का 'भारत छोड़ो' आंदोलन प्रारंभ किया गया और गांधी तथा अन्य नेता मुंबई के गोवालिया मैदान की सार्वजनिक सभा से बंदी बना कर ले जाये गए, एक युवा साहसी महिला जिसका नाम अरुणा आसफ अली था, ने भारतीय ध्वज फहराया। एक अन्य साहसी महिला उषा मेहता ने अन्य तीन महिलाओं के साथ मिल कर एक गुप्त 'कांग्रेस रेडियो' चलाना शुरू कर दिया। गांधी के अंहिसात्मक राष्ट्रीय आंदोलन द्वारा भारतीय महिलाओं ने पहली बार अपनी मां और पत्नी की भूमिका के अतिरिक्त एक 'अहिंसात्मक योद्धा' का नया चरित्र भी अपनाया और कार्य किया।

जब स्वतंत्रता प्राप्त हुई, महिलाओं को पुरुषों के समान पूर्ण कानूनी समानता प्राप्त हुई। पहली यूनियन कैबिनेट में स्वास्थ्य मंत्री राजकुमारी अमृत कौर थीं जो कपूरथला की राजकुमारी थीं और जो 1915 में अपने राजसी ऐशो-आराम का परित्याग कर गांधी की शिष्या बन गईं थीं। श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित सोवियत यूनियन में भारत की प्रथम राजदूत बनाई गई थीं। 1953 में उन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल एसेम्बली का अध्यक्ष चुना गया। उसके पंद्रह वर्षों के भीतर ही श्रीमती इंदिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री बनीं और सोलह वर्षों तक, बीच में मात्र दो वर्षों के व्यवधान के अतिरिक्त, इस उच्चतम पद पर बनी रहीं। तब से अनेकों भारतीय महिलाओं ने राजनीति, कूटनीति, व्यवसाय, बैंकिंग, उद्योग, जीव-प्रौद्योगिकी, संचार माध्यमों और विमान चालन सहित अन्य कई व्यवसायों में ऊंचे पदों को प्राप्त किया है। 25 जुलाई 2007 से भारत की राष्ट्रपति और 3 जून 2009 से लोक सभा की अध्यक्ष पद पर महिलाएं आसीन हैं।

इन सबसे भी अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि महिलाओं के सशक्तिकरण और आत्म-निर्भरता के अनेक समूह भारत के विभिन्न स्थानों में अंकुरित हो गए हैं, यहां तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी। इनमें सबसे उल्लेखनीय है 'सेवा' (Self Employed Women's Association) जो अहमदाबाद से संचालित होती है। इसकी स्थापना सन् 1972 में श्रीमती इला भट्ट ने की थी, जो पेशे से एक वकील थीं और बाद में सामाजिक कार्यकर्ता बन गईं थीं और जो उन ग्रामीण महिलाओं के भीषण शोषण से अत्यन्त क्षुब्ध थीं जो काम की तलाश में गांव से शहर आतीं और ठेकेदारों द्वारा अनैतिक रूप में शोषित होती थीं। 'सेवा' उन महिलाओं को उचित वेतन, उनके कार्य हेतु संतोषप्रद सुविधाएं, कानूनी सुरक्षा, कल्याणकारी योजनाओं संबंधी कार्यवाही करता है। सन् 1989 में इसके 29,133 सदस्य थे। अब उनकी संख्या 50,000 के करीब है। विवेक पिंटो लिखते हैं "इन महिलाओं के वीरोचित संघर्ष के संबंध में, खास रूप से जो गांधीवादी वृत्ति है, वह यह कि इन सभी ने कार्यान्वयन हेतु प्रत्यक्ष

मार्ग (Direct Action) का अनुसरण किया। वे लगातार अपने मालिकों और पुलिस को पत्र-व्यवहार द्वारा सूचना देती हैं और स्वयं के लिए सहकारी समितियां स्थापित करती हैं ताकि अहिंसा और आर्थिक और प्रबंधन-जन्य पर्याप्तता के संबंध में वे जोरदार ढंग से अपनी आवाज उठा सकें।"

भारतीय महिलाओं की सामाजिक स्थिति में यह प्रभावपूर्ण विकास गांधी के अहिंसात्मक राष्ट्रीय आंदोलन का सीधा परिणाम है। इस राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता के लिए उनका आह्वान और परिणाम स्वरूप महिलाओं का सशक्तिकरण उनकी उन्नत स्थिति का कारण है। बहुत सारे यूरोपीय देशों में और संयुक्त राज्य अमेरिका में भी, महिलाओं को वोट देने का अधिकार लगातार कई वर्षों के घोर संघर्ष के उपरांत, बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में ही प्राप्त हुआ। फिर भी बहुत सारे कार्यों का सम्पन्न होना अभी भी बाकी है, क्योंकि अभी तक भारतीय महिलाओं को राजनैतिक और अन्य क्षेत्रों में पुरुषों की अपेक्षा 30 प्रतिशत तक की सहभागिता भी नहीं मिल पाई है। सन् 1941 में गांधी ने लिखा था, "यद्यपि सत्याग्रह ने भारतीय महिलाओं को उनके अंधकार से निकालकर बाहर का मार्ग दिखाया है जो कि किसी अन्य तरीके द्वारा इतने कम समय में संभव न हो पाता, फिर भी कांग्रेसियों ने अभी तक वह अनुभव करने की आवश्यकता नहीं समझी है कि स्वराज्य के लिए संघर्ष में महिलाएं बराबरी की साझेदार बनें। उन्होंने अभी तक यह अनुभव नहीं किया है कि सेवा कार्य के उनके लक्ष्य में महिलाओं को पुरुषों का वास्तविक सहायक होना चाहिए।" दुर्भाग्यवश अधिकांश भारतीय पुरुष राजनीतिज्ञों में वही मानसिकता अभी भी विद्यमान है।

"स्त्री, पुरुष की जीवन संगिनी है जो समान मानसिक क्षमताओं से युक्त है। उसे पुरुष की गतिविधियों की छोटी से छोटी बातों को विस्तार पूर्वक जानने का अधिकार है।"

कलाकारः रेखा राव

अनुबन्धपत्रकी प्रणाली का उन्मूलन

महात्मा गांधी की एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपलब्धि,'घर्षणित अनुबन्ध अथवा इकरारनामा प्रणाली' का उन्मूलन थी, जिसके बारे में बहत कम लोग जानते हैं। इस प्रणाली के अनुसार निर्धन व बेरोज़गार भारतीयों को दूर-दराज़ बसी बस्तियों में भेज कर उनसे बहुत कम पारिश्रमिक पर काम लिया जाता था।

दक्षिण अफ़्रीका में पहली बार उन्होंने देखा कि अनुबन्धित भारतीयकितनी दयनीय दषा में रहते और काम करते हैं। इसके अलावा उन्हें वोट करने का अधिकार प्राप्त नहीं था, उनके लिए सार्वजनिक फुटपाथ पर चलना वर्जित था, 9 बजे रात के बाद वे बिना परमिट के घर से निकल नहीं सकते थे तथा उन्हें तीन पाउन्ड चुनाव टैक्स भी देना पड़ता था। इस समस्या को सुलझाने के लिए दक्षिण अफ़्रीका में वे 22 सालों तक रहे, जबकि आरम्भ में वे केवल कुछ हफ़्तों के लिए वहां गए थे। इस दौरान उन्होंने वहां के प्रवासी भारतीयों को प्रेरित किया, 1894 में नैटाल इन्डियन कॉन्ग्रेस का गठन किया, 1903 एवं 1910 में फ़ीनिक्स और टॉल्सटॉय फ़ार्म स्थापित किए, 1903में 'इन्डियन ओपिनियन' नामक अख़बार निकाला। इसके अलावा 1906 में सत्याग्रह की सषक्त रणनीति बनाई जिसकी वजह से उन्होंने भारतीयों के पक्ष में नैटाल सरकार से 1907 में और ट्रान्सवाल सरकार से 1914 में इन राज्यों में अनेक महत्वपूर्ण सुधार लागू करवाए।

1896 में भारत आने पर, उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका में भारतीयों द्वारा किए जा रहे कठोर परिश्रम का अपने भाशणों और एक ''हरे पैम्फ़्लेट'' के ज़रिए भरपूर प्रचार किया। पैम्फ़्लेट कानाम उसके हरे आवरण की वजह से पड़ा। इसके बारे में रायटर समाचार एजेंसी की एक रिपोर्ट के दक्षिण अफ़्रीका पहुंचने पर वहां बहुत हंगामा हुआ।28 दिसम्बर 1896 को गांधी के अपने परिवार के साथ डर्बन पहुंचने पर गोरे लोगों की भीड़ ने उन पर बहुत बुरी तरह हमला किया। स्थानीय पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की दयालु-हष्दय पत्नी द्वारा बचाए जाने की वजह से वे बाल-बाल बच गए।

1901 में भारतीय मज़दूरों के हालात का अध्ययन करने के इरादे से उन्होंने मॉरिषस की यात्रा की। 1912 में जब फ़िजी के प्रवासी भारतीयों ने अपनी समस्याएं सुलझाने

के लिए उनकी सहायता मांगी तो उन्होंने मनीलाल डॉक्टर को वहां जाने के लिए मना लिया और उनसे वापसी में मॉरिषस रुकते हुए आने का अनुरोध भी किया।

इस दौरान उन्होंने गोपाल कष्ण गोखले और दादाभाई नौरोजी से पत्र व्यवहार किया। उन दोनों महानुभावों ने विदेषों में बसे भारतीयों के लिए किए गए उनके प्रयासों को सराहा और उनका भरपूर समर्थन किया।मुख्यतः, इसी कारणवष अनुबन्ध पत्र विरोध अभियान भारतीय राश्ट्रीय कॉन्ग्रेस के लिए एक विचार-वस्तु बन सका। उसके पहले तक अन्य ब्रिटिष उपनिवेषों में बसे अनुबन्धित भारतीयों के बारे में उपनिवेषीय कार्यालय की काफ़ी सकारात्मक रिपोर्टें दी जाती थीं जिसके कारण आई एन सी सदस्य तथा अनेक षिक्षित भारतीय इस आप्रवास को भारत के लिए बहुत लाभकारी समझते थे। केवल 1913 में और उसके बाद से ही अनुबन्ध विरोधी प्रस्ताव जारी किए जाने लगे। 1915 के आई एन सी अधिवेषन में पारित हुए प्रस्ताव में इसका पूरी तरह उन्मूलन किए जाने का आवाहन किया गया, क्योंकि''यह एक तरह की गुलामी का प्रतीक था जो श्रमिकों को सामाजिक और राजनीतिक रुप से भ्रश्ट बनाता है एवं राश्ट्र के आर्थिक और नैतिक हितों के लिए हानिकारक है।''

1915 में भारत लौटने के तुरन्त बाद गांधी ने चार्ली एन्ड्रेयूज़को फ़िजी जा कर वहां के अनुबन्धित भारतीयों की दषा की रिपोर्ट भेजने को प्रेरित किया। एन्ड्रयूज़, विलियम पियर्सन नामक एक सहयोगी के साथ वहां गए। उनकी रिपोर्ट बहुत विवेचनात्मक थी। अनुबन्धित श्रमिक उन्मूलन लीग द्वारा प्रकाषित इस रिपोर्ट से अनुबन्ध विरोधियों के हाथ अधिक सषक्त हुए तथा उन्होंने अपना अभियान भर्ती किए जाने वाले क्षेत्रों में भी आरम्भ कर दिया। साथ ही उन्होंने लोगों को ''अर्कटिया'' अर्थात भर्ती करने वाले अधिकारियों को अपने गांवों से भगा देने के लिए प्रेरित किया।

भारतीय राश्ट्रीय कॉन्ग्रेस के जनवरी 1917 के कलकत्ता में हुए अधिवेषन में यह संकल्प लिया गया कि ''अनुबन्धित श्रम के पूर्ण उन्मूलन के बिना उन कश्टों का निवारण असम्भव है जिनकी वजह से मज़दूरों का अत्यधिक नुकसान हुआ है।सारे सम्बन्धित लोगों ने सर्वसम्मति से इसका समर्थन किया।'' गांधी ने घोशणा की कि यदि इसका उन्मूलन नहीं किया गया तो वे सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करेंगे। 20 मार्च 1917 को वॉयसरॉय लॉर्ड हार्डिन्जने घोशित किया कि अनुबन्धित मज़दूरों की भर्ती पूरी तरह से बन्द कर दी जाए। परन्तु उसी साल जुलाई में उपनिवेष कार्यालय ने एक नई योजना का ऐलान कर दिया। ''इस्लिंगटन स्कीम ऑफ़ असिस्टेड एमिग्रेषन'' नामक इस योजना में अनुबन्ध प्रणाली की सारी घर्षणत विषेशताएंपूरी तरह ख़त्म करने का दावा किया गया था।

फिर भी गांधी ने इसका ज़ोरदार विरोध किया। उन्होंने कहा कि ''यह नए तरह की अनुबन्ध ा प्रणाली है जो मज़दूरों कीहितकारी होने के बजाय उपनिवेषीय मालिक के हित में अधिक है।'' भारतीय राश्ट्रीय कांग्रेस ने इस विचार का भरपूर समर्थन किया। जनवरी 1919 में वॉयसरॉय ने इसे कार्यान्वित करने का विरोध किया, जिसके फलस्वरुप इस पर रोक लगा दी गई।

ब्रिन्सले समरु ने अपने विद्वत्तापूर्ण पत्र ''द महात्माज़ करेबियन कन्सर्न्स'' में लिखा है, ''एक ऐसे साम्राज्य के विरुद्ध, जिसमें कभी सूर्यास्त नहीं होता था, अपनेषांतिपूर्ण संघर्श मेंगांधी ने नाटाल, मॉरिषस, फ़िजी और करेबियन मेंमेहनत-मषक्कत कर रहे मज़दूरों के लिए भी समय निकाल लिया।खुद के उदाहरण से, उनको परामर्ष देते हुए और उनके हित में आन्दोलन का रास्ता अपना कर श्रमिकों की दयनीय दषादुनिया के समक्ष रखीकृ कृ.। उन्होंने उन अनुबन्धित मज़दूरों में नई आषा का संचार किया और इस तरह वष्क्षारोपण करने वाले मज़दूरों के दुखदाई जीवन और उनके दूर-दराज़ देषों मे भेजे जाने के कारण लगातार आने वाली तकलीफ़ों से कुछ राहत दिलाने का काम किया। इसीलिए उन प्रवासी भारतीयोंने उन्हें 'महात्मा' का नाम दिया।

उल्लेखनीय है कि 1837 से 1917 तक की अवधि में अनुबन्धित प्रणाली के कारण 11,94,957 भारतीय दूर-दराज़ के ब्रिटिष उपनिवेषों में भेजे गए। इनमें से सबसे अधिक संख्या मॉरिषस में 4,53,063, ब्रिटिष गायना में 2,38,909, नाटाल में 1,52,184 और फ़िजी में 60,965 भारतवासियों को विस्थापित किया गया।

च. भारतीय सामंतवाद का अंत

स्वतंत्रता के पूर्व भारत राजा-महाराजाओं, औपनिवेशिक प्रशासकों और दरिद्रों वाला अत्यधिक सामन्तवादी देश था। राजा महाराजा राजसी ठाटबाट में शान से रहते थे जो ब्रिटिश अफसर-शाही का प्रचुर सत्कार करने के लिए एक दूसरे से होड़ लगाने में लगे रहते थे। ब्रिटिश अफसरशाह सक्रियता से इस काम के लिए उन्हें प्रोत्साहित करते हुए स्वयं भी लंदन और भारत में दिखावे और तड़क-भड़क वाले समारोहों में खूब मग्न रहते थे। पैट्रिक फ्रेंच लिखते हैं, "सन् 1911 में किंग जॉर्ज पंचम का राज्याभिषेक एक भव्य समारोह के रूप में, एक प्रकार से विशाल प्रचार का माध्यम था, जिसमें असंख्य भारतीय राजा महाराजा और साम्राज्यवादी मंत्री सात घंटों के वेस्टमिन्स्टर ऐबे पर आयोजित इस समारोह में उपस्थित थे।.... यह साम्राज्यवाद की पराकाष्ठा का युग था जब अपना स्वामित्व सिद्ध करने के लिए और अधिक से अधिक तड़क-भड़क

दिखलाने के लिए, कुछ हद तक क्रूर बल के प्रयोग का परित्याग कर दिया गया था। दिल्ली में एक विशाल दरबार आयोजित किया गया जिसमें सभी भारतीय राजा महाराजा उपस्थित थे।

गीता मेहता राजा महाराजाओं के उस अविश्वसनीय रूप से अपव्ययी जीवन शैली का उदाहरण राजसी शान-ओ-शौकत से किए गए एक कुत्ते के विवाह से देती हैं। "दो श्वान (कुत्ते) - रोशनआरा बुरके में, हीरे जवाहरातों से जड़ी हुई थी और बॉबी लाल रेशमी पायजामा पहने (यह सुनिश्चित करने के लिए कि वह दुल्हिन की मर्यादा न तोड़े) तैयार थे। वैवाहिक समारोह एक राजकुमारी के विवाह के शाही समारोह की तरह सारी रस्मों को पूरा कर के सम्पन्न हुआ। एक राज्य-दरबारी ने पूरी औपचारिकता से उस सूची को पढ़ा जिसमें सोने की पालकी सहित रोशनआरा द्वारा शादी के दहेज में लाए जाने वाली दौलत का उल्लेख था।.... समारोह के अंत में उपस्थित राजा महाराजाओं ने विवाहित जोड़ी को सोने के सिक्के न्यौछावर करते हुए एक बड़ी टोकरी में अपने साथ लाए उपहार रखे। मेंडलसन का 'विवाह संगीत' धीमे-धीमे सुनाई पड़ रहा था।.... एक विशालकाय चौकोर मेज सजाई गई थी जिसमें दो सौ मेहमान वैवाहिक समारोह के रात्रि-भोज में उपस्थित थे। उस चौकोर मेज के मध्य में नृत्यांगनाएं उन श्वानों के लिए नाच गा रही थीं।"

भारतीय राजाओं के साथ ब्रिटिश अधिकारी गण

इस प्रकार के तड़क-भड़क वाले समारोह के विरुद्ध गांधी का पहला आक्रोश 1916 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर प्रकट हुआ, जिसमें वॉयसराय लॉर्ड हार्डिंग सहित अनेक भारतीय राजा महाराजा उपस्थित थे। उन्होंने साहस से कहा, "महामहिम और बनारस के महाराजा ने भारत की गरीबी का वर्णन किया। अन्य वक्ताओं ने भी उस विषय पर

काफी बल दिया। किंतु इस विशालकाय पंडाल में हमने क्या देखा? आभूषणों की एक विलक्षण प्रदर्शनी जो पेरिस से आने वाले जौहरियों की आंखों को भी चौंधियाने के लिए काफी थी। मैं इन धनिकों, आभूषणों से अलंकृत महानुभावों की तुलना करोड़ों निर्धनों से करता हूं और उनसे कहता हूं कि भारत के लिए कोई भी निस्तार तब तक नहीं है जब तक आप इन अलंकारों से अपने को मुक्त नहीं कर लेते और उसे न्यास के रूप में अपने भारतवासियों के लिए सुरक्षित नहीं रख देते।"

बनारस के महाराजा

'इंटरनेशनल हेरल्ड ट्रिब्यून' (International Herald Tribune) में मार्च 29, 1939 की एक ख़बर में इन्दौर के महाराजा के एक अमेरिकी महिला मार्गरेट लॉलर के साथ वैवाहिक संबंध की खबर में उन्होंने अपनी आय 7 करोड़ अमेरिकी डॉलर घोषित की, जबकि उनकी प्रजा में केवल 15 लाख व्यक्ति थे।

राजा महाराजा केवल तड़क-भड़क वाले ही नहीं थे बल्कि वे अत्यन्त स्वेच्छाचारी थे। नेहरू ने उनके बारे में इस प्रकार लिखा, "भारतीय राजा, आज संभवतः दुनिया में व्याप्त सर्वाधिक निरंकुशता को प्रदर्शित करते हैं.... यह वास्तव में आश्चर्यजनक है कि किस प्रकार सामंती दुनिया के इस पुराने परिक्षेत्र में बीसवीं सदी के मध्य में पहुंच कर भी बहुत कम बदलाव आया है।" उन्होंने बीकानेर के महाराजा की अक्खड़ डींग का उद्धरण देते हुए कहा कि "भारतीय शासक, सदियों से चली आई आनुवंशिकता के कारण यह दावा कर सकते हैं कि उनमें शासन करने और राजनीतिज्ञता की सहज प्रवृत्ति वंशगत है...."

गांधी के निर्देशों के कारण कांग्रेस पार्टी ने सन् 1930 तक राजाओं के राज्यों के मामले में एक विवेकशील रुख अपनाते हुए हस्तक्षेप न करने का निर्णय लिया ताकि वे ब्रिटिश सरकार के करीब न हो जाएं। हालांकि गांधीजी के राष्ट्रीय जागरण ने, जिसके केन्द्र में 'करोड़ों निर्धन' थे, उनके हृदय में अपनी शाही जीवन-शैली के प्रति घोर प्रतिक्रिया पैदा कर दी थी। बड़ौदा और मैसूर के महाराजा की तरह के कुछ शासक गांधी के संदेश से अनुप्राणित हुए और उनके समर्थक बन गए। हालांकि अनेक अन्य शासकों ने गांधी के द्वारा नेतृत्व वाले स्वतंत्रता संघर्ष का यह सोच कर विरोध किया कि उसके द्वारा उनके सामंतवादी शासन का अंत हो जाएगा। इसके उदाहरण नवानगर के जाम साहेब हैं, जिन्होंने घोषणा की कि, "मैं मुस्लिम लीग का समर्थन क्यों न करूं?

श्रीमान जिन्ना हमारा अस्तित्व सहने के लिए तैयार हैं, किंतु श्री नेहरू राजशाही का अंत चाहते हैं।" इसी प्रकार ट्रावनकोर के महाराजा के दीवान ने 13 जून 1947 को घोषणा कर दी कि "ट्रावनकोर अपना स्वयं का स्वतंत्र प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य बनाएगा।" इस प्रकार की मनोवृत्ति वाले राजा महाराजाओं को यह भी स्पष्ट हुआ कि ब्रिटिश भारत में आजादी की इस लहर ने उनकी अपनी प्रजा को भी उत्तेजित कर दिया है, जिनमें से कई जोरदार तरीके से उसका समर्थन कर रहे थे। इसी समय गांधीजी ने घोषित किया, "राजाओं को जनता की सर्वोच्च सत्ता को उसी तरह पहचानना चाहिए जैसा कि वे ब्रिटिश सरकार की सर्वोच्च सत्ता को पहचानते हैं। उसके बाद वे अपना कार्य करने के लिए स्वतंत्र हैं।" भारत की अंतरिम सरकार के गृहमंत्री वल्लभभाई पटेल ने इसी तथ्य को अधिक जोरदार ढंग से और कठोरता के साथ कहा। इसके बाद राजाओं के पास समय की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए अपने राज्य को भारत या पाकिस्तान में विलय के सिवाय और कोई विकल्प न बचा। 15 अगस्त 1947 के पूर्व भारतीय सीमा क्षेत्र के अन्दर के सारे राज्य-शासनों ने हैदराबाद को छोड़ कर या काश्मीर को छोड़ कर इस निर्णय को माना। इस प्रकार स्वायत्तता के सपने देखने वाले कुछ अड़ियल शासकों के हठ पूर्वक विरोध के कारण देश के छोटे प्रदेशों में विभक्त हो जाने की संभावना एकदम समाप्त हो गई। इन राज्यों के भारत में विलय स्वीकारने के एवज में उन्हें आने वाले लगभग तीस वर्षों तक प्रिवी-पर्स सहित अनेक राजनयिक नियुक्तियों और राज्यपाल पदों की प्राप्ति होती रही।

गीता मेहता ने एक अच्छा वर्णन किया है कि बंटवारे के बाद भारत ने क्या खोया और विभिन्न राज्यों के देश में विलय से क्या पाया? "ब्रिटिश राज्य द्वारा बंटवारे के फलस्वरूप भारत को 3,64,737 वर्गमील की भूमि और 8 करोड 20 लाख जनसंख्या को छोड़ना पड़ा। भारतीय राजाओं के राज्यों के विलय होने से भारत में 5,00,000 वर्गमील की भूमि और 8 करोड़ 70 लाख नए देशवासी जुड़ गए।" राज्यों के शामिल होने के विषय में वल्लभभाई पटेल ने कहा, "शासकों द्वारा अनिष्ट और अशांति पैदा करने की क्षमता.... कल्पना से कहीं अधिक है। हमें स्वयं को उस स्थिति में रख कर देखना चाहिए और उनके द्वारा किए गए त्याग को आंकना चाहिए।"

भारतीय सामंतवाद, मुगल काल से चली आ रही जमींदारी प्रथा में भी कूट-कूट कर भरा था। सन् 1793 के 'परमानैन्ट सैटलमेंट' के बाद से यह बहुत दमनकारी बन चुका था। बंगाल, संयुक्त प्रांत और बिहार के 60 प्रतिशत किसानों के पास मात्र 8 प्रतिशत से भी कम जमीन थी। जमींदार जो ताल्लुकदार भी कहलाते थे, बाकी सारी जमीन के मालिक थे। साधारणतः ये जमींदार वहां न रह कर, दूर शहरों में काफी ऐशो-आराम से रहते थे। नेहरू बताते हैं कि उनके भारी किरायों के अलावा, जिनकी रसीद शायद ही कभी उन्हें दी जाती थी, ये ताल्लुकदार प्रायः अपने किराएदारों को, विशेष अवसरों पर, जैसे परिवार में विवाह, बेटे की विदेश की शिक्षा का व्यय,

गवर्नर या उच्चाधिकारी को दी जाने वाली पार्टी अथवा कार या हाथी खरीदने के लिए आवश्यक धनराशि देने के लिए भी बाध्य करते थे।

1937 में ही कांग्रेस ने यह निश्चय कर लिया था कि जमींदारी प्रथा का अंत होना चाहिए। हालांकि गांधीजी ने कहा था, "कोई भी व्यक्ति यह चाहेगा कि छोटे-बड़े जमीदारों, भारतीय किसानों और सरकार के बीच में एक उचित, निष्पक्ष एवं संतोषजनक सहमति बने, ताकि जब कानून पारित किया जाए तब यह न तो एक मृत-पत्र के रूप में हो और न ही इसका प्रयोग जमीदारों या भयभीत किसानों पर बल के रूप में किया जाए। यदि यह परिवर्तन आएगा तो उसमें से कुछ अवश्य ही, आमूल परिवर्तन लाने वाला होगा। ऐसा परिवर्तन पूरे भारत में बिना किसी बल-प्रयोग अथवा किसी भी प्रकार के खून-खराबे के बिना होना चाहिए।"

सन् 1951 में जमींदारी-प्रथा समाप्त हो गई और जमींदारों की सारी जमीन सिवाय उस भूखण्ड के जिसमें उनके या उनके परिवारों द्वारा स्वयं कृषि की जाती थी, ले ली गई और उनके नाम में स्थानान्तरित हो गई जो उसकी गोड़ाई-जुताई और बोवाई करते थे। जमीदारों को एक मुश्त मुआवजा दे दिया गया। जमींदारी प्रथा का शीघ्र अंत एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी, किंतु बड़े किसानों से छोटे किसानों को भूमि का आवंटन और उससे भी अधिक भूमि-हीन मजदूरों को भूमि दिए जाने वाले भूमि-सुधारों की प्रगति धीमी और टुकड़ों में हुई। नोबल सम्मान से विभूषित अमर्त्य सेन ने हाल ही में इस संबंध में टिप्पणी करते हुए कहा, "मेरा अपना प्रांत पश्चिम बंगाल, इस संबंध में एक अपवाद रहा है। उसके भूमि-सुधार संबंधी कार्यों की सफलता से किसानों को काफी लाभ हुआ है, जिसमें कृषि संबंधी आर्थिक विकास की यथेष्ठ ऊंची दर भी सम्मिलित है।"

सामंतशाही और स्वेच्छाचारी जीवन शैली का तथा जमींदारी प्रथा का बिना किसी खून खराबे के अंत तथा दो को छोड़ कर अनेकों राज्यों का भारतीय संघ में निर्विघ्न विलय, गांधी के गरीबों और शोषित खेतिहर किसानों पर केन्द्रित अहिंसात्मक राष्ट्रीय संघर्ष का एक और महत्वपूर्ण प्रतिफल है। इसके पूर्णतः विपरीत अमेरिका, फ्रांस, इटली, जर्मनी, रूस, चीन और इथोपिया में सामंतशाही और दास प्रथा की समाप्ति एवं स्वतंत्रता व राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति के लिए न मालूम कितना खून बहा दिया गया।

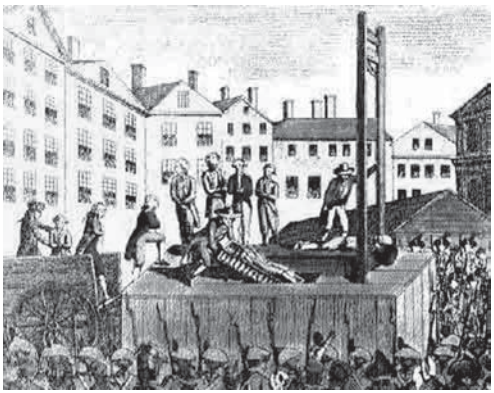

फ्रांसीसी गिलोटिन

छ. भारत के ग्रामीण उद्योगों का पुनरुत्थान

अपने अहिंसात्मक राष्ट्रीय संघर्ष में गांधीजी द्वारा 'चरखे' को मुख्य हथियार बनाने का निर्णय और उनके इस आग्रह ने कि इस संघर्ष में सभी सहभागी हों, सूत कातें, अपने काते हुए सूत का ही कपड़ा पहनें, आरंभ में बुनाई और उससे जुड़े उद्योगों को पुनः उन्नत किया। तदनुसार कुटीर उद्योगों के सम्पूर्ण क्षेत्र में जागृति की लहर फैल गई। गांधी की शिष्या कमला देवी चट्टोपाध्याय ने इस कार्य में अभूतपूर्व सहयोग दिया। उन्होंने ही कारीगारों के हितों और उनके शिल्प को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से 'भारतीय शिल्प परिषद्' की स्थापना की। "उनके लिए, 'शिल्पकारी', ग्रामीण समाज से उत्पन्न हुई खुशियों, परेशानियों, मौसम के परिवर्तनों, दन्तकथाओं में लिखे गीतों और काव्यों की स्मृतियों, कल्पित पौराणिक कथाओं, स्थानीय प्रेम कथाओं तथा हृदय की गहराइयों से किए गए अपने दैनिक जीवन के अनुभवों, सभी को सन्निहित किए है।" सन् 1952 में उन्हें 'अखिल भारतीय हस्त-शिल्प बोर्ड' (All India Handicrafts Board) का अध्यक्ष चुना गया और उस पद के माध्यम से उन्होंने हस्तशिल्प को भारतीय अर्थ-व्यवस्था की परिधि में शामिल कर दिया। उन्होंने शिल्पकारों के स्तर को बढ़ाने के लिए डिजाइन केन्द्र स्थापित किए और केन्द्र व राज्य सरकारों को सभी बड़े-बड़े शहरों में हस्तशिल्प के वाणिज्य-केन्द्र खोलने के लिए प्रेरित किया।

इसके अतिरिक्त 'खादी और ग्रामीण उद्योग कमीशन' (Khadi and Village Industries Commission) ने खादी और ग्रामीण उद्योग के उत्पादों के पुनर्जीवन, सहायता, स्तर में सुधार लाने और उनके द्वारा निर्मित सामग्री के विक्रय के लिए अभूतपूर्व कार्य किया है। कालांतर में इस कमीशन ने भारत के प्रमुख डिजाइनरों को फैशन और साज-सज्जा के सामानों के नमूने बनाने के लिए खादी का प्रयोग करने के लिए राजी किया है।

आज भारत का हस्तशिल्प उद्योग, जो मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित है बुनकरों, चरखा चलाने वालों, कशीदाकारी करने वालों, चमड़ा, संगमरमर और धातु के कारीगरों, लकड़ी, पत्थर व हड्डी की नक्काशी करने वालों, कालीन और दरी बनाने वालों के 3 करोड़ से अधिक परिवारों को रोजगार प्रदान कर रहा है। इन सामग्रियों के निर्यात से दस अरब अमेरिकी डालर से अधिक राशि

ग्रामीण कशीदाकार

प्राप्त होती है। गांधी के सूक्त वाक्य 'जन-समूह द्वारा उत्पादन, न कि बहु-उत्पादन' और 'बेरोजगारी का इलाज रोजगार प्रदान करने का प्रबंध है, न कि खैरात बांटना' स्वयं ही सिद्ध हो गए हैं।

ज. पूंजी-श्रम संबंधों का सामंजस्य

कुछ आलोचकों ने गांधी पर दोषारोपण किया है कि उन्होंने अपना ध्यान केवल खेतिहर किसानों और भूमिहीन मजदूरों पर केन्द्रित किया और कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की उपेक्षा की। यह अनुचित और असत्य है। उनके मन में मजदूर वर्ग के लिए विशेष दिलचस्पी थी और उन्होंने इस तथ्य पर खेद प्रकट करते हुए कहा "मजदूरी करने वाला वर्ग पिछली कई शताब्दियों से निम्न स्तर का माना जाता रहा है। वे शूद्र कहलाए गए हैं। इस शब्द का अर्थ ही निम्न स्तर वाला है।"

उनका निश्चित कथन था, "मैं एक जुलाहे, खेती करने वाले और स्कूल के शिक्षक के पुत्रों के बीच में किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं चाहता।.... किसी भी प्रकार का श्रम बहुत नीचा या बहुत ऊंचा नहीं कहलाए।.... मैं वर्षों से कहता चला आ रहा हूं कि श्रम का स्थान पूंजी की अपेक्षा कहीं उत्कृष्ट है। बिना श्रम के सोना, चांदी और तांबा सभी निरर्थक बोझ समान हैं। यह श्रम ही है जिसके कारण धरती के आगोश से बहुमूल्य धातुएं प्राप्त की जाती है। श्रम अमूल्य है, स्वर्ण नहीं। मैं श्रम और पूंजी के बीच में प्रगाढ़ संबंध स्थापित करना चाहता हूं। दोनों के आपसी सहयोग से अभूतपूर्व परिणाम देखे जा सकते हैं। किंतु यह तभी संभव हो सकेगा जब श्रम इतना

श्रम की विजय — मूर्तिकारः डी. पी. चौधरी

प्रबुद्ध होगा कि पहले वह स्वयं से सहयोग करे और फिर सम्मानजनक बराबरी से, पूंजी के साथ सहकारिता के लिए पहल करे।"

पूंजी-श्रम-संबंध के विषय में गांधी के विचारों का प्रयोगात्मक और सफल प्रयोग, 1918 में अहमदाबाद के वस्त्र-उद्योग के कामगारों की हड़ताल में दिखाई पड़ा। कामगारों ने महंगाई बढ़ने के कारण मजदूरी में 50 प्रतिशत वृद्धि की मांग की थी। उनके मालिक मजदूरी में 20 प्रतिशत से अधिक वृद्धि करने के लिए राजी न थे। गांधी के लिए यह एक विशेष रूप से नाज़ुक स्थिति भी थी क्योंकि मिल-मालिक अम्बालाल साराभाई उनके प्रधान समर्थक थे जबकि उनकी बहिन अनसुइया मजदूरों की प्रमुख नेता थीं। गांधी ने 35 प्रतिशत मजदूरी में वृद्धि के लिए सत्याग्रह शुरू किया और मांग के पूरी होने के लिए अनशन शुरू कर दिया। इस हड़ताल के फल-स्वरूप 'टैक्सटाइल लेबर एसोसियेशन' (Textile Labour Association) का आरंभ हुआ जो अब तक अहमदाबाद के आस-पास की कपड़ा मिलों में स्थित सात संघों का महासंघ था। 1939 तक साठ से अधिक कपड़ा मिलों के 25,000 मजदूर इस यूनियन के सदस्य बन चुके थे। यह एक पूंजी-श्रम संस्था थी और जैसा कि कोपले लिखते हैं, "इसने वर्गों के सामंजस्य और विवादों को सुलझाने के लिए गांधी की गहरी प्रतिबद्धता को प्रतिबिंबित किया। हड़ताल अंतिम विकल्प होना चाहिए और वह भी गांधी के अहिंसा के सिद्धान्त के प्रति वचनबद्ध। मजदूरों और किसानों के दल की अभिप्रेरणा और प्रयोजन इसके सर्वथा विपरीत थे।"

एरिक ऐरिक्सन निष्चित रुप से बताते हैं कि ''गांधी के जीवन में और भारतीय श्रमिक व जुझारु अहिंसा के इतिहास में ए टी डब्लू एस 'इवेन्ट' का एक महत्वपूर्ण स्थान है। विस्तष्त उद्योग के निर्णयकों के बीच सारे लाभ संस्थागत थे जिनमें गांधी जी और मंगलदास गिरिधरदास षामिल थे। भारत में श्रमिक आन्दोलन के साथ अधिकतर गैर-राजनीतिक समस्याएं सुलझाने के लिए अहमदाबाद कपड़ा उद्योग मज़दूर एसोसिएषन सबसे आगे रहता था।'' वे बताते हैं कि 1925 में उसकी सदस्यता 14,000 से बढ़ कर 1959 में 100,000 हो गई थी। फ़रवरी 1967 के स्टेट्समैन अख़बार की एक रिपोर्ट का हवाला देते हुए वे लिखते हैं, ''अहमदाबाद का एक कपड़ा मिल कर्मचारी देष भर के सारे सहकर्मियों से अधिक कमाता है। वह 1920 में बम्बई के मिल मज़दूरों से 20 प्रतिषत कम वेतन पाता था, जब कपड़ा मिल मज़दूरएसोसिएषन की स्थापना हुई थी। परन्तु आज वह उनसे 10 प्रतिषत अधिक कमाता है। टी एल ए के नेतागण इसका पूरा श्रेय अहमदाबाद

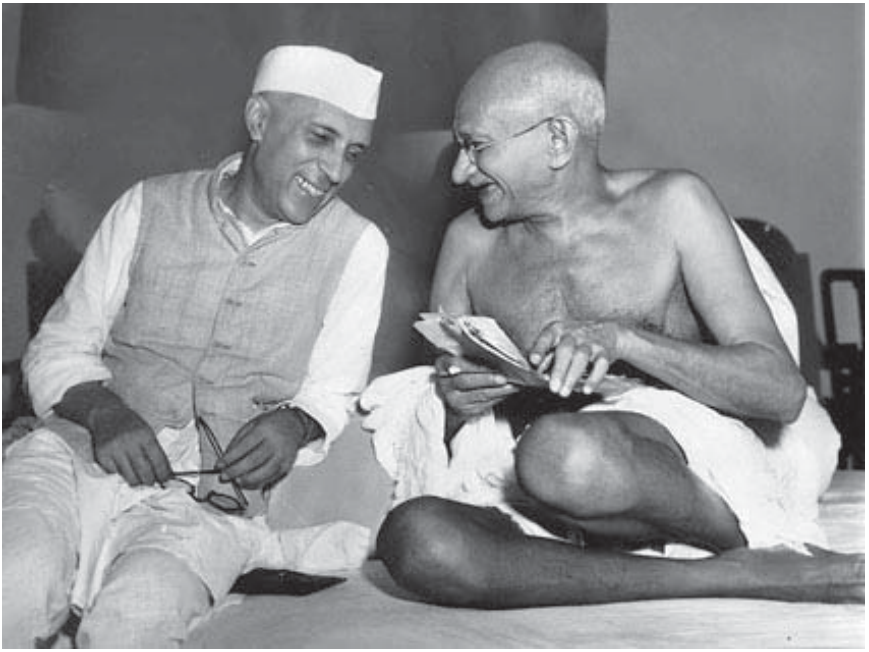

नेहरू अपने सलाहकार के साथ

में लम्बे समय से चली आ रही औद्योगिक षांति को देते हैं। यह औद्योगिक षांति, मज़दूरों के झगड़े निपटाने के लिए मध्यस्थ निर्णायकों के सिद्धान्त को नियमित तौर पर लागू किए जाने की वजह से कायम रह सकी है। इस मामले में निष्चित रुप से टी एल ए को अग्रणी कहा जा सकता है।"

झ. भारत की विदेश नीति की संकल्पना

भारत की गुटनिरपेक्ष विदेशी नीति भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष-काल में ही बनने लगी थी। वह मूलतः गांधी के उस प्रस्ताव पर आधारित थी जिसमें स्वतंत्रता और न्याय के लिए पराधीन जन-साधारण का प्रयास तथा युद्ध रोकने और शांति स्थापित करने के लिए अहिंसात्मक विरोध-निवारण-नीति का समर्थन करना मुख्य विषय था। इसके प्रमुख तत्व थे - जाति-विरोध, उपनिवेशवाद विरोध, फासिज्म विरोध, सामन्तशाही विरोध, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एवं शांति जो गांधी के दृढ़ अभिकथन के अनुरूप थे। "भारत के परित्राण द्वारा

मैं विश्व की तथाकथित सभी कमजोर जातियों को संबोधित करना चाहता हूं" और "हम अपने पड़ोसी देशों और सीमान्त क्षेत्रों तक अपनी सहायता का हाथ बढ़ाने को सदैव तत्पर हैं - इसकी कोई सीमा नहीं है। ईश्वर ने कभी सीमाएं नहीं बनाई थीं।"

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू अपने कार्यकाल में भारत के विदेशमंत्री भी थे और भारत की विदेश नीति के शिल्पी भी थे। बी.आर. नन्दा लिखते हैं, "वे गांधीजी की अगुवाई में एक चौथाई शताब्दी तक किए गए स्वतंत्रता संघर्ष से अत्यन्त प्रभावित थे। उन्होंने इस संघर्ष की, एशिया के पुनर्जागरण के रूप में व्याख्या की थी। इस तथ्य ने, कि प्रमुख रूप से एक अहिंसात्मक आंदोलन द्वारा भारत में साम्राज्यवाद की समाप्ति हुई, यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्रों के भाग्य-निर्धारण के लिए भौतिक बल आवश्यक नहीं है। गांधी के मार्ग दर्शन तथा भारतीय राजनीति के अपने मौलिक अनुभव के कारण नेहरू को ज्ञान था कि पश्चिमी पूंजीवाद और रूसी साम्यवाद दोनों ही भारत के लिए समुचित नहीं थे।"

भारत की स्वतंत्रता के पूर्व, अंतरिम सरकार के प्रमुख के रूप में भी, नेहरू ने 7 सितम्बर 1946 को रेडियो प्रसारण में कहा था, "हम यह प्रस्तावित करते हैं कि भारत जहां तक संभव हो शक्ति की दलगत राजनीति से, जिसके द्वारा एक दूसरे का विरोध होता है, स्वयं को दूर रखेगा। इसी के कारण पुराने समय में दुनिया में लड़ाईयां हुईं हैं और इसी कारण दुबारा बहुत बड़े स्तर पर भीषण विनाश हो सकते हैं। हम यह विश्वास करते हैं कि शांति और स्वतंत्रता अभिन्न हैं और कहीं भी स्वतंत्रता की अस्वीकारोक्ति, किसी अन्य स्थान की स्वतंत्रता के लिए खतरा हो सकती है, जिसका परिणाम संघर्ष और युद्ध हो सकता है। हम विशेष रूप से औपनिवेशिकतावाद और अन्य देशों पर लोगों की निर्भरता से अपनी मुक्ति चाहते हैं तथा इसके परिणाम स्वरूप हम सिद्धांत और प्रयोग रूप दोनों में सभी व्यक्तियों के लिए समान अवसरों की उपलब्धता के इच्छुक हैं।" उसके तुरंत बाद उन्होंने 'एशियन रिलेशन्स कान्फ्रेंस' (Asian Relations Conference) का आयोजन किया। इसकी शुरूआत 23 मार्च 1947 को हुई। इसमें नेहरू ने घोषणा की, "बहुत लम्बे समय तक हम एशिया के लोग, पश्चिमी अदालतों और दूतावासों में प्रार्थी बनते रहे हैं। यह बात अब इतिहास बन जानी चाहिए। अब हम स्वयं अपने पैरों पर खड़े होना चाहते हैं और उन सबके साथ मिलकर चलने के लिए तैयार हैं जो हमसे सहयोग करना चाहते हैं। हम अब दूसरों के हाथों का खिलौना नहीं बनना चाहते।" इन सभी विचारों में गांधी का स्पष्ट

प्रभाव प्रकट है और उन विचारों को नेहरू ने 1954 में 'पंचशील' के सिद्धांतों का प्रारूप दिया। वे भारत की विदेशी नीति के मुख्य तत्व बन गए। इसके अंतर्गत था— एक दूसरे के आंतरिक मामलों में दखलान्दाजी न करना, हर एक के प्रति सद्भावना रखना, युद्ध के गठजोड़ के लिए किसी के साथ न जुड़ना, हर मुद्दे को उसकी योग्यता के अनुसार आंकना, अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु बात-चीत करना तथा संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन करना। 1991 में सोवियत संघ के विघटन तक, यह विदेश नीति 120 से अधिक नए स्वतंत्र हुए देशों की विदेशी नीति थी जिन सबमें भारत की स्थिति सबसे प्रभावशाली और अगुआ की थी।

कोपले लिखते हैं, "रंगभेद के विरुद्ध गांधी के विरोध करने का तरीका, उपनिवेशवाद और नव-उपनिवेशवाद के विरूद्ध एक बड़े स्तर के संघर्ष का हिस्सा था। भारत वह प्रथम उपनिवेशकीय समाज था जिसे स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी, अतएव यह स्वाभाविक था कि तीसरी दुनिया द्वारा गांधी के तरीकों का अत्यन्त गहन रूप से अध्ययन किया जाता। गुटनिरपेक्ष आंदोलन के मुख्य प्रणेता के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विषय में नेहरू के बढ़ते हुए महत्व के कारण भारत का उदाहरण और अधिक प्रभावपूर्ण बन गया था।"

ब्रिटिश कॉमनवेल्थ में शामिल होने से भारत के निर्णय के विषय में एस. आर. मेहरोत्रा का कथन है, "इस निर्णय ने भारत में रहने वाले अनेकों भारतीयों और विदेशियों को हैरान कर दिया क्योंकि यह निर्णय उस सरकार द्वारा लिया गया था जिसका संचालन सन् 1920 से ही जवाहरलाल नेहरू कर रहे थे जो दूसरे देशों के नियंत्रण वाली स्थिति के पूर्ण विरोधी थे और अपने देश के पूर्ण स्वराज के बड़े पक्षधर थे.... वे ब्रिटेन को, उपनिवेशवाद का प्रधान पुरोधा मानते थे।" फिशर इंगित करते हैं कि लंदन में द्वितीय गोल-मेज सम्मेलन के समय अक्टूबर 1931 में, जब गांधी से रेले क्लब में भाषण देने के बाद पूछा गया, "आप किस हद तक भारत को अंग्रेजी साम्राज्य से दूर रख सकेंगे?" इसके उत्तर में गांधी ने कहा, "साम्राज्य से पूर्णरूपेण, किंतु ब्रिटिश राष्ट्र से कदापि नहीं.... सम्राट की सत्ता जानी चाहिए और मैं ब्रिटेन का बराबरी का साझीदार बनना चाहूंगा, ब्रिटेन के सुख-दुःख का सहभागी बनकर तथा उनके नियंत्रण वाले राज्यों का भी बराबरी का सहभागी होकर। किंतु यह साझेदारी बराबरी की शर्तों पर होनी चाहिए.... इंग्लैंड और भारत दोनों को प्यार के रेशमी धागे में बंधा होना चाहिए।" साथ ही फिशर यह भी कहते हैं "इन वक्तव्यों में गांधी ने विलक्षण-पूर्व दृष्टि द्वारा शुद्ध रूप से उस स्थिति का उल्लेख किया जो 1948 में स्वतंत्र भारत ने राष्ट्र-मंडल में प्राप्त की थी। उस कदम के समर्थकों ने 17 वर्ष

पूर्व गांधी द्वारा लंदन में कहे गये उनके शब्दों को अक्षरशः दोहराते हुए उसी तर्क का प्रयोग किया। भारतीय संविधान सभा में बोलते हुए नेहरू ने स्पष्ट किया कि "भारत के राष्ट्रमंडल में शामिल होने के निर्णय को गांधीजी की सहमति अवश्य होती।"

प्रो० निकोलस मैनसर्ज ने *कॉमनवेल्थ एक्सपीरिएंस* (Commonwealth Experience) में लिखा कि "नेहरू ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अपने विचारों की राष्ट्रमंडल को ध्यान में रखते हुए पुनः व्याख्या की। यह एक सेतु था पूर्व और पश्चिम के बीच, विभिन्न महाद्वीपों के बीच, जाति और संस्कृतियों के बीच, मित्र-राष्ट्रों के समूह के बीच, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की हिमशीतता वाली संस्थिति के बीच।.... यह पूरी दुनिया के लिए, एक उदाहरण था कि राष्ट्रों के बीच संबंध स्थापित करने के लिए गांधी-वादी सिद्धांतों का कैसे उपयोग किया जा सकता है।"

नवम्बर 3, 1948 को राष्ट्र-संघ की महासभा को संबोधित करते हुए नेहरू ने कहा, "मैं भविष्य के विषय में आशंकित नहीं हूं, चाहे सैन्य बल की दृष्टि से भारत का उल्लेखनीय स्थान नहीं है। मुझे शक्तिशाली राष्ट्रों का भी भय नहीं है, न ही उनके अस्त्र-शस्त्रों, उनकी सेनाओं और उनके अणु बमों का। अपने गुरु से मैंने यही सीखा है। हम एक बड़े देश और शक्तिशाली साम्राज्य के विरुद्ध निहत्थे खड़े हुए थे। हमें पूरे समय समर्थन तथा बल इसीलिए मिला क्योंकि हमने यह निर्णय लिया था कि हम बुराई के सामने नहीं झुकेंगे।.... मैं नहीं जानता कि आज दुनिया में जो समस्याएं है उनका हल इस तरीके के अनुप्रयोग द्वारा किया जा पाएगा या नहीं....पर मैं सोचता हूं यदि हम भय को त्याग दें, यदि हममें आत्म-विश्वास हो, भले ही हम हिंसक भाषा, हिंसक कार्यवाहियों और अंततः होने वाले युद्ध के स्थान पर विश्वास करने का खतरा उठाएं.... ऐसे जोखिम वस्तुतः उठाए जाने योग्य हैं।"

जनवरी 1962 तक भी नेहरू भारत की विदेशी नीति में गांधी के प्रभाव की पुष्टि करते रहे थे। भारत के गोआ को सेना द्वारा स्वतंत्र कराने संबंधित पश्चिमी देशों की आलोचनाओं के बारे में उन्होंने घोषणा की, "यह कहना सरासर गलत है कि हम नैतिक या किसी भी अन्य कारण से अपना मुंह छिपा रहे हैं। किंतु साथ-साथ मैं यह अवश्य स्वीकार करूंगा कि हमने सैद्धांतिक रूप में, इस प्रकार की सभी समस्याओं के शांतिपूर्ण समाधान के तरीके के सम्बन्ध में कुछ अवसर अवश्य खो दिया है। सेना द्वारा कार्यवाही यह एक तरह से युद्ध जैसी कार्यवाही है जो हमारी संस्कृति और परम्परा के लिए सर्वथा

विदेशी है। वस्तुतः हम चाहते हैं कि बल का प्रयोग कानूनन अवैध घोषित कर दिया जाए. ... प्रयुक्त साधन हमारे लिए उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना कि उनके द्वारा प्राप्त परिणाम। गांधी ने हमें यहीं सिखाया था और वस्तुतः हमारे सामने यही धर्म-संकट था जिसके कारण हम 14 लम्बे वर्षों तक गोवा में किसी सैन्य कार्यवाही करने में हिचकिचाते रहे ।"

टैगोर के साथ गांधी, मई 1925

रोम्यां रोलां के साथ गांधी, दिसम्बर 1931

गांधीजी का प्रभाव

1. विख्यात बुद्धिजीवियों पर प्रभाव

काउन्ट लियो टॉल्सटॉयः

गांधी टॉल्सटॉय से 1894 में, उनकी पुस्तक *दि किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू* (The Kingdom of God is Within You) द्वारा परिचित हुए थे, जिसने उन पर गहरा प्रभाव डाला। तदुपरांत उन्होंने टॉलस्टॉय की दूसरी पुस्तकें पढ़ीं और साथ ही *फ्री हिन्दुस्तान* (Free Hindustan) नामक एक उग्रवादी पत्रिका के सम्पादक तारकनाथ दास को संबोधित किया हुआ उनका पत्र *लैटर टु ए हिंदू* (Letter to a Hindoo) भी पढ़ा जो वैन्कुवर में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने उस पत्र का गुजराती में अनुवाद किया और टॉल्सटॉय को 'पश्चिमी दुनिया के एक अत्यन्त स्पष्ट दृष्टि वाले चिंतक' की संज्ञा दी। अक्टूबर 1909 में उन्होंने टॉलस्टॉय को आदरपूर्वक लिखते हुए दक्षिण अफ्रीका में वर्णभेद उत्पीड़न के विरोध में अपने अहिंसात्मक आन्दोलन का उल्लेख किया। अपने उत्तर में टॉल्सटॉय ने लिखा, "मुझे अभी अभी आपका अत्यन्त रोचक पत्र मिला। उसे पढ़ कर मुझे बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वे ट्रान्सवाल में रहने वाले हमारे प्रिय भाईयों और सहकर्मियों की सहायता करे। हमारे मध्य में कठोर के विरुद्ध कोमल का, घमंड और हिंसा के विरुद्व विनम्रता और प्रेम का संघर्ष प्रति वर्ष अधिक से अधिक अनुभव किया जा रहा है।" शुरू अप्रैल 1910 में जोहानिसबर्ग से, हाल ही में लिखी अपनी पुस्तक *हिन्द स्वराज* के साथ गांधीजी के भेजे पत्र के उत्तर में टॉल्सटॉय ने लिखा, "मुझे आपका पत्र मिला, साथ ही आपकी पुस्तक *इंडियन होम रूल* (Indian Home Rule) पढ़ी। मैंने आपकी पुस्तक का गहरी रुचि के साथ अध्ययन किया क्योंकि जिस शांतिपूर्ण प्रतिरोध के प्रश्न को आपने उठाकर उसका हल दिया है वह केवल भारत के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए महत्वपूर्ण है। आजकल मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, इसलिए मैं आपकी पुस्तक और कामों के बारे में नहीं लिख पा रहा हूं। आप की पुस्तक और कार्यों की मैं बहुत प्रशंसा करता हूं। जैसे ही मेरी तबियत बेहतर होगी मैं उनके बारे में लिखूंगा— आपका मित्र और भाई।" टॉलस्टॉय द्वारा लिखा संभवतः यह अंतिम पत्र था क्योंकि उस समय वे अस्वस्थ थे और कुछ माह उपरांत ही 7 नवम्बर 1910 को उनका देहान्त हो गया।

अल्बर्ट आइन्सटाइनः

बीसवीं शताब्दी के सर्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटाइन ने 1931 में गांधी को जर्मन भाषा में एक पत्र लिखा था। उसका अनुवाद इस प्रकार है–

पाट्सडैम, 27 सितम्बर 1931

श्रद्धेय श्री गांधी,

मैं यह पत्र आपके मित्र द्वारा भेज रहा हूं। आपने अपने कार्यों से यह दिखा दिया है कि बिना हिंसा के ऐसे लोगों के विरूद्ध सफलता पाना सम्भव है जिन्होंने हिंसा का तरीका नहीं त्यागा है। हम आशा कर सकते हैं कि आपका उदाहरण आपके देश की सीमा के बाहर फैलेगा। और एक अन्तर्राष्ट्रीय आदर्श स्थापित करेगा, जिसका सभी आदर करेंगें, जिसके द्वारा सभी निर्णय लिए जाएंगे तथा जो सामरिक झगड़ों को विस्थापित करेगा।

गहन श्रद्धा और प्रशंसा के साथ, आपका

अ. आइन्सटाइन

मुझे आशा है कि मैं एक दिन आपसे मिल सकूंगा।

गांधी ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया–

लन्दन, 18 अक्टूबर 1931

प्रिय मित्र,

सुन्दरम के हाथ आपका सुन्दर पत्र पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। यह मेरे लिए बहुत बड़ी तसल्ली की बात है कि आपकी दृष्टि में मेरा काम सराहनीय है। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मैं आपसे भेंट कर सकूं, और वह भी भारत में मेरे आश्रम में।

भवदीय,
एम. के. गांधी

2. नोबल पुरस्कार विजेता

रवीन्द्र नाथ टैगोर, रवीन्द्र नाथ टैगोर को 1913 में साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। टैगोर शुरू में गांधी के असहयोग आंदोलन के बड़े आलोचक थे जिसे उन्होंने 'नकारात्मक और पृथकवादी' कहा। किंतु, कालांतर में गांधी ने उनका मन जीत लिया और टैगोर ने लिखा, "वे हजारों असहाय लोगों की झोपड़ियों की दहलीज पर उन्हीं की तरह वस्त्र ध

ाारण किए पहुंचे। उन्होंने उनसे, उन्हीं की भाषा में बातचीत की। अंततः जीवंत सत्य उनके समक्ष था, केवल पुस्तकों से उद्धृत कथन नहीं दुहरा रहे थे।.... गांधी की आवाज पर भारत नई ऊंचाइयों को छू सका है, ठीक वैसे ही, जैसे बुद्ध ने पुराने समय में सभी जीवधारियों के प्रति करुणा और भाई-चारे के सत्य की उद्घोषणा की थी।" यह टैगोर ही थे जिन्होंने गांधी को सर्वप्रथम 'महात्मा' कह कर संबोधित किया था।

अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन की मांग के विरोध में जब गांधी ने 'आमरण अनशन' आरम्भ किया, तब गुरुदेव रवीन्द्र ने शान्ति निकेतन के विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा, "आज ग्रहण लगे सूर्य की सी काली छाया भारत पर गहरा रही है।.... महात्माजी ने अपने सत्य के प्रति समर्पित जीवन के द्वारे सारे भारत को अपना लिया है। महात्मा जी ने जिस प्रायश्चित का बीड़ा उठाया है, यह केवल कर्मकांड नहीं बल्कि देश और विश्व दोनों के लिए एक संदेश है। हमें उनके संदेश का मतलब समझने की कोशिश करनी चाहिए।"

रोम्यां रोलां, 1915 के साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित रोम्यां रोलां ने गांधी के विषय में पहले टैगोर और सी. एफ. एन्ड्रयूज से सुना और फिर उनके लेख और व्याख्यान पढ़े। भारत में तानाशाही और सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति के विरुद्ध गांधीजी के अहिंसात्मक राष्ट्रीय संघर्ष व उत्कृष्ट बौद्धिक आयाम से, रोम्यां रोलां अत्यंत प्रभावित हुए। 1924 में उन्होंने *महात्मा गांधीः दि मैन हू बिकेम वन विद द यूनीवर्सल बीइंग* (Mahatma Gandhi: The Man Who Became One with the Universal Being) शीर्षक से गांधी के जीवन पर एक पुस्तक लिखी जिसमें वे गांधीजी को निश्चयपूर्वक, 'भारत के अग्रदूत' ही नहीं 'विश्व के अग्रदूत' मानते हैं। उन्होंने कहा, "वह युद्ध जो महात्मा ने चार वर्ष पूर्व आरंभ किया वह हमारी लड़ाई है। उनके सारे संघर्ष धार्मिक प्रशांति से महिमा-मंडित हैं।" इस पुस्तक का फ्रैन्च और जर्मन भाषाओं में अनुवाद हुआ और दोनों देशों में उनकी खूब बिक्री हुई। जिस समय यूरोप में कोई भी 'सत्याग्रह' का अर्थ या उसकी क्षमता को नहीं समझता था, रोलां उनके अपने शब्दों में "पश्चिमी संसार में महात्मा के इस शब्द का अर्थ समझने और उसको प्रतिपादित करने वाले पहले व्यक्ति वही थे।"

रोलां ने गांधी को अपना पहला पत्र अक्टूबर 1925 में सुश्री मैडेलीन स्लेड का परिचय देते हुए लिखा था, "मेरी बहन की तथा मेरी एक प्रिय मित्र जिसे मैं अपनी आध्यात्मिक पुत्री समान मानता हूं, वह आपकी शरण में आ रही है।" रोलां और गांधी में सीधे भी और सुश्री स्लेड के द्वारा भी लगातार पत्राचार होता रहा। लेकिन उनकी पहली मुलाकात शुरू दिसम्बर 1931 में हुई जब गांधीजी लंदन के गोल-मेज सम्मेलन से लौट रहे थे। गांधी स्विटजरलैन्ड में पांच दिन रूके, जिसमें से तीन दिन उन्होंने लेक लेमन पर विलेनेव में रोलां के घर पर बिताए। फिर वे सभाओं

में भाषण देने लॉसेन और जेनेवा गए। 30 दिसम्बर 1944 में रोलां के देहांत तक उन दोनों में पत्राचार निर्बाध चलता रहा। उनके देहान्त के समय गांधी ने यह वक्तव्य दिया "वे सत्य और अहिंसा के लिए जिए। वे हर पीड़ा के प्रति संवेदनशील थे। उन्होंने नृशंस मानव हत्या जिसे युद्ध कहते हैं का घोर विरोध किया।"

जार्ज बर्नार्ड शॉ, 1931 में लंदन में जब जॉर्ज बर्नार्ड शॉ गांधीजी से मिलने आए तब वे नाटककार की तरह प्रसिद्ध हो चुके थे। वे युद्ध का मजबूती से विरोध करते थे। अपने अनूठे हास्य और विनम्रता से भरे गांधी से मिलने पर उनके शब्द थे, "छोटा महात्मा बड़े महात्मा से मिलने आया है।" बाद में उन्होंने नैन्सी ऐस्टर को एक पत्र में लिखा, "गांधी खलनायक नहीं हैं, वह एक संत हैं.... प्रतिज्ञाबद्ध शालीनता से युक्त।"

शॉ के बारे में गांधीजी के विचार भी उच्च थे, "मैं समझता हूं कि वे बहुत सज्जन व्यक्ति हैं.... यूरोप के आर्च जेस्टर की तरह विनोदप्रिय स्वभाव के एक दयालु, सदैव युवा हृदय व्यक्ति हैं।" शॉ की पुस्तक *द ब्लैक गर्ल इन सर्च ऑफ गॉड* (The Black Girl in Search of God) पढ़ने के बाद उनका कथन था, "उनका पूरा लेखन एक धार्मिक प्रवृति से ओतप्रोत है।"

शाकाहार, शिक्षा, परिश्रम की गरिमा, सामान्य जीवनयापन, युद्ध तथा संसदीय प्रजातंत्र जैसे विषयों पर गांधी और शॉ के विचार एक से थे। इन विषयों पर शॉ के कुछ प्रसिद्ध और विनोदपूर्ण उद्धरण इस प्रकार हैं-

- "पशु मेरे मित्र हैं.... और मैं अपने मित्रों को नहीं खाता।"
- "एक मूर्ख का दिमाग दर्शन को मूर्खता की तरह, विज्ञान को अंध-विश्वास की तरह और कला को पांडित्य-प्रदर्शन की तरह पचाता है। विश्वविद्यालय की शिक्षा यही है।"
- "एक दिन का काम सिर्फ एक दिन का है, न कम न ज्यादा। और जो इन्सान यह करता है उसे उस दिन का मेहतनताना मिलना चाहिए। साथ में एक रात की नींद और पूरा आराम, चाहे वह पेन्टर हो या हल चलाने वाला किसान।"
- "ऐसा कहा जाता है कि हर व्यक्ति के यथायोग्य सरकार है। यह कहना अधिक सटीक होगा कि हर सरकार का उसकी योग्यता के अनुसार मतदाता है, क्योंकि संसद की पहली पंक्ति में बैठे वक्ता, अपनी मर्जी मुताबिक मतदाता का नैतिक विकास और ज्ञानवृद्धि भी कर सकते हैं। इस तरह हमारा प्रजातंत्र योग्यता और अयोग्यता के चक्र में फंसा रहता है।"

- "मेरा मजाक का तरीका सच बताने के लिए है; यह दुनिया का सबसे बड़ा चुटकला है।"

पूज्य-पाद दलाई लामा, दिसम्बर 1989 में नोबल पुरस्कार स्वीकृति-भाषण देते हुए पुण्यात्मा दलाई लामा ने कहा, "मैं इस पुरस्कार को अत्यन्त आभार के साथ, समस्त संसार के उन उत्पीड़ित व्यक्तियों की ओर से ग्रहण करता हूं, जिन सबने स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया है और विश्व शांति के लिए कार्यरत हैं। मैं इस पुरस्कार को उस महान व्यक्ति—महात्मा गांधी— के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में ग्रहण करता हूं जिन्होंने परिवर्तन के लिए अहिंसात्मक कार्यों की आधुनिक परम्परा की आधार-शिला रखी तथा जिनके जीवन से मैंने सीखा और प्रेरणा पाई। इस पुरस्कार को मैं अवश्य ही उन साठ लाख तिब्बती लोगों की ओर से ग्रहण करता हूं जो मेरे देश के वीर स्त्री, पुरुष हैं, जिन्होंने न जाने कितने कष्ट सहन किए हैं और अब भी कर रहे हैं....।"

अन्य नोबल सम्मान से सम्मानित लोगों में, जिन्होंने सार्वजनिक रूप से, अपने ऊपर गांधी के प्रभाव को माना है उनमें उल्लेखनीय हैं दक्षिण अफ्रीका के एलबर्ट लुथुलि, डेस्मन्ड टूटू और नेल्सन मंडेला; अरजेंटाइना के एडोल्फो पेरेज एस्कवीवेल; कोस्टा रिका के ऑस्कर एरिआज सान्चेज (जिन्होंने गांधी को 'मानवता के इतिहास में सबसे महान व्यक्तियों में से एक' की संज्ञा दी), पोलैंड के लेक वालेसा; फ्रान्स के रेने कैसिन; इजराइल के शिमोन पेरेज; आयरलैंड के मैयरीड कॉरिगन और बेट्टी विलियम्स; भारत की मदर टेरेसा और अमर्त्य सेन; म्यांमार की ऑउंगसन सू क्याई, जिनका एलन क्लीमेन्ट्स 'बर्मा के गांधी' के रूप में वर्णन करते हैं; कीनिया के वांगारी माथाई, जिन्होंने अफ्रीका के बीस देशों में 600 समुदायों से एक नेटवर्क के द्वारा तीन करोड़ वृक्षों का रोपण करवाया है; तथा अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जिमी कार्टर तथा वर्तमान राष्ट्रपति बराक ओबामा।

एक ही समय में दो देशों में युद्धरत राष्ट्र की सेना के सर्वोच्च कमान्डर राष्ट्रपति बराक ओबामा ने नोबल शांति पुरस्कार स्वीकार करते समय कहा, "डा. मार्टिन लूथर किंग के जीवन भर के कार्यों के साक्षात परिणामस्वरूप, अहिंसा की नैतिक शक्ति का जीवन्त प्रमाण आपके समक्ष मैं खड़ा हूं। मैं जानता हूं कि गांधी और किंग के सिद्धान्त और जीवन दोनों में कुछ भी कमजोर, निष्कृय और आसान नहीं है। परंतु अपने राष्ट्र की सुरक्षा की शपथ लेने वाले राष्ट्राध्यक्ष की हैसियत से मैं सिर्फ उनके उदाहरणों से निर्देशित नहीं हो सकता। मैं विश्व का, उसकी पूरी यथार्थता से सामना करता हूं और अमेरिका वासियों के सामने आए खतरों को अकर्मण्य खड़ा देखता नहीं रह सकता।"

सन् 1981 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित 53 महानुभावों ने विश्व के नेताओं, राष्ट्रीय सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों को, भुखमरी एवं अल्प विकास के कारण हो रहे भूमंडलीय सर्वनाश से संघर्ष के उद्देश्य से, एक समन्वित कार्यक्रम की रूपरेखा बनाकर, घोषणा-पत्र के रूप में भेजा। इसमें निम्न वाक्य उल्लिखित थे, "यद्यपि विश्व के सबसे अधिक शक्तिशाली लोगों की ज़िम्मेदारी सबसे अधिक है, पर वे अकेले नहीं हैं। यदि असहाय लोग अपना भाग्य अपने हाथ में ले लें, यदि बढ़ती हुई संख्या में लोग, आधारभूत मानवाधिकारों के अतिरिक्त अन्य सभी नियमों को मानने से इन्कार कर दें; यदि कमजोर लोग गांधी के दिखाए उदाहरण की तरह स्वयं को व्यवस्थित करें और अहिंसा को अपनाएं तब निश्चित ही हमारे समय के इस महासंकट का अंत किया जा सकता है।"

दलाई लामा

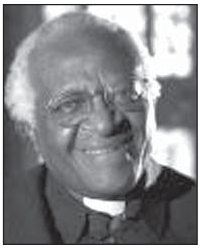
डेस्मन्ड टूटू

मदर टेरेसा

वांगारी माथाई

3. अद्वितीय व्यक्तियों पर प्रभावः

विदेशी

हरमन कालेनबाकः

हरमन कालेनबाक एक धनाढ्य जर्मन यहूदी थे जो जोहानिसबर्ग में वास्तुविद् थे। यह वह व्यक्ति थे जिन्होंने जोहानिसबर्ग के ठीक बाहर स्थित ग्यारह सौ एकड़ जमीन दान में दे दी जिस पर 1910 में गांधी ने कारागार में बन्दी सत्याग्रहियों के परिवार वालों के रहने के लिए और उनके द्वारा सामुदायिक खेती के लिए 'टॉल्सटॉय फार्म' स्थापित किया। दोनों व्यक्तियों (गांधीजी और हरमन कालेनबाक) के हृदय में बौद्ध धर्म के प्रति गहरी दिलचस्पी थी जिसके कारण शुरू में वे दोनों मिले। फिशर लिखते हैं, "यदि दक्षिण अफ्रीका के सर्वोदय आंदोलन में किसी को गांधी का उप-नेता माना जा सकता है तो वह हैं कालेनबाक।" सन 1914 में जब गांधी समुद्र यात्रा द्वारा इंग्लैंड से भारत जा रहे थे, कालेनबाक भी गए। दुर्भाग्यवश उसके तुरंत बाद प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ

हो गया और पूरे युद्ध के दौरान कालेनबाक को इंग्लैंड में ही रुकना पड़ा। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् वह जोहानिसबर्ग वापस लौट कर गांधी के सम्पर्क में लगातार रहे। उन्होंने गांधी के साथ समय बिताने के लिए दो बार भारत की यात्रा भी की। गांधी ने एक 'दृढ़ भावनात्मक, विस्तृत सहानुभूति और बाल सुलभ सहजता वाले व्यक्ति' के रूप में उनका वर्णन किया।

जोजेफ जे. डोक

जोजेफ जे. डोक जोहानिसबर्ग में एक पादरी थे, जिनसे गांधी सर्वप्रथम 1907 में मिले थे, जब उन्हें पठानों के एक समूह द्वारा बुरी तरह पीटा गया था, क्योंकि कई बार चेतावनी दिए जाने के बावजूद वे अपना पंजीकरण करवा रहे थे। डोक उन्हें अपने घर ले गए और यह सुनिश्चित किया कि पूरे दस दिन तक के उनके निवास में उनकी उचित देखभाल हो और उन्हें हर प्रकार की आवश्यक स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध हों। तभी से वे दोनों घनिष्ठ मित्र बन गए। जब भी गांधी जेल में बन्दी होते या विदेश यात्रा पर होते, डोक उनके *इंडियन ओपिनियन* (Indian Opinion) का सम्पादन करते। उन्होंने गांधी की जीवन-कथा में लिखा, "हमारा भारतीय मित्र अधिकतर लोगों की अपेक्षा एक उच्च धरातल पर रहता है.... वे जो उसे नहीं जानते, सोचते हैं कि इस प्रकार की उदात्त असंसारिकता के पीछे अवश्य कोई विशेष कुप्रयोजन छिपा है। किंतु वे जो उसे अच्छी तरह जानते हैं, उन्हें स्वयं शर्म आती है.... वह एक ऐसा उत्कृष्ट व्यक्तित्व है जिसके साथ चल सकना एक उदार शिक्षा है, तथा जिसको जान सकना, प्यार करना है।"

हेनरी पोलक

हेनरी पोलक एक ब्रिटिश यहूदी थे जो 1904 में गांधीजी से तब मिले जब वे *ट्रांसवाल गजट* (Transvaal Gazette) के उप-सम्पादक थे। तत्पश्चात उन्होंने वकालत पढ़ी और गांधी के जोहानिसबर्ग स्थित कार्यालय में क्लर्क बन गए। ये हेनरी पोलक ही थे जिन्होने रस्किन की पुस्तक *अन टु दिस लास्ट* (Unto This Last) गांधी को दी और उनके प्रबल समर्थक के रूप में भारतीय सत्याग्रहियों की ओर से अदालत में उपस्थित हुए। 1909 में वे गोखले और अन्य व्यक्तियों को गांधी के दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष के संबंध में विस्तार से बताने के लिए भारत आए। 1913 में उन्होंने सक्रिय रूप से गांधी के सत्याग्रह में भाग लिया और बन्दी बनाए गए। उनकी पत्नी मिली पोलक ने *मिस्टर गांधी, दि मैन* (Mr. Gandhi, The Man) शीर्षक की अपनी पुस्तक में उनके प्रारंभिक जीवन का चित्रण किया है।

रेवरेंड चार्ल्स एन्ड्रयूज (बांई ओर), मैडेलीन स्लेड (दांए से दूसरे स्थान पर)
तथा अन्य लोगों के साथ गांधी लंदन में

चार्ल्स फ्रीअर एंड्रयूज (गांधीजी के लिए 'चार्ली')

चार्ल्स फ्रीअर एंड्रयूज, जो गांधीजी के लिए चार्ली थे, अत्यंत प्रबल साम्राज्यवादी टोरी के पुत्र थे, जिनके बच्चों के लिए *डीड्स दैट वन द एम्पायर* (Deeds that Won the Empire) का पठन अनिवार्य था और जिन्होंने पादरी का पद ग्रहण किया। वह सन् 1904 में भारत के नई दिल्ली स्थित सेन्ट स्टीफेन्स कॉलेज में पढ़ाने के लिए आए। वहां के उप-प्रधानाचार्य सुशील कुमार रूद्र से उन्होंने भारत की आध्यात्मिक विरासत और राष्ट्रीय संघर्ष के विषय में ज्ञान प्राप्त किया और अन्य ब्रिटिश पादरियों के विपरीत जिनके लिए 'ईश्वर में विश्वास' और 'राजसत्ता में विश्वास' एक ही था, उनके मन में भारत और भारतीयों के प्रति सहानुभूति उपजी।

चार्ली के आरंभिक मित्रों में टैगोर और गोखले के नाम सर्वोपरि थे। 1913 में गोखले ने उनसे दक्षिण अफ्रीका जा कर गांधीजी की सहायता करने का अनुरोध किया। दूसरी जनवरी 1914 को चार्ली डरबन पहुंचे। गांधी से मिलने पर उन्होंने प्रतिष्ठापूर्वक उनका चरण स्पर्श किया। दक्षिण अफ्रीका के श्वेतवर्णीय लोग यह देखकर आश्चर्य-चकित रह गए। डरबन के एक समाचार-पत्र ने अत्यन्त आवेशित और क्रोधित होकर लिखा, "यह दुर्भाग्य-पूर्ण, अत्यन्त दुर्भाग्य-पूर्ण था।" किंतु गांधी के प्रति चार्ली की निष्ठा वैसी ही बनी रही और एक जीवन-पर्यन्त

मित्रता के रूप में विकसित हुई। दक्षिण अफ्रीका आकर वे पहली बार जातिवाद का सबसे विषाक्त रूप देख कर गहरे आक्रोश से भर गए। उन्होंने गांधी को एक 'नैतिक प्रतिभा' एवं 'अत्यन्त प्रभावशाली दार्शनिक व्यक्तित्व' के रूप में वर्णित किया। उन्होंने 'सत्याग्रह' को 'सामूहिक नैतिक विरोध' कह कर उसकी प्रशंसा की।

1931 में चार्ली गांधी के साथ लंदन गए और वहां उन्होंने अनेक अग्रणी ब्रिटिश बुद्धिवादियों के साथ उनकी भेंट करवाई। इससे गांधीजी को एक सुनहरा अवसर मिला कि वे लोगों को यह विश्वास दिला सकें कि वे 'धोखेबाज' और 'असंभव दुराग्रही' नहीं हैं। इन बैठकों ने चार्ली को भी 'निरे मूर्ख' की छवि से उबार कर उनकी प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने में सहायता दी। अन्य अंग्रेजों से पहले ही उन्होंने भारत को एक जागृत देश के रूप में पहचाना और यह अनुभव किया कि भारत से प्रतिष्ठा और न्याय के साथ व्यवहार किया जाना आवश्यक है। उनके विषय में गांधी ने लिखा, "मैंने उनसे बेहतर मनुष्य और उनसे बेहतर ईसाई नहीं देखा।"

मैडेलीन स्लेड

मैडेलीन स्लेड एक ब्रिटिश नौ-सैनिक अधिकारी की पुत्री थीं। उन्होंने गांधी के बारे में सबसे पहले रोम्यां रोलां से सुना, जिन्होंने उनका उल्लेख 'एक और ईसामसीह' कह कर किया। इसके पश्चात् उन्होंने, रोम्यां रोलां की गांधी पर लिखी पुस्तक पढ़ी और उससे प्रेरणा पा कर, भारत जा कर उनके साथ काम करने को तत्पर हो गईं। उनके माता-पिता, जिनका उठना बैठना लंदन के अभिजात्य समाज में था, इस बात से अत्यन्त क्षुब्ध हुए कि उनकी पुत्री 'अंग्रेजी सरकार के प्रधान विद्रोही के परिसर' में सम्मिलित हो गई थी।

नवम्बर 1925 में, जब मैडेलीन स्लेड गांधी के आश्रम में पहुंचीं तो उन्होंने कहा, "तुम मेरी पुत्री के रूप में रहोगी।" उन्होंने उनका नाम 'मीरा बहन' रखा। उसके पश्चात् वह गांधी के कारावास के समय को छोड़ कर सदैव उनके साथ रहीं। कभी-कभी वह स्वयं भी जेल गईं। 1931 में गांधी की लंदन यात्रा में वह उनके साथ गईं और उसके तीन वर्षों के पश्चात् उन्होंने भारत के पक्ष का प्रचार करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा की। तदुपरांत वे वॉयसराय एवं अन्य उच्चाधिकारियों के समक्ष गांधी की प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती रहीं और गांधी की मृत्यु के पश्चात् भी 11 वर्षों तक भारत में रहीं। इंग्लैंड में अपनी वापसी के पश्चात् उन्होंने अपनी आत्मकथा, *द स्पिरिटस् पिलग्रिमेज* (The Spirit's Pilgrimage) लिखी। यह गांधी के प्रति एक हृदयस्पर्शी किंतु वस्तुपरक श्रद्धांजलि थी।

चार्ली चैपलिन

1931 में लन्दन में गोलमेज सम्मेलन के समय चार्ली चैपलिन गांधी से मिलने आए। 5 अक्टूबर 1931 की *टाइम* पत्रिका ने इस भेंट का वर्णन इस तरह किया, "चार्ली चैपलिन के अनुरोध पर महात्मा गांधी ने उनसे भी बातचीत की। जब उनकी मित्र श्रीमती सरोजिनी नायडू ने बताया कि 'विख्यात श्री चैपलिन आपसे मिलना चाहते हैं' तो संत गांधी ने हैरानी से पूछा, 'वह किसके लिए मशहूर हैं; यह मिस्टर चैपलिन कौन हैं?' प्रसिद्ध सिने-कलाकार सप्ताहान्त में, भारत की आजादी के कट्टर विरोधी, झगड़ालू एम. पी. विंस्टन चर्चिल से मिलने आने वाले थे। चर्चिल ने गांधी को 'अधनंगा राजद्रोही फकीर' कहा था। शायद चर्चिल ने चैपलिन के कान पहले ही भर दिए थे। उसने गांधी से मिलते ही प्रश्न दागा, "आप चर्खे जैसे सयंत्र का प्रचार क्यों करते हैं? आविष्कार मानवता के लिए वरदान हैं और मानवता का भार कम करने के लिए इस्तेमाल होने चाहिए। मैं मशीनों की अस्वीकारता का घोर विरोधी हूं।" चर्खा चलाने वाले गांधी ने उत्तर दिया, "करोड़ों भारतीयों को व्यवसाय देने के लिए हाथ का चर्खा और हाथ का करघा दोनों जरूरी हैं। भारत में लगाई जा रही आधुनिक मशीनें देशवासियों को आलसी बना देंगी। हम जरूरत से ज्यादा उत्पादन करेंगे और इस तरह दुनिया के किसी और हिस्से में बेकारी लाद देंगे।" अचानक संत गांधी ने अपनी गोल घड़ी देखी और कहा, "शाम के सात बजे हैं, मेरी प्रार्थना का समय है।" चैपलिन बहुत कठिनाई से घुटनों के बल बैठ कर लम्बी हिन्दू प्रार्थना में शामिल हो पाए। महात्मा से कुछ और बातचीत करने के बाद उन्होंने प्रेस को बताया, "गांधी का व्यक्तित्व अद्भुत है, एकदम अद्भुत! वह एक महान अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति हैं तथा महान चमत्कारिक और नाटकीय व्यक्तित्व के स्वामी भी हैं।"

लांजा डेल वास्तो

लांजा डेल वास्तो, कवि एवं कलाकार— एक वैभवशाली परिवार में जन्मे थे। उन्हें गांधी के बारे में रोम्यां रोलां की आत्मकथा से पता चला और दिसम्बर 1936 में गांधी के साथ काम करने वे भारत आए। गांधी ने उन्हें 'शांतिदास' का नाम दिया। उनके साथ छः महीने बिताने और गंगा तट पर बसे तीर्थ स्थानों की यात्रा के बाद वे पेरिस लौट गए। 1945 में उन्होंने *रिटर्न टु द सोर्स* (Return to the Source) और बाद में *वॉरियर्स ऑफ पीसः राइटिंग्स ऑन द टेक्नीक ऑफ नॉन वायलेन्स* (Warriors of Peace: Writings on the Technique of Nonviolence) पुस्तकें लिखीं। 1948 में 'पश्चिमी विश्व में गांधी पद्धति' की स्थापना करने के उद्देश्य से 'कम्यूनिटी ऑफ द आर्क' (Community of the Ark) अर्थात सी. ओ. ए. संगठित की। फ्रांस के दक्षिण-पश्चिम में किराए के एक छोटे से फार्म में पहले समुदाय का प्रारम्भ हुआ

परंतु अधिकांश सदस्यों के सामूहिक जीवन से सामंजस्य न कर पाने के कारण वह प्रयास असफल रहा।

1954 में लांज़ा ने भारत लौट कर अहिंसक सामाजिक परिवर्तन और विनोबा भावे के 'भूदान आन्दोलन' के बारे में और अधिक ज्ञान प्राप्त किया। वापस जा कर उन्होंने दक्षिणी फ्रांस के 'लोडेव' के पास हाउत-लांगवेडाक नामक परित्यक्त गांव में सी. ओ. ए. पुनः स्थापित किया। इस बार हर सदस्य को तीन साल का 'परीक्षा समय' बिताने का प्रावधान रखा गया। साथ ही उस सदस्य को सर्व सम्मति से संस्था में सम्मिलित होने के लिए अन्य साथियों की सहमति लेनी अनिवार्य कर दी गई। 1979 तक सी. ओ. ए. में अधिकांश पश्चिम यूरोपीय देशों से 'सहयोगी' तथा 'यात्री निवासी' आकर शामिल हो गए। इस प्रकार की छोटी संस्थाएं कनाडा और कुछ लैटिन अमेरिकी देशों में भी स्थापित की गई हैं।

'सहयोगी' अर्थात् 'कम्पेनियन्स' 'जीविका श्रमिक' के सिद्धान्त पर जीवन निर्वाह करते हैं, इसकी प्रेरणा गांधी, रस्किन और टॉल्सटॉय से मिली। वे इस सिद्धान्त को व्यक्ति और प्रकृति दोनों का शोषण करने वाली 'अहिंसक अर्थ व्यवस्था' की कुंजी मानते हैं। वे ऐसे संयत्रों और औज़ारों का इस्तेमाल करते हैं जिनका उत्पादन और निर्माण स्थानीय रूप से हो सके। वे कपड़ा बनाने के लिए हाथ से काते हुए सूत का उत्पादन करते हैं, बढ़ईगीरी, पत्थर तराशने की कला, लोहारगीरी, चीनी मिट्टी के बर्तन की गढ़ाई तथा छपाई को बढ़ावा देते हैं। कारीगर की रचनात्मक संतुष्टि के विचार से हर वस्तु को कलात्मक ढ़ंग से सजाते हैं। घरों में प्रकाश के लिए केवल मोमबत्ती का प्रयोग होता है तथा सब्जियां और फलों को तहखाने वाले गोदाम में बिना रेफ्रिजरेशन के रखा जाता है। लांजा, गांधी की वाणी को प्रतिध्वनित करते हुए कहते हैं, "हमें समय के साथ न चलने के लिए दोष दिया जाता है। हम यह स्वतः कर रहे हैं और अपनी पूरी शक्ति से कर रहे हैं. ... मशीन और कल-पुर्जे गुलाम बनाते हैं और हाथ स्वतंत्र बनाते हैं।"

'सहयोगी' 'जीविका श्रमिक' के अतिरिक्त आध्यात्मिक जीवन पर अधिक बल देते हैं, क्योंकि शांति तभी स्थापित हो सकती है जब व्यक्ति को आंतरिक शांति मिले। यहां हर धर्म के अनुयायियों का स्वागत होता है। सी. ओ. ए. के संगीत की रिकॉर्डिंग संग्रह को दो बार अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिले हैं।

'सहयोगियों' ने फ्रांस में अनेक अहिंसक आन्दोलन चलाए हैं जिनमें सब से उल्लेखनीय आणविक शक्ति संयत्र का आधिपत्य तथा लारजैक पठार पर एक सैन्य संचालित अड्डे के विस्तार में अवरोध लगाना है। इन आन्दोलनों से प्रेरित होकर यूरोप भर में अनेकों आणविक निरस्त्रीकरण आंदोलनों की शुरूआत हुई जिसके फलस्वरूप अमेरिका के सीब्रुक, न्यू हैम्पशायर में परमाणु विरोध किया गया।

डेनिलो डोलची

समाजवादी और कवि डेनिलो डोलची को सिसली के माफिया के विरूद्ध अहिंसक संघर्ष के कारण प्रसिद्धि मिली तथा वे 'सिसली के गांधी' के नाम से प्रसिद्ध हुए। सिसली के त्रापेतो गांव से उनका समाज-सुधारक जीवन 1952 में शुरू हुआ। त्रापेतो मछुवारों का एक बहुत गंदा गांव था, जो उनके विचार में दुनिया का सबसे निर्धन गांव था। एक ऐसा गांव जहां बिजली, पानी, मल-मूत्र विसर्जन की कोई व्यवस्था नहीं थी, जहां के निवासी सरकार तथा चर्च दोनों से तिरस्कृत, गरीब और बेकार थे। डोल्ची ने एक अनाथालय की स्थापना करके पांच अनाथों को आश्रय दिया। बाद में उन्होंने किसानों का सहकारी संगठन बनाने की पहल की तथा अधिकारियों को गांव और उस क्षेत्र की ओर ध्यान देने को बाध्य करने के लिए भूख हड़ताल भी की। नवम्बर 1955 में पार्टीनिको में उन्होंने इआतो नदी पर बांध बनाने के लिए एक सप्ताह तक भूख हड़ताल की, जिससे कि इस बांध से पूरी घाटी को सिंचाई का पानी उपलब्ध कराया जा सके।

उस क्षेत्र पर माफिया के शिकंजे के बारे में पता चलते ही डोल्ची ने राजनेताओं के साथ माफिया की गुप्त सांठ-गांठ को अनावृत करने के लिए आन्दोलन चलाया तथा रोम के माफिया विरोधी कमीशन को उसका सबूत दिया। 1967 में उन्होंने सार्वजनिक रूप से तीन प्रमुख राजनायिकों के माफिया के साथ सम्बन्धों का दोषारोपण किया जिसके फलस्वरूप उन्हें लिखित मानहानि के आरोप में जेल में डाल दिया गया। प्रतिकार स्वरूप उन्होंने एक व्यक्तिगत रेडियो स्टेशन स्थापित किया और राष्ट्रव्यापी दोषारोपण प्रसारित किया। इसके बाद वह और माफिया के विरूद्ध उनका आन्दोलन पूरे इटली में सर्वविदित और प्रशंसित हुआ। गरीब और बेरोजगार सिसली निवासियों की गहरी व्यथा और आक्रोश की अभिव्यक्ति के विचार से उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखीं। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप ही सारे विश्व को माफिया की गुप्त निष्ठुर दुनिया का पता चला। युवावस्था में उन्होंने वास्तुकला की पढ़ाई की थी पर उनको सामाजिक परिवर्तन के शिल्पकार की तरह ख्याति मिली।

सैम्युअल एवांस स्टोक्स उर्फ़ सत्यानन्द स्टोक्स - 16 अगस्त 1882-14 मई 1946 द्ध फ़िलेडेल्फ़िया के एक धनाढ्य व्यापारी के पुत्र थे जिन्होंने अमेरिका में एलिवेटरों की षुरुआत की।वे 22 वर्श की आयु में 1904 में षिमला के पर्वतीय क्षेत्र के सुबाथू नामक कस्बे में कार्यरत कुश्टरोगियों के आश्रम में काम करने भारत आए थे। यह आश्रम डॉ मार्कस कार्लेटन द्वारा संचालित था। अपने माता पिता की इच्छा के विरुद्ध उन्होंने ये

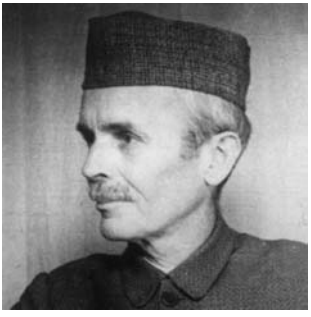

कदम उठाया था। उन्होंने अपनी षिक्षा पूरी नहीं की थी और न ही किसी तरह की व्यावसायिक योग्यता प्राप्त की थी। उन्होंने अपने पिता द्वारा संस्थापितस्टोक्स एन्ड पैरिष मषीन कम्पनी में काम करना भी अस्वीकार कर दिया।

भारत आकर उन्होंने, लोगों और अपने बीच की असमानता को भरने के लिए गरीबी में और त्यागपूर्ण जीवन जीने के इरादे से अपना सब कुछ त्याग देने की कोषिष भी की। एक बहुत पक्के धार्मिक व्यक्ति से वे एक ईसाई सन्यासी बन गए। 1912 में उन्होंने ऐगनेस नामक एक स्थानीय ईसाई महिला से षादी कर ली। 1932 में उन्होंने हिन्दू धर्म अपना लिया और अपना नाम 'सत्यानन्द' रख लिया। उनकी पत्नी ने अपना नाम बदल कर 'प्रिया देवी' रख लिया।

स्थानीय लोगों की दषा सुधारने के लिए उन्होंने एक स्कूल षुरु किया और 'भिखारी' प्रथा को समाप्त करने के लिए अभियान आरम्भ किया। इस प्रथा में अनपढ़ निवासियों को प्रतिकूल और अमानवीय परिस्थितियों में काम करने को बाध्य किया जाता था। इस अभियान के द्वारा वे अधिकारियों को इस प्रथा को समाप्त कराने में सफल हुए। गांधी को जब इसके बारे में पता चला तो उन्होंने 'यंग इंडिया' में लिखा,''मिस्टर स्टोक्स के समान एक भी भारतीय सरकार के ख़िलाफ़ संघर्श नहीं कर रहा है। वे वास्तव में पहाड़ियों के गाइड, मार्ग-दर्षक, दार्षनिक और मित्र बन गए हैं।''

1916 में उन्होंने 'अमेरिकन डेलिषस' नामक नए ढंग के सेबों का रोपण षिमला की पहाड़ियों में षुरु किया। इस तरह के सेब का उत्पादन लुइसियाना यू एस ए के स्टोक्स भाइयों ने आरम्भ किया था। उन्होंने स्थानीय किसानों को उसके बीज भी दिए। षीघ्र ही उस ढंग के सेब के बागान आसपास के क्षेत्रों में पैदा किए जाने लगे, जिसकी वजह से उनकी आर्थिक स्थिति में काफ़ी सुधार हुआ।

जलियांवाला बाग हत्याकांड से उन्हें गहरा आघात लगा। उसकी प्रतिक्रिया यह हुई किवे भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के दष्ढ़ समर्थक बन गए। उन्होंने 'अवेकनिंग इन्डिया' षीर्शक से एक पुस्तिका भी लिखी जिसका प्राक्कथन स्वयं महात्मा गांधी ने लिखा था।

अपनी 1921 में लिखी 'नेषनल सेल्फ़-रियलाइज़ेषन' षीर्शक से लिखी पुस्तिका में उन्होंने लिखा, ''हमारा सबसे पहला ध्येय इस देष की जनता का प्रतिनिधत्व करने वाली सरकार की स्थापना करना है। अन्ततः भारत के लिए पूर्ण स्वराज ही इकलौता लक्ष्य है।''

उसी साल कुछ समय बाद उन्होंने महात्मा गांधी को लिखा, ''मुझे पूरा विष्वास है कि आपके द्वारा षुरु किया गया आन्दोलन हम सब लोगों को श्रेश्ठतम प्रकषति बनाए रखने का आवाह्न करता है।यह अभियान हम सब कोसम्पूर्ण आत्मत्याग के पथ पर चलते हुए औरआत्म बलिदान से षुद्धिकरण द्वारा विजय पाने का आवाह्नकरता है।''

कॉन्ग्रेस के 1921 के चुनाव घोशणा-पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले वे अकेले गैर-भारतीय व्यक्ति थे। इस घोशणा पत्र में भारतीयों को सरकारी नौकरियां छोड़ने के लिए कहा गया था। इसके तुरन्त बाद पंजाब प्रांतीय कॉन्ग्रेस कमेटी की मीटिंग में जाते समय उन्हें देषद्रोह के आरोप में गिरफ़्तार कर के छः महीनों के लिए जेल भेज दिया गया। ये समय उन्होंने लाहौर जेल में बिताया। वे विरले अमेरिकी नागरिक थे जो भारत की आज़ादी की लड़ाई में जेल गए। उनके कारावास भेजे जाने के बारे में महात्मा ने लिखा था, ''ब्रिटिष सरकार को ये बात बहुत भारी पड़ी कि एक अमेरिकी व्यक्ति ने एक भारतीय की तरह उनके दुख को समझा और उनकी आज़ादी की लड़ाई में बराबर का भाग लिया। उनको आलोचना के लिए रिहा कर देना सरकार के लिए असहनीय था; उनकी सफ़ेद चमड़ी भी उनको बचा न सकी।''

स्टोक्स विरले अमेरिकीनागरिक थे जो भारतीय राश्ट्रीय कॉन्ग्रेस के सदस्य थे। लाला लाजपत राय के साथ वे पंजाब का प्रतिनिधत्व करते थे।भारत को स्वतन्त्रता मिलने के 15 महीने पहले तक, वे मई 1946 में अपनी मष्त्यु के समय तक भारत की आज़ादी की लड़ाई में सक्रिय योगदान देते रहे।

उनकी पौत्री आषा षर्मा ने उनकी अत्यंत मार्मिक आत्मकथा लिखी है जिसे भारत में 'ऐन अमेरिकन इन खादी' और अमेरिका में 'ऐन अमेरिकन इन गांधीज़ इन्डिया' षीर्शक से प्रकाषित किया गया है। इस पुस्तक के अमेरिकी प्रकाषन का प्राक्कथन दलाई लामा ने लिखा है।

लॉरेंस ('लारी') विलफ़्रेड बेकर

लॉरेंस विलफ़्रेड बेकर, पुरस्कृत ब्रिटिश शिल्पकार, ने अल्प आयु में क्वैकर्स में काम करना शुरू किया। 1937 में उन्हें 'फ्रेन्ड्स एम्बुलेन्स इकाई' में काम के सिलसिले में चीन भेजा

गया। वहां चार साल बिताने के बाद देश लौटते समय उन्हें अकस्मात मुंबई में तीन माह के लिए रुकना पड़ा क्योंकि उनका जहाज देर से पहुंचने वाला था। मुंबई में उनके सहकर्मी उन्हें गांधी से मिलाने ले गए। बेकर ने अपनी आत्मकथा में लिखा, "भारत और चीन के निवासियों के जीवन के बारे में गांधी से वार्तालाप करने का रोमांच और सुखद अवसर मिला तथा उन्हें यह समझाने का सुअवसर मिला कि मेरे चीनी कपड़े के जूते किस तरह बनाए गए थे। मैंने लौट कर भारत में कार्य करने की अपनी उत्कट अभिलाषा के बारे में भी उनसे बात की, जबकि उस समय अंग्रेजों को भारत छोड़ने को कहा जा रहा था। उन्होंने मुझसे भारत लौटने का आग्रह किया।"

लॉरी बेकर 1945 में भारत लौटे और शुरू में सालों तक उत्तराखंड के पिथौरागढ़ में कुष्ट रोगियों के औषधालयों के निर्माण में लगे रहे। उसके बाद वे केरल के आदिवासियों के साथ काम करने पीरूमद चले गए, फिर 1970 में त्रिवेन्द्रम गए, जहां उन्होंने 1984 में ग्रामीण विकास के लिए वैज्ञानिक और तकनीकी केन्द्र (COSTFORD) की स्थापना की, जहां न्यूनतम लागत वाले घरों के निर्माण को बढ़ावा दिया जाता है। 90 वर्ष की आयु में 1 अप्रैल 2007 को उनका देहांत हो गया।

(बांए) सैन्टर फॉर डैवलपमैंट स्टडीज (Centre for Development Studies), थिरूवनन्तपुरम - लॉरी बेकर द्वारा निर्मित प्रथम इमारत।
(दांए) थिरूवनन्तपुरम में इन्डियन कॉफी हाउस (Indian Coffee House)

पिथौरागढ़ में ही पहली बार उन्हें मिट्टी की दीवारों, गोबर, कच्ची ईंट, बांस आदि के इस्तेमाल से बनाए जाने वाले घरों के निर्माण के तरीकों का ज्ञान हुआ। उन्हें आभास हुआ कि इन सब चीजो में एक खास गुण है और ये भारतीय परिस्थितियों के अधिक अनुकूल तथा बेहतर हैं। उन्होंने जिस खास शैली को अपनाया, उसके कारण स्थान का स्वभाविक स्वरूप हमेशा कायम रहता है, निर्माण की विधि सदैव कम लागत वाली होती है, परन्तु इमारत साधारण होते हुए भी भव्य और सुन्दर दिखती है। उन्हें 'भारतीय शिल्प कला का संरक्षक' कहा जाता है। दुर्भाग्यवश गांधी उनके द्वारा निर्मित घरों को नहीं देख सके। वे उन्हें देख कर अवश्य बहुत प्रसन्न होते।

लॉरी बेकर साग्रह कहते थे, "मेरा विश्वास है कि केवल गांधीजी ही ऐसे नेता थे जो हमारे देश की निर्माण आवश्यकताओं के विषय में लगातार सामान्य ज्ञान और समझ के साथ बात

करते थे। मेरी विचारधारा को सबसे अधिक प्रभावित करने वाली उनकी एक बात यह थी कि एक आदर्श गांव में, एक आदर्श घर का निर्माण उस गांव की पांच मील की परिधि के अन्दर पाए जाने वाले सामान से ही होगा। समुचित शिल्प कला की तकनीक की इससे बेहतर परिभाषा नहीं हो सकती है। मैं स्वीकार करता हूं कि एक युवा, पश्चिम में पैदा हुए, पले बढ़े और शिक्षित शिल्पकार की हैसियत से मैं सोचता था कि गांधी के आदर्श कुछ दुरुह हैं.... पर अब 70 साल की उम्र में और 40 साल के शिल्प के अनुभव के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि वे अक्षरशः सत्य कहते थे। यदि उस समय मैं अपनी शिल्प कला की शिक्षा और प्रशिक्षण के बारे में उतना दम्भपूर्ण और निश्चित न होता तो पिथौरागढ़ जिले में अपने प्रवास के दौरान गांधीजी के विवेक के प्रत्यक्ष उदाहरण चारों ओर देख पाता।"

ए. टी. अरियारत्ने

1958 में श्रीलंका में 'सर्वोदय श्रमदान आंदोलन' (Sarvodaya Shramdan Movement) (SSM) अर्थात एस. एस. एम. का आरम्भ करने वाले ए.टी. अरियारत्ने ने बुद्ध की शिक्षाओं तथा गांधी और विनोबा भावे के विचारों को पूर्णतया आत्मसात किया है। उनके एस. एस. एम. में मुख्यतः तीन लड़ियां हैं- गांधी के आदर्श, बौद्ध दर्शन तथा विश्वव्यापी अध्यात्म। उनका कथन है, "सर्वोदय में हम गांधी के तीन सिद्धान्तों— विकास, शान्ति और शिक्षा के समन्वय का अनुसरण करते हैं। सत्याग्रह, स्वदेशी, अपरिग्रह, विश्वस्तता, शोषण का विरोध, मशीनों का समुचित उपयोग और प्राथमिक शिक्षा— यह सब आपस में जुड़े हुए हैं— ठीक उसी तरह जैसे बौद्ध शिक्षा के अवलंबित उत्थान, चार सर्वोत्कृष्ट सत्य तथा आठ उत्कृष्ट पथ। उन्होंने 'सर्वोदय' अर्थात् सब की भलाई की परिभाषा पुनः इस तरह समझाई है- 'एक व्यक्ति से ले कर सम्पूर्ण मानवता तक का जागरण'। वे दृढ़ता से कहते हैं, "इस जागरण का विस्तार आध्यात्मिक, नैतिक, सदाचार, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों तक फैला है। हम जब भी किसी एक क्षेत्र में जागृत होते हैं तो उसका प्रभाव अन्य क्षेत्रों पर निश्चित रूप से पड़ता है।"

गांधी की तरह ही उनके आन्दोलन में सामाजिक परिवर्तन का केन्द्र गांव है क्योंकि "गांव देश का हृदय और उसकी आध्यात्मिक एवं नैतिक दृष्टि का स्रोत दर्शाता है।" उन्होंने एक ऐसी आध्यात्मिक क्रांति का आवाहन किया है जिसमें नियोजित हिंसा के स्थान पर एक अहिंसक, निर्धनतारहित, बहुलतारहित समाज का सृजन हो सके। उनका कथन था, "जब हम सब लोगों के हित के लिए काम करते हैं तो हमारे सारे साधन सत्य, अहिंसा और निस्वार्थ भाव से सारे जन-मानस के जागरण के लिए होना आवश्यक है।"

एस. एस. एम. सबसे पहले इस विषय पर मनन और वाद-विवाद करता है कि गांव की क्या जरूरतें हैं और उन्हें कैसे पूरा किया जा सकता है। उसके बाद वे एक ग्राम सभा का गठन करते हैं, एक स्कूल और स्वास्थ्य केन्द्र का निर्माण करते हैं तथा नौकरियों का प्रबन्ध करते हैं, ताकि गांव की अर्थ-व्यवस्था स्वपोषित बन सके। साथ ही, वे ऐसी सामूहिक ध्यान-सभाएं आयोजित करते हैं जिनमें उस गांव तथा पड़ोस के गांवों से हर धर्म और आस्था वाले लोग एक साथ ध्यान में बैठते हैं। इस तरह सामूहिक अध्यात्म के द्वारा पूरी तरह एकता में बंध जाते हैं। अरियारत्ने ने सारे श्रीलंका में अनेक बार इस तरह की ध्यान-सभाओं का नेतृत्व किया है। 29 अगस्त 1999 को मध्य कोलम्बो के विहार महादेवी पार्क में आयोजित तीन घंटों की ध्यान-सभा में लगभग दो लाख श्वेत वस्त्रधारी लोगों ने भाग लिया। उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं से लगातार आग्रह किया है कि वे गांव के दैनिक जीवन में सक्रिय योगदान दें तथा आम जनता को भौतिक वस्तुओं को त्यागने और सादा जीवन बिताने को प्रेरित करें। वे दूसरों की सेवा करने के लिए अपने को समर्पित करने पर बल देते हैं क्योंकि "मैं स्वयं जागृत तभी हो सकूंगा अगर मैं दूसरों को जागृत कर सकूं।"

आज श्रीलंका के 38,000 ग्रामों में एस. एस. एम. सक्रिय है तथा देश के दो करोड़ निवासियों में से 40 लाख लोगों से निरन्तर सम्पर्क बनाए हुए है। 4000 ग्राम स्वतंत्र सर्वोदय श्रमदान आन्दोलन के विधिवत पंजीकृत सदस्य हैं तथा 'सर्वोदय इकोनॉमिक एन्टरप्राइज सर्विसेज' (SEEDS) में भाग लेते हैं। 9000 इकाईयों में शांति सेना के 1,00,000 स्वयंसेवक सदस्य हैं। सर्वोदय के 34 जिला केन्द्र हैं जिनमें उत्तर और पूर्वी प्रान्तों के तमिल क्षेत्रों के 8 केन्द्र भाग लेते हैं। 12 विकास संस्थान हैं, 19 इकाईयों में 600 शिक्षक पूरे समय के लिए पांच सशक्तिकरण लक्ष्यों- आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक, तकनीकी तथा कानून की प्राप्ति के लिए समर्पित कार्यरत हैं। 2004 में सुनामी के घोर विनाश के बाद इस संस्था द्वारा किया गया राहत कार्य विश्व भर में सराहा गया।

अरियारत्ने को अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया, जिनमें 1969 में सामूहिक नेतृत्व के लिए 'मैगसेसे पुरस्कार', 1996 में 'गांधी शांति पुरस्कार' तथा 2007 में 'श्रीलंकाभिमान्य' नामक देश का सर्वोच्च राष्ट्रीय पुरस्कार मुख्य हैं।

भारतीय

अबुल कलाम मोहिउद्दीन अहमद

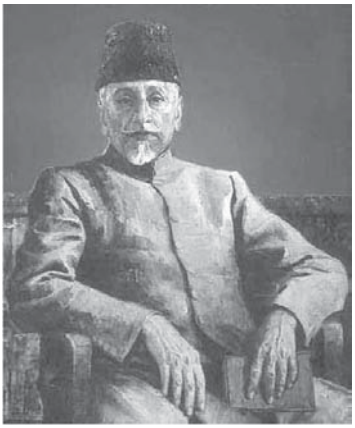

अबुल कलाम मोहिउद्दीन अहमद, आमतौर पर **मौलाना आजाद** के नाम से जाने जाते थे। वे इस्लाम धर्म के एक प्रसिद्ध विद्वान थे। 'आजाद' उनका उपनाम था। कलकत्ता से प्रकाशित 'अल-हिलाल' पत्रिका में 'राज' पर साहसिक प्रहार करने वाले पत्रकार की तरह वे सबसे पहले प्रकाश में आए। 1914 में उस पत्रिका पर प्रतिबन्ध लगने के बाद उन्होंने 'अल-बलग' शुरू की, जिस पर भी कुछ दिनों बाद रोक लग गई। इसी दौरान वे अरविन्द, एस. एस. चक्रवर्ती तथा अन्य उग्र राष्ट्रवादियों के साथ गहरे सम्पर्क में आए, फिर खिलाफत आन्दोलन में शामिल हुए और महात्मा गांधी से मिले। इससे उनमें बदलाव आया और वे अहिंसक प्रतिरोध ा के सशक्त समर्थक बन गए और कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गए। वे चर्खा कातने लगे व अपना कपड़ा स्वयं बुनने लगे। उन्होंने अपने साथी मुसलमानों से आजादी की लड़ाई में शामिल होने का आग्रह किया। आजाद की तरह गांधी को भी इस्लाम में गहरा विश्वास था, उन दोनों में गहरी दोस्ती हो गई।

1920 में उन्होंने डा. मुख्तार अहमद अंसारी और हकीम अजमल खान के साथ मिल कर पहले अलीगढ़ में उच्चस्तरीय शिक्षा के लिए 'जामिया मिलिया इस्लामिया' नामक राष्ट्रीय संस्था का गठन किया जो बाद में दिल्ली में स्थापित हुई। गांधी ने इस प्रयास की सराहना की और उसके लिए धन एकत्र करने का बीड़ा उठाया।

1923 में आजाद को कांग्रेस पार्टी का अध्यक्ष चुना गया, वे अब तक के सबसे अल्प आयु के अध्यक्ष थे।

जब गांधी ने 1930 में दांडी में नमक सत्याग्रह आरम्भ किया, आजाद ने धरसाना नमक कारखानों में सत्याग्रह का नेतृत्व भी किया। हजारों अन्य कार्यकर्ताओं के साथ उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया, पर गांधी-इरविन समझौते के बाद वे रिहा कर दिए गए। 1937 के चुनाव में वे खड़े नहीं हुए बल्कि उन्होंने सारे भारत में धन एकत्र करने, स्वयं-सेवकों की भर्ती और चुनाव सभाएं आयोजित करने का काम संभाल लिया। उन्होंने दृढ़ता से जिन्ना के इस दावे का

विरोध किया कि भारतीय मुसलमानों के वे अकेले नुमाइन्दे थे और कांग्रेस राज को 'हिन्दू राज' का नाम दे कर निन्दा करने के लिए उन्हें लताड़ा। उन्होंने 1939 में जिन्ना के कहने पर प्रान्तीय सरकारों से दिए गए इस्तीफों को मुसलमानों के लिए 'मुक्ति दिवस' की तरह मनाने की भी निन्दा की।

आजाद 1940 के रामगढ़ सत्र में कांग्रेस अध्यक्ष फिर चुने गए जहां अपने अध्यक्षीय भाषण में जातीय अलगाववाद की इन स्मरणीय शब्दों में उन्होंने प्रताड़ना की, "अब इस्लाम का भारत की धरती पर उतना ही दावा है जितना कि हिन्दुओं का। अगर 'हिन्दुत्व' यहां के लोगों का धर्म कई हजार साल से रहा है, उसी तरह इस्लाम भी हजार साल से उनका धर्म रहा है। जैसे एक हिन्दू गर्व से कह सकता है कि वह भारतीय है और हिन्दू धर्म का पालन करता है, ठीक उसी तरह हम कह सकते हैं कि हम भारतीय हैं और इस्लाम धर्म मानते हैं। मैं इस दायरे को और बढ़ाता हूं। एक ईसाई भी उसी गर्व से एलान करने का अधिकारी है कि वह भारतीय है और ईसाई धर्म को मानता है।" इसके बाद जब जिन्ना ने उन्हें कांग्रेस का 'दिखावटी चेहरा' कह कर व्यंग कसा तो उनका करारा जवाब था, "मुझे गर्व है कि मैं भारतीय हूं। मैं इस देश की अविभक्त एकता का एक हिस्सा हूं, मैं इस शानदार इमारत का एक कभी न अलग होने वाला हिस्सा हूं, मेरे बिना यह इमारत अधूरी है। मैं एक बहुत ही जरूरी तत्व हूं जो भारत को बनाने में मसरूफ है। मैं अपना यह हक कभी नहीं छोडूंगा।"

1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के बाद कांग्रेस के बाकी सभी नेताओं के साथ आजाद भी बन्दी बना लिए गए। रिहा होने के बाद उन्हें गांधी की जिन्ना से हुई कई वार्ताओं के बारे में पता चला। महात्मा के साथ सार्वजनिक तौर पर हुए इस विरले मतभेद में उन्होंने उस कदम को गलत बताया। वे समझ गए कि इन वार्ताओं से जिन्ना का कद उठ जाएगा, उनकी जिद को और ताकत मिलेगी और वह मुसलमानों के इकलौते प्रतिनिधि होने का दावा फिर से करेंगे। फिर भी गांधी के लिए उनका सम्मान उसी प्रकार बना रहा। 18 जनवरी 1948 को अनशन तोड़ते समय उन्होंने आजाद के हाथों से ही संतरे का रस ग्रहण किया था।

देश के विभाजन के प्रश्न पर वे गांधी के साथ दृढ़ता से विरोध करते रहे जब कि नेहरू और पटेल ने ऐसा नहीं किया। आजाद ने घोषणा की, "ऐसा लगता है कि पाकिस्तान बनाने की योजना परास्त होने का चिन्ह है तथा यहूदियों का अपने लिए अलग देश की मांग की नकल जैसा है। यह इस तथ्य की स्वीकृति है कि भारतीय मुसलमान सामूहिक तौर पर भारत में नहीं रह सकता और अपने लिए सुरक्षित एक कोने में सिमट कर रहने में संतुष्ट है। एक मुस्लिम होते हुए मैं एक क्षण के लिए भी अपना वह अधिकार छोड़ने को तैयार नहीं हूं जिसके अनुसार सारा भारत मेरा कार्यक्षेत्र रहे और उसके राजनैतिक और आर्थिक जीवन को स्वरूप देने में मेरा हाथ

रहे। मुझे यह एकदम कायरता लगती है कि अपना पुश्तैनी वतन छोड़ कर उसके एक छोटे से हिस्से से तसल्ली करनी पड़े।"

आज़ादी के बाद उन्होंने शिक्षा मंत्री का पद संभाला और देश में प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर शिक्षा तथा वैज्ञानिक अन्वेषण की नींव डाली। 'भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद' (ICCR) की स्थापना उनका दूसरा महा योगदान है। इस संस्था के 40 से अधिक सांस्कृतिक केंद्र एशिया, अफ्रीका, वेस्ट-इंडीज और कुछ पश्चिमी देशों में कार्यरत हैं।

विनोबा भावे

गांधी की सबसे अधिक समानता वाले शिष्य विनोबा भावे थे, जो सबसे पहले 1916 में उनसे मिले और एक साल बाद साबरमती आश्रम में आ गए । उनसे मिलने के पहले वे दुविधा में थे कि अंग्रेजों का विरोध करने के लिए वे साधू बनें या उग्र राष्ट्रवादी। साबरमती आश्रम में आने के बाद उन्होंने कहा, "यहां मुझे हिमालय की सी शांति में बंगाल की क्रांतिकारी भावना मिली हुई लगती है।" जनवरी 1948 में गांधी के देहान्त तक उनके साथ काम किया।

गांधी की मृत्यु के बाद उन्होंने निश्चय किया कि स्वराज्य मिलने के बाद अब भारत का ध्येय सर्वोदय अर्थात सब की भलाई होना चाहिए और वह उस रास्ते पर चल पड़े। उन्होंने अपने इस अभियान के लिए आंध्र प्रदेश के तेलंगाना प्रदेश को चुना जहां साम्यवादी, ग्रामीण आतंकी ज़मींदारों के शिकंजे को तोड़ कर भूमिहीन किसानों को जमीन बांटने का यत्न करने में संलग्न थे। दोनों पक्ष गांव वालों को यह समझ कर मार रहे थे कि वे विरोधी पक्ष के साथ हैं। विनोबा इस संघर्ष के मौलिक कारणों का समाधान करना चाहते थे। इसके लिए वे अपने कुछ साथियों के साथ बिना पुलिस लिए निकल पड़े। तीसरे दिन वे पोचमपल्ली गांव में रुके जो साम्यवादी दल का गढ़ था, और एक मस्जिद के प्रांगण में ठहरे। गांव के हर सम्प्रदाय के लोग उनके दर्शन को वहां आए, जिनमें से 40 भूमि-हीन हरिजन परिवार थे। उन्होंने स्वीकार किया कि वे साम्यवादियों के साथ हैं क्योंकि उन्होंने भूमि देने का वादा किया है। उन्होंने विनोबा से पूछा कि क्या वे सरकार द्वारा उनको जमीन दिला सकते हैं? उन्होंने उत्तर दिया, "सरकारी सहायता से क्या होगा यदि हम अपनी सहायता अपने आप नहीं कर सकते।" उसी दिन शाम की प्रार्थना सभा के बाद उन्होंने लोगों से

पूछा, "भाइयो, क्या आप में से कोई इन हरिजन मित्रों की सहायता कर सकते हैं?" एक प्रमुख ज़मींदार बोला, "मैं सौ एकड़ देने को तैयार हूं।" हरिजनों का उत्तर भी उतना ही आश्चर्यजनक था। उन्हें केवल 80 एकड़ भूमि चाहिए थी और वे उससे अधिक लेने को तैयार नहीं थे! इस असाधारण उदारता में विनोबा ने ईश्वर की कृपा देखी। यह उनके भूदान आन्दोलन का शुभारम्भ था। इसके बाद वे गांव-गांव घूम कर जमींदारों से कहते, "मैं आपका पांचवां पुत्र हूं, मुझे मेरे हिस्से की जमीन दीजिए।" अधिकतर लोग सहमत हो गए। क्यों? एक तो वे विनोबा को महात्मा का अवतार मानने लगे थे और उनको दान देने से आध्यात्मिक पुण्य मिलता, दूसरे उन्हें डर था कि साम्यवादी या तो उन्हें मार डालेंगे या उन्हें भगा देंगे। फलस्वरूप, पहले 51 दिनों में 12,201 एकड़ भूमि एकत्र हो गई। 1958 तक 30 लाख एकड़ जमीन देश के विभिन्न भागों में इकट्ठा हो चुकी थी। यह एक अप्रत्याशित उपलब्धि थी।

विनोबा को आशा थी कि भूदान आन्दोलन भारतीय समाज में एक अहिंसक परिवर्तन लाएगा। उनके अनुसार निर्धनता और दमन के मूल कारण कब्जा करने की भावना और लालच हैं। अगर लोगों को इन दोनों को त्यागने के लिए प्रेरित किया जाए तो उपर्युक्त सामाजिक बुराईयां खत्म हो जाएंगी। वे कहते थे, "सारे आन्दोलन आरम्भ में आध्यात्मिक होते हैं। मेरी सारी गतिविधियों का लक्ष्य दिलों को जोड़ना है।.... हमारा ध्येय केवल दया के काम करना नहीं है, बल्कि दयालुता का एक साम्राज्य बनाना है।" उनका आम अभिवादन होता था 'जय जगत' अर्थात 'पूरे संसार की विजय'। गांधी की भांति उनकी दृष्टि सारी सृष्टि को समेटे थी।

यद्यपि भूदान आन्दोलन की सफलता सीमित ही रही क्योंकि दान में दी गई अधिकांश भूमि बंजर थी। परन्तु परोक्ष रूप में उसका लाभ इस प्रकार हुआ कि लोगों को सम्पति-दान, बुद्धि-दान और श्रम-दान के लिए प्रेरणा मिली। कई लोक कल्याणकारी व्यक्तियों, व्यवसायिक गुटों तथा प्रवासी भारतीयों ने इसे आजकल अपनाया है।

डॉ. एम. सी. मोदी

डॉ. एम.सी. मोदी बुद्धि-दान का सर्वोत्तम उदाहरण हैं। बीजापुर के पास स्थित अपने पैतृक शहर बीलागी में सन् 1942 में गांधी का एक भाषण सुनने के बाद उन्होंने गरीबों के मुफ्त आंख के इलाज एवं देखभाल के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। नवम्बर 2005 में, 90 वर्ष की आयु में जब उनका निधन हुआ, वे 5,95,019 आंखों का ऑपरेशन कर चुके थे। सन् 1976 में मात्र एक दिन में उन्होंने मोतियाबिन्द के 833 ऑपरेशन किए जिसके पश्चात् उनके नाम का उल्लेख 'गिनीज बुक ऑफ रिकार्ड्स' में भी हुआ। 1956 तथा 1958 में उन्हें भारत के 'पद्मश्री' तथा 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया गया।

डॉ. बिन्देश्वर पाठक

डॉ. बिन्देश्वर पाठक एक ब्राह्मण इंजीनियर हैं। सन् 1969 में गांधी की जन्म-शताब्दी से वे उनसे इतना प्रेरित हुए कि उन्होंने अपना जीवन झाड़ू लगाने वाले सफ़ाई कर्मचारियों के लिए समर्पित कर दिया। उन्होंने सैप्टिक टैंक से जोड़ते हुए एक 'सुलभ शौचालय' का प्रारूप तैयार किया। सन् 1972 से पूरे भारत में असंख्य सुलभ शौचालयों का निर्माण कर लगभग पचास हजार शूद्र परिवारों को, उनके पीढ़ी-दर-पीढ़ी से चले आ रहे घृणित कार्य से मुक्त कराया। अपने इस प्रयास से उन्होंने उन लाखों लोगों को, जो गंदी व मलीन बस्तियों में रहते हैं या जो गृह-विहीन हैं तथा जिनके पास शौचालय या स्नानगृह की सुविधा ही नहीं है, उन्हें भी अत्यन्त राहत प्रदान की। अपने इस कार्य के लिए उन्हें अनेकों राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है, जिनमें 1991 में 'पद्म भूषण' तथा 1992 में 'ऐसिसी का सेंट फ्रांसिस' पुरस्कार शामिल हैं तथा अगस्त 2009 में 'स्टॉकहोम वाटर प्राइज' शामिल है। हाल ही में उनकी बहुप्रचारित उपलब्धि थी— जुलाई 2008 में संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्यालय, न्यूयॉर्क में आयोजित सौंदर्य प्रतियोगिता में दस सफाई कर्मचारी महिलाओं द्वारा फैशन प्रदर्शनी में भाग लेना। इस विशेष आयोजन को 'एक उद्देश्य के लिए स्वच्छता संस्कृति की महाकथा' का नाम दिया गया। इन महिलाओं ने स्वरचित परिधानों को पहन कर जानी-मानी मॉडल महिलाओं के साथ रैम्प पर प्रदर्शन किया। उनमें से एक महिला लक्ष्मी नन्दा ने उस अवसर पर दिए भाषण में कहा, "यह अनुभव रोमांचक था। अपने डिजायनर अब्दुल हल्धर की सहायता से खुद बनाए कपड़े पहन कर प्रसिद्ध मॉडलों के साथ हमने प्रदर्शन किया। वे मॉडल साड़ी, लहंगे और गाउन पहने हुए थे। पहले लोग हमारी बनाई चीजें खरीदने में हिचकते थे पर अब धीरे धीरे स्थिति बदल रही है। अब लोग न सिर्फ चीजें खरीदने में हिचकते नहीं हैं बल्कि हमें अपने घरों में भी बुलाते हैं। हमारे बच्चे भी और बच्चों की तरह स्कूल जाते हैं.... इस तरह की जिन्दगी की चाह हमें हमेशा से थी।"

एस. के. जॉर्ज

गांधी के भारतीय ईसाईयों में सबसे विख्यात शिष्य एस. के. जॉर्ज थे। युवावस्था में उन्होंने धर्मशास्त्र पढ़ने के लिए कलकत्ता के बिशप कॉलेज में प्रवेश लिया और एंग्लिकन चर्च में पादरी बन गए। वह गांधी के संदेश से बहुत प्रभावित थे और उन्होंने घोषणा की कि "आधुनिक युग की समस्याओं का सामना करने के लिए ईसा मसीह की शिक्षाओं की उपयोगिता गांधी की कार्य-शैली से पूरी तरह समझ में आती है। इन दिनों इस तरह के सख्त कथन की बहुत जरूरत है। ईसा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते हुए, चर्च के पादरी उनकी शिक्षा को केवल अव्यवहारिक आदर्शवाद का दर्जा ही दे पाए हैं।" उन्होंने अपने साथी भारतीय ईसाइयों को आजादी की लड़ाई में सहयोग देने का आह्वान किया। भारत के एंग्लिकन चर्च के प्रमुख, मेट्रोपोलिटन फॉस वैस्टकॉट ने इस तरह

की घोषणाएं वापस लेने के लिए दबाव डाला। उनकी बात न मानने के कारण उन्हें बिशप कॉलेज से निकाल दिया गया, साथ ही एंग्लिकन और ब्रिटिश समाज से भी तिरस्कृत कर दिया गया। तब उन्होंने अपने परिवार को केरल भेज दिया और स्वयं साबरमती आश्रम चले गए जहां वे कई महीनों तक रहे। पुत्री के निधन के कारण उन्हें केरल वापस जाना पड़ा। 1947 से 1950 के बीच वे विश्वभारती, शान्ति निकेतन में अंग्रेजी के प्रोफेसर, और बाद में अध्यक्ष रहे। 1954 से 1956 तक 'क्रिशिचियन मिशनरी इन्क्वायरी कमेटी' के सदस्य रहे जिसके अध्यक्ष डॉ. एम. बी. नियोगी थे। मई 1960 में उनका देहावसान हुआ।

1939 में '*गांधीस् चैलेंज टु क्रिश्चियेनिटी*' (Gandhi's Challenge to Christianity) शीर्षक से लिखी पुस्तक में वे लिखते हैं, "मैं महान होने का दावा नहीं करता, परन्तु एक गांधीवादी और ईसाई होने का दावा जरूर करता हूं। संयुक्त रूप से ये दोनों मेरे लिए एकदम जरूरी हैं और आज की दुनिया तथा भारत के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। भारतीय राजनीति में गांधी-युग के प्रारम्भ में मुझे युवावस्था में ही यह विश्वास घर कर गया था। यह एक ऐसा विश्वास है जो समय के साथ गहराता जा रहा है। ईसा और महात्मा गांधी के संदेशों को और अधिक समझते हुए मुझे विश्वास है कि आज भारत में एक सच्चे ईसाई का गांधीवादी होना अनिवार्य है।" उनके लिए 'सत्याग्रह' का अर्थ था 'ईसा की सूली या क्रॉस का कार्यान्वयन'। उन्होंने दृढ़ता से कहा, "पश्चिमी ईसाई मत, हिब्रूवाद और सेमेटिक धरोहर तथा यूनानी-रोमन संस्कृति के सम्मिश्रण का परिणाम है— इस सत्य का पूरी तरह अनुभव नहीं किया गया है। भारतीय अध्यात्म और हेब्रू नैतिकता के असली गठबंधन से एक ऐसे ईसाई धर्म जो वास्तव में भारतीय हो और सच्चा ईसाई धर्म हो, सारे विश्व का ईसाई धर्म बन सकता है।"

तीन दशक बाद पोप जॉन पॉल II ने इन्हीं विचारों को दोहराया। *क्रॉसिंग द थ्रैशोल्ड ऑफ होप* (Crossing the Threshold of Hope) नामक पुस्तक में वे लिखते हैं, "हिन्दू धर्म में दैविक रहस्य की खोज होती है और उन रहस्यों को अनन्त अंतर्कथाओं के माध्यम से आध्यात्मिक सूक्ष्म दृष्टि से वर्णन किया जाता है। वे मानवता के कष्टों का निवारण योगी सा जीवन-यापन करके या गहरी साधना द्वारा अथवा प्रेम और श्रद्धा से ईश्वर की शरण में जाने का यत्न करके करते हैं....। विभिन्न देशों के सामाजिक व राजनीतिक जीवन में ईसाई धर्म की व्याख्या जिस तरह की गई थी उससे महात्मा गांधी, हिन्दू समाज तथा भारतीय सभी भ्रमित थे। क्या उपनिवेशवाद से अपने महान देश की आजादी के लिए संघर्ष करने वाला व्यक्ति उसी ईसाई धर्म को उपनिवेशी द्वारा अपने देश पर थोपे जाने के लिए तैयार हो जाता? इस दुविधा का दूसरे वैटिकन (Second Vatican) ने अनुभव किया, इसलिए चर्च और हिन्दुत्व तथा सुदूर पूर्व के अन्य धर्मों के आपसी संबंधों पर विचार किया जाना जरूरी है।"

सुशील कुमार रूद्र

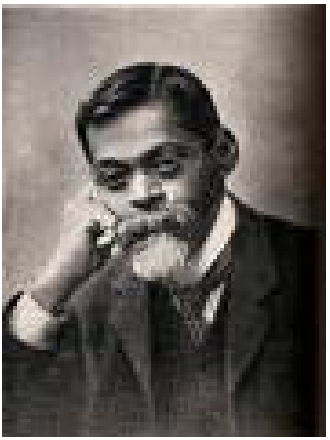

सुशील कुमार रूद्र, सेंट स्टीफ़ेंस कॉलेज, दिल्ली के प्रधानाचार्य, गांधी के एक और दृढ़, शान्त, भारतीय ईसाई शिष्य थे। जनवरी 1923 में उनके देहांत के समय गांधी द्वारा उनकी प्रशंसा में कहे गए शब्दों से उनके योगदान का पता चलता है। "मेरे माननीय मित्र और जनसेवक, प्रधानाचार्य सुशील कुमार रूद्र के देहांत का दुख बांटने का आग्रह मैं अपने पाठकों से करता हूं। वे प्रथम श्रेणी के शिक्षाविद् थे। एक प्रधानाचार्य के रूप में उन्होंने विश्वव्यापी लोकप्रियता पाई। उनके और शिष्यों के बीच एक आध्यात्मिक संबंध था। ईसाई होते हुए भी उनके मन में हिन्दुत्व और इस्लाम दोनों के लिए गहरा आदर भाव था। ईसा मसीह ही अकेले विश्व के रक्षक हैं— इस तरह की आस्था न रखने वाला हर व्यक्ति नरक में जाएगा— उनका ईसाई धर्म इस तरह का नहीं था। वह अपनी असीम ख्याति के बावजूद अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु थे।.... 1915 में घर लौटने के बाद से मैं जब भी दिल्ली जाता था, उन्हीं का मेहमान रहता था।.... पाठकों को शायद यह नहीं मालूम कि खिलाफ़त आन्दोलन के संबंध में वॉयसराय को लिखे खुले पत्र का प्रारूप प्रधानाचार्य रूद्र के घर पर ही बना था। वे तथा चार्ली एन्ड्रयूज़ हमेशा मेरे पत्रों को सुधारते थे। उनके ही घर पर बैठ कर हमने असहयोग आन्दोलन की परिकल्पना और कार्यक्रम बनाए थे। अली भाइयों, अन्य मुस्लिम मित्रों और मेरे बीच होने वाले गुप्त सम्मेलन में वे दिलचस्पी रखने वाले मूक दर्शक थे। धार्मिक समझ इन्सान को एक सही नजरिया देती है, जिसके कारण कर्म और आस्था में सामजंस्य स्थापित होता है, इस सत्य को उन्होंने अपने जीवन से सिद्ध कर दिया।"

4. राष्ट्रीय स्वतंत्रता, जातिवाद-विरोध तथा तानाशाही-विरोधी जन-शक्ति आन्दोलन पर प्रभाव

अमरीका

डॉ. विलियम ई.बी. डुबॉयस, गांधी के सत्याग्रह से संबन्धित पहले अफ्रीकी-अमेरिकी व्यक्ति थे। उन्हें इसके विषय में 'नेशनल एसोसिएशन फॉर एडवान्समेंट ऑफ कलर्ड पीपल्स' के अपने सहकर्मी जॉन हेन्स होम्स से पता चला। 1929 में उन्होंने गांधी को नीग्रो समुदाय के लिए एक संदेश देने की प्रार्थना की। गांधी ने लिखा, "एक करोड़ बीस लाख लोगों को गुलामों के पौत्र होने पर लज्जा का अनुभव नहीं करना चाहिए। लोगों

को गुलाम बनाना लज्जा का विषय है। पर भूतकाल के संदर्भ में हमें मान-अपमान के बारे में नहीं सोचना है। हमें यह समझना है कि भविष्य उनके साथ है जो निर्मल हृदय, सच्चे और प्यार करने वाले हैं। केवल प्रेम ही लोगों को बांधता है और सत्य तथा प्रेम केवल असली विनम्र लोगों को ही प्राप्त होता है।"

डॉ. डुबॉयस ने 1956 में लिखे लेख *गांधी एंड दि अमेरिकन नीग्रोज* (Gandhi and the American Negroes) में लिखा, "मॉन्टगोमरी अलाबामा उन पूर्व संयुक्त राज्यों की राजधानी थी जो अमेरिका को एक दास राष्ट्र बनाने के लिए सालों तक युद्ध करते रहे। पिछले साल उसी नगर में काले मजदूरों ने सार्वजनिक बसों पर यात्रा करना बंद कर दिया। उन बसों में बहुत समय से गोरे यात्रियों के लिए अलग सीटें होती थीं, जबकि काले रंग के लोग भी वही किराया देते थे।.... काले मजदूरों ने युवा, शिक्षित पादरियों के नेतृत्व में एक हड़ताल शुरू की जिसके फलस्वरूप पक्षपात बन्द हुआ, पूरे राज्य व देश में जागृति आई और पूरे दक्षिणी भाग में अब तक राज कर रही मारकाट वाली भीड़ के समक्ष न झुकने वाला एक अहिंसक मोर्चा खड़ा हुआ।... अमेरिकी नीग्रो अभी तक स्वतंत्र नहीं हुआ है। उसके विरुद्ध भेदभाव अब भी होता है, उसका दमन और शोषण होता रहा है। हाल के अदालती फ़ैसले उस के पक्ष में ठीक हैं पर उनका क्रियान्वयन पूरी तरह नहीं होता है। इन कानूनों पर सूचित आचरण, वास्तविक मानवीय समानता और भाईचारा, अमेरिका में कदाचित एक और गांधी के नेतृत्व में ही सम्भव हो पाएगा।"

अमेरिकी नीग्रो की शोचनीय स्थिति को देख कर और गांधी की स्वतंत्रता-संग्राम की रणनीति से प्रेरणा ले कर **मार्टिन लूथर किंग** ने जो योजना बनाई उसका वर्णन स्वयं उनके द्वारा कहे शब्द सबसे अच्छी तरह करते हैं— "तीन शताब्दियों से भी अधिक समय से दमन और उत्पीड़न का निर्मम शिकार हो रहे अमेरिकी नीग्रो जीर्ण-शीर्ण अवस्था में जी रहे हैं। असहनीय अन्याय उन्हें दिन में हताश और क्षुब्ध और रात्रि में भ्रमित करते रहे हैं। ऐसी शर्मनाक स्थिति में जीवन-यापन करने पर बाध्य हममें भी कड़ुवाहट आ जाने की निश्चित सम्भावना है और हम

रेवरेंड मार्टिन लूथर किंग और कोरेटा किंग के साथ जवाहरलाल नेहरू

उतनी ही घृणा से प्रतिक्रिया जाहिर कर सकते हैं। पर यदि ऐसा होता है तो जो नए हालात हम खोज रहे हैं वह पुरानी दशा की पुनरावृत्ति की अपेक्षा अधिक कठोर होगा। हमें एकत्रित होकर विनम्र भाव से, प्यार से उसे प्राप्त करना होगा। अलगाव से घृणा करते हुए भी हम अलगाव करने वालों से प्रेम करेंगे। अपने सबसे प्रचंड विरोधी से हम कहते हैं, 'तुम्हारी कष्ट देने की क्षमता के समान ही हम कष्ट सहने की क्षमता हासिल कर लेंगे। तुम्हारे शारीरिक बल का सामना हम अपने आत्मिक बल से करेंगे। तुम हमारे साथ जो भी करना चाहो करो, हम तुमसे प्यार करते रहेंगे। हम अपने अंतःकरण से तुम्हारे अनुचित नियमों का पालन नहीं कर सकते क्योंकि बुराई से असहयोग मात्र नैतिक बाध्यता नहीं है बल्कि यह अच्छाई के साथ सहयोग करना भी है।.... एक दिन हम स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे पर केवल अपने लिए नहीं। हम तुम्हारी अंतरात्मा और हृदय से ऐसा अनुरोध करेंगे कि इस प्रक्रिया में हम तुम्हें जीत लें और इस प्रकार हमारी यह दोहरी विजय होगी।'"

वाशिंगटन होवर्ड विश्वविद्यालय के प्रेसिडेंट डॉ. मोर्डेकाई जॉन्सन द्वारा गांधी के सत्याग्रह के विषय में भाषण सुन कर मार्टिन लूथर किंग अत्यंत प्रभावित हुए। वे इस विषय पर फिलाडेल्फिया में फेलोशिप हाउस में बोल रहे थे। डॉ. जॉन्सन, जो वाशिंगटन की होवर्ड युनिवर्सिटी के पहले अफ्रीकी - अमेरिकी प्रेसिडेन्ट थे, 1950 में भारत आये थे। किंग, जो उस समय क्रोजर में एक छात्र थे, को वह वार्ता इतनी रोमांचक लगी कि वे व्याख्यान बीच में ही छोड़ कर गांधी के कार्यों और जीवन पर आधा दर्जन पुस्तकें खरीद लाए। उन्होंने गांधी के अनुयाइयों से अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन की योजना व कार्यान्वयन के बारे में जानने के विचार से सन् 1959 में भारत की यात्रा की। अमेरिका वापस पहुंचने पर उन्होंने लिखा "मैं भारत से पहले से भी अधिक दृढ़ विश्वास से वापस आया कि दलित और उत्पीड़ित लोगों के स्वतंत्रता संघर्ष के लिए अहिंसात्मक असहयोग सबसे प्रभावकारी हथियार है। वास्तविक अर्थों में महात्मा गांधी ने अपने जीवन में उन विशेष सार्वभौमिक सिद्धान्तों को अंगीकार किया जो ब्रह्माण्ड के नैतिक ढ़ांचे में समाविष्ट हैं, यह सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षण के नियम की तरह अनिवार्य है।"

1961 में मार्टिन लूथर किंग ने सबसे पहले मॉन्टगमरी-बस-बहिष्कार के समय में जातीय समानता के लिए अहिंसात्मक आंदोलन का प्रयोग किया, जब रोजा पार्क को बस में श्वेत लोगों के लिये निर्धारित सीट से न उठने पर गिरफ्तार कर तथा मुकदमा चलाकर जेल में डाल दिया गया था। इसके बाद 'सत्याग्रह' लगातार व्यवहार में लाकर उन्होंने मात्र आठ वर्षों के अहिंसात्मक आंदोलन द्वारा, अमेरिकी अश्वेत लोगों के लिए वह लाभकारी परिवर्तन ला दिखाया जो गृह-युद्ध के बाद पिछले सौ वर्षों से चल रहे संघर्ष द्वारा भी नहीं हो पाया था। उनके इस अहिंसक आंदोलन द्वारा किंग के अनुयाई अश्वेत समुदाय के लोगों में जो परिवर्तन आया उसके संबंध में उन्होंने स्वयं उसका उल्लेख इस प्रकार किया है, "जब कानूनी लड़ाई एक मात्र

गतिविधि थी, आम नीग्रो एक निष्क्रिय दर्शक की भांति उससे जुड़ा था। उसकी रूचि क्रियाशील थी, किंतु उसकी शक्ति अकर्मण्य थी। सामूहिक प्रयासों ने साधारण मनुष्य को अद्वितीय कर्मठ व्यक्ति बना दिया। नीग्रो अब परिवर्तन का विषय न रहा बल्कि वह परिवर्तन का एक सक्रिय उपकरण बन गया। जो गरिमा उसके कार्य में उसे नहीं मिली वह उसने अपने राजनैतिक व सामाजिक कार्यों द्वारा प्राप्त कर ली।"

किंग के लिए "महात्मा गांधी मानव इतिहास में ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मात्र व्यक्तियों की पारस्परिक सहभागिता द्वारा ईसामसीह के प्यार के संदेश को उद्‌भासित कर उसे एक बड़े पैमाने में शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण सामाजिक बल का रूप प्रदान कर दिया। मानवता के विकास के लिए गांधी अपरिहार्य हैं। यदि हम उनकी अवहेलना करते हैं, तो स्वयं को जोखिम में डालते हैं।" जब एक अमेरिकी पादरी ने उनकी इस उक्ति की आलोचना की तो उन्होंने उत्तर दिया, "यह व्यंगपूर्ण उक्ति अवश्य है पर यह निर्विवाद सत्य भी है कि आधुनिक काल का सबसे बड़ा ईसाई वह व्यक्ति था जिसने कभी भी ईसाई धर्म को नहीं अपनाया।"

मार्टिन लूथर किंग जूनियर के बाद **सेसार चावेज** संयुक्त राज्य अमेरिका के अहिंसक नेताओं में सबसे प्रमुख हैं। गांधी से उनका परिचय सैन जोसे, कैलिफोर्निया में फादर डॉनल्ड मैकडॉनल्ड ने करवाया था। 'युनाइटेड फार्म वर्कर्स आन्दोलन' का प्रारम्भ करके उन्होंने 30 सालों तक उसका नेतृत्व भी किया जिसकी वजह से अमेरिका के खेतों में गांधी के सिद्धान्त लागू हुए। उन्होंने सत्याग्रह, कैथोलिक समाज शास्त्र और फ्रेड रॉस तथा सॉल एलिन्सकी की प्रबंधन कार्यविधि का सम्मिश्रण कर एक अनोखी रणनीति ईजाद की जिसमें कुछ भाग परिश्रम, कुछ धार्मिक और कुछ सामाजिक तत्व भी था।

1962 में *'ला कॉजा'* के सूत्रपात के समय फार्म के मजदूरों को केवल एक डालर प्रति घंटा के दर से पारिश्रमिक मिलता था। मेक्सिको और फिलिपीन के फार्म-श्रमिक परिवारों का कमरतोड़ मंहगाई, नौकरी की असुरक्षा, गाली-गलौज करने वाले ठेकेदार, एक कैम्प से दूसरे में जल्दी जल्दी स्थानान्तरण के कारण जीवन सदैव ही शोचनीय बना रहता था। उन्हें न तो संगठित होने का अधिकार था, न कोई स्वास्थ्य-बीमा, न पेंशन, न वेतन के साथ छुट्टी— ऐसी किसी भी सुविधा का प्रावधान नहीं था। अनेक परिवारों को शौचालय या ताजे पेय जल तक की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। बच्चों के लिए शिक्षा के अवसर बहुत कम थे। कई बच्चे हाई स्कूल तक की शिक्षा नहीं पा सके जिनमें सेसार चावेज भी शामिल थे। उनको 38 विभिन्न स्कूलों में जाना पड़ा।

उपवास, हड़ताल, धरना और बहिष्कार के नियोजित प्रयोग के द्वारा 'युनाइटेड फार्म वर्कर्स आन्दोलन' ने अनेक प्रमुख सफलताएं पाईं। पारिश्रमिक बढ़ा और पहली बार प्रवासी कामगारों को स्वास्थ्य-बीमा, पेंशन का लाभ, सामूहिक सौदेबाजी का अधिकार मिला। इन सब

उपलब्धियों का श्रेय चावेज की अहिंसक रणनीति को जाता है। 1968 में उनके अनशन समाप्त करने के समय रॉबर्ट केनेडी ने उनके साथ भोजन किया और उनकी प्रशंसा करते हुए कहा, "वह हमारे समय के अभिनायक व्यक्तित्व हैं।"

दक्षिण अफ्रीका

गांधी के एक सौ पच्चीसवें जन्म दिवस पर उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए नेल्सन मंडेला ने लिखा, "हमारी शताब्दी के पहले और दूसरे दशक में गांधी ने जिस प्रकार से दक्षिण अफ्रीका सरकार को आशंकित किया वैसा कोई भी अन्य नहीं कर पाया। उन्होंने 1894 में *नेटाल इंडियन कांग्रेस* (Natal Indian Congress) की स्थापना करके विश्व में नहीं तो कम से कम इस देश में पहली उपनिवेशवाद विरोधी राजनैतिक संस्था स्थापित की। सन् 1902 में *अफ्रीकन पीपल्स ऑर्गेनाईजेशन* (African People's Organization) तथा 1912 में *अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस* (African National Congress) की स्थापना हुई। अतएव दोनो संस्थाएं, गांधी द्वारा 1907 में आरंभ किए और 1913 में अपने चरम-सीमा पर पहुंचे उस संघर्षपूर्ण सत्याग्रह की साक्षी हैं, जिसमें नेटाल की कोयला खदानों के 5,000 बंधुआ मजदूरों ने एक विशाल जुलूस में भाग लिया था। अतएव एक प्रकार से भारतीय सत्याग्रह की जड़ें अफ्रीकी सत्याग्रह से पैदा हुई हैं.... समय का अंतर होने के बावजूद हमारे बीच एक विशेष सम्बन्ध है— जेल में बिताए हमारे साझे अनुभवों का, अनुचित नियमों की हमारी अवमानना का और इस तथ्य का कि हिंसा, शांति और समझौते की हमारी अभिलाषाओं के लिए खतरा है।" अलग से भी उन्होंने लिखा, "जब तक संभव हो सका मैंने गांधी की रणनीति अपनाई। परन्तु हमारे संघर्ष के बीच में एक ऐसी स्थिति आई कि केवल शान्त विरोध से दमनकारी शक्तियों की निर्मम ताकत का सामना नहीं किया जा सकता था। हमने *उमखोन्तो वी सिजवे* (Umkhonto we Sizwe) का गठन किया और अपने संघर्ष में सैनिक शक्ति को शामिल किया। हमने तोड़फोड़ का भी सहारा लिया क्योंकि उसमें जानमाल की हानि नहीं होती है तथा भविष्य में जातीय संबंधों की बेहतरी की भी आशा बनी रहती है।"

दक्षिण अफ्रीका के ईस्टर्न केप प्रदेष के सैनिक गुप्तचर विभाग के पूर्व प्रमुख कर्नल लॉरेन्ट डू प्लेसिस ने 'फ़ोर्स मोर पॉवरफ़ुल' में अपनी फ़िल्म 'फ़्रीडम इन अवर लाइफ़टाइम' में साफ़ कहा है, ''हथियारबन्द संघर्श से कुछ हासिल नहीं हुआ --- आम जनता के प्रयासों से, आर्थिक बहिश्कार और अन्तराश्ट्रीय दबाव से ही बदलाव आया। डि क्लार्क ने जो कार्रवाई की उसके अलावा उनके पास कोई विकल्प नहीं था।'' आर्थिक बहिश्कार के बारे

में वे निष्चयपूर्वक कहते हैं, ''वे बहुत प्रभावषाली थे। ख़रीदारी न करना कोई जुर्म नहीं है। जो लोग ख़रीदारी नहीं करते, उनके साथ आप व्यवहार कैसा व्यवहार करते हैं? आप उन सब को गोली तो नहीं मार सकते। ये निश्कष्य विरोध है। यदि मैं गलत नहीं समझा हूं तो इसे गांधी ने षुरुकिया था।'' गोरों की दुकानों और कारोबार के बहिश्कार की वजह से उन्हें अपना काम बन्द करना पड़ा। 1986 से 1989 तक की अवधि में एमरजेन्सी की घोशणा और असंख्य काले वर्ण के आन्दोलनकारियों को जेल में डाल देने से भी ये विरोध नहीं रुका। इन कार्यवाइयों से दक्षिण अफ़्रीका की अन्तर्राश्ट्रीय छवि बिगड़ी,और उन पर अनेक अन्तर्राश्ट्रीय प्रतिबन्ध लगाए गए। इनके फलस्वरुप अनेक बहुराश्ट्रीय कम्पनियों ने देष भर में अपना व्यापार बन्द कर दिया।उसमें कोकाकोला कम्पनी भी षामिल थी। इस सकंटावस्था के कारण राश्ट्रपति पी. डब्लू. बोथा को 1989 में त्यागपत्र देना पड़ा।उनके उत्तराधिकारी एफ़. डब्लू. डि क्लार्कने कालेवर्णके सदस्यों वाली राजनैतिक पार्टियों पर से प्रतिबन्ध तुरन्त हटा लिए और नेल्सन मन्डेला को रिहा कर दिया। उसके बाद इन दोनों नेताओं ने संयुक्त रुप से व्यापक वयस्क मतदान पर आधारित एक नया संविधान लागू करने का समझौता किया। इस संविधान के अनुसार 1994 में दक्षिण अफ़्रीका में पहले स्वतंत्र चुनाव हुए। अफ़्रीकन नेषनल कॉंग्रेस की ज़बरदस्त जीत हुई और नेल्सन मन्डेला राश्ट्रपति चुने गए। अपने 27 साल के कठोर कारावास के प्रतितनिक भी आक्रोष प्रकट करने के बजाए, उन्होंने घोशणा कीं कि दक्षिण अफ़्रीका के निवासियों कोदिखाना होगा कि गोरे, काले, गेहुंए और पीले वर्ण के सब लोग एक ''इन्द्रधनुशी समाज'' में परस्पर षांति और सौहार्द के वातावरण में रह सकते हैं। इसके अलावा उन्होंने एक ट्रुथ कमीषन का गठन किया, जिसका लक्ष्य रंगभेदी षासन के दौरान हुए अत्याचारोंकी जांच करना तथा उत्पीड़ित एवं अत्याचारी दोनों पक्षों को झगड़े सुलझाने का अवसर उपलब्ध कराना था। इस तरह एक नए सौहार्दपूर्ण समाज के गठन की प्रक्रिया आरम्भ हुई।

दक्षिण अफ़्रीका, एक चान्डाल देष से अचानक सबसे प्रषन्सनीय देष बन गया। नेल्सन मन्डेला एक महान और अदम्य इच्छाषक्ति के प्रतीक बन गए। इस आज़ादी के अन्तिम 'सामूहिक संघर्श' के मुख्य नायक, पोर्ट एलिज़ाबेथ के 27 वर्शीय युवा संगठनकर्ता म्खुसेली जैक और उनके सहयोगी टैन्गो लमनी, माइक ज़ैगो व जैनेट चेरी और आर्कबिषप डेसमन्ड टुटू थे। इन महानुभावों ने केवल लोगों को प्रेरणा ही नहीं दी, बल्कि ये भी सुनिष्चित किया कि रंगभेदी षासन के अत्याचारों के बावजूद आन्दोलन पूरी तरह अहिंसक रहे।

पश्चिमी अफ़्रीका

अपनी आत्मकथा के आमुख में **क्वामे न्क्रूमा** लिखते हैं, "कई महीनों तक गांधी की नीतियों का अध्ययन करने और उनके प्रभावों को देखने के बाद मैंने यह समझना शुरू किया कि यदि सशक्त राजनैतिक संगठन हमारे पीछे हो तो उपनिवेशवाद की समस्या हल हो सकती है।" 1957 में घाना को स्वतंत्रता मिलने के बाद अगले साल अकरा में *ऑल अफ़्रीकन पीपल्स कॉनफ्रेन्स* (All African People's Conference) का आयोजन हुआ था। उसके लिए तैयार किए गए अंतरिम कार्यक्रम में लिखा गया, 'दिसम्बर 1958 में अकरा, घाना में होने वाली 'ऑल अफ़्रीकन पीपल्स कॉनफ्रेन्स' का मुख्य उद्देश्य अफ़्रीका की अहिंसक क्रान्ति के लिए गांधी की नीतियों और रणनीति की निश्चित योजना तथा कार्यशैली तय करना है।' (इस वाक्य को बाद में हटा दिया गया था क्योंकि मिस्र के प्रतिनिधि मंडल ने इस बात पर बल दिया कि हर देश को स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह किस राष्ट्र की रणनीति अपनाए) अफ़्रीका में शांति और सुरक्षा के लिए 1960 में आयोजित *पॉजिटिव ऐक्शन कॉन्फ्रेन्स फार पीस एन्ड सिक्योरिटी* (Positive Action Conference for Peace and Security) में बोलते हुए न्क्रूमा का कथन था, "यदि अंतर्राष्ट्रीय विरोध समिति द्वारा किए गए 'डायरेक्ट ऐक्शन' को बड़े पैमाने पर दोहराया जाता या अफ़्रीका के विभिन्न भागों से एक साथ किया जाता तो उसका नतीजा गांधी के ऐतिहासिक नमक सत्याग्रह के समान ही सशक्त और सफल होता। हम महात्मा गांधी को सादर प्रणाम करते हैं और उन्हें श्रद्धापूर्वक याद करते हैं, क्योंकि दक्षिण अफ़्रीका में ही उनका अहिंसा और असहयोग आंदोलन सबसे पहले घोर जातीय भेदभाव के विरूद्ध चलाया गया था। वह दुखी देश आज भी जातीय भेदभाव से ग्रसित है।"

पैट्रिक लुमुम्बा ने अपने देश कॉन्गो की स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर घोषणा की थी, "उपनिवेशवाद के विरुद्ध अपने संघर्ष में अहिंसक कार्यशैली के सिद्धांत के प्रयोग के द्वारा हमने अपनी स्वतंत्रता को अलंकृत किया है। यह महात्मा गांधी का हम पर ऋण है।"

नाइजीरिया के **अमीनो कानो**, जो कट्टर मुस्लिम हैं, की जीवनी के लेखक एलेन फीन्स्टीन के अनुसार "लाखों लोगों को समर्पण के उच्च स्तर तक उठाने में अमीनो कानो ने गांधी की सफलता का विश्लेषण किया और फिर उत्तरी नाइजीरिया में गांधी की अहिंसक तकनीक को अपनाने का प्रयत्न किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें 'नाइजीरिया के गांधी' की संज्ञा दी गई।"

पूर्वी अफ़्रीका

जोमो केन्याटा की जीवनी के लेखक जेरमी मरे ब्राउन ने लिखा है, "केन्याटा भारतीय

नेता से नवम्बर 1931 में मिले, तब गांधी ने केन्याटा की डायरी में ये शब्द लिखे, "सत्य और अहिंसा किसी भी देश को गुलामी से मुक्ति दिला सकते हैं।' केन्याटा ने इस विचार को आत्मसात किया।" दीवान चमन लाल, उनके कानूनी सलाहकार, ने बताया कि जब वे कापेनगुरिया की जेल में केन्याटा से मिले तो केन्याटा "मुझे अपने छोटे से कमरे में ले गए और अपने एकमात्र सूटकेस से वह डायरी निकाली जिसका संचय वे 1931 से बड़ी सावधानी से कर रहे थे और जिसमें महात्मा गांधी ने यह वाक्य लिखा था।" उन्होंने {दीवान चमन लाल ने बताया}, "एक ऐसे आदमी से, जो गांधी के शांति और अहिंसा के सिद्धान्त से जेल में भी चिपका बैठा हो, किसी और प्रकार की हिंसा की आशा ही नहीं की जा सकती है।"

टैंगेनीका के **जूलियस नैरेरे** पर पड़े प्रभाव के बारे में रसैल होय लिखते हैं, "नैरेरे ने कुछ एशियन नेताओं, जिनमें गांधी प्रमुख थे, से प्रभावित होकर टैगेनीका की क्रांति में जाति विरोध लागू करने का प्रयत्न किया; यह कदम एक साहसिक विवेक का कदम था।" अनिल नौरिया नैरेरे के एक बहुत महत्वपूर्ण कथन में गांधी की प्रतिध्वनि देखते हैं, "अफ्रीकी भाइयो, सावधान रहो। शत्रु.... के पास ध्येय के विरोध में कोई दलील नहीं है। उसको एक ही आशा है कि हमें किसी तरह हिंसा के लिए उकसा कर बंदूक का इस्तेमाल कर सके। उसे वह मौका मत दो।"

उत्तरी अफ्रीका एवं पष्चिमी एषिया

सितम्बर 1032 में जब गांधी ने अपना 'आमरण अनषन' आरम्भ किया तो मिस्र की राश्ट्रीय पार्टी डब्लू. ए. एफ़. डी. के प्रधान ने उन्हें काहिरा से 24 सितम्बर को तार भेजा, "'भारतीयों के बीच फूटडालने या जातिभेद के कारण घष्णा फैलाने के इरादे से उठाए गए कदमों को सहन करने के स्थान पर आपने अपने जीवन का बलिदान तक देने का जो निष्चय किया है, उसने पूरे मिस्र देष के निवासियों का हष्दय-मन्थन कर डाला है। मिस्र पिछले दषक से ही भारत के साथ स्वायत्तता और स्वतंत्रता जैसे पवित्र आदर्षों द्वारा जुड़ा रहा है। मिस्र देष और उसके सब निवासियों की ओर से, मैं आप को तथा सारे भारतवासियों को भ्रातष्व्रत प्रेम भेज रहा हूं। साथ ही हार्दिक मनोकामना करता हूं कि विष्व के समक्ष आपके द्वारा रखे गए सत्य, स्वतंत्रता और मानवीय समानता के महान आदर्षों की प्राप्ति निष्चित रुप से हो सके।"

बहुत समय से संस्थापित सत्तावाले तीन उत्तर अफ्रीकी देषों (ट्यूनिसिया, मिस्र व लिबियाद्ध तथा पांच पष्चिम एषियाईदेषों) यमन, बहरेन, ओमान, जॉर्डन व सीरियाद्ध में 2011 के प्रारम्भ में अचानक 'जन-षक्ति' आन्दोलन आरम्भ हुआ। इनकी षुरुआत 17 दिसम्बर 2010 को मुहम्मद बोउआज़िज़ि नामक एक युवा, ग़रीब सब्ज़ी विक्रेता के आत्मदाह के हादसे से हुई।

मुहम्मद के आत्मदाह का कारण था एक गुस्सैल महिला पुलिस द्वारा उसकी बेइज़्ज़ती करना और उसकी गाड़ी को पलटना। आनन-फ़ानन में बहुत समय से सताए व कुचले जा रहे ट्यूनिसिया निवासी हज़ारों की तादात में निहत्थे और निडर षासन में सुधार और बदलाव की मांग लेकर सड़कों पर निकल पड़े। इस विषाल सामूहिक आन्दोलन के दमन में असमर्थ, राश्ट्रपति ज़िने एल एबिदीन बेन अली 14 जनवरी 2011 को सउदी अरब भाग गए और वहां से उन्होंने अपना त्यागपत्र दे दिया। इस तरह उनके 23 साल से चले आ रहे षासन का अंत हुआ। इस विद्रोह नेउपर्युक्त अन्य देषों में उसी तरह की बग़ावत और मांगों को प्रेरित किया।अगले कुछ सप्ताह बाद मिस्र के 'फ़ेरोनिक' राश्ट्रपति होस्नि मुबारक 11 फ़रवरी को अपदस्थ किए गए। उस बग़ावत के प्रभाव से ही सउदी अरब ने अपने प्रायद्वीप रक्षक बल के 1000 सैनिकों की सेना को 13 मार्च को बहरैन भेजा। 200 साल पुरानी अल खलीफ़ाकी रियासत को विनाष से बचाना उसका उद्येष्य था। उसी विद्रोह के असर से यमन के हठी राश्ट्रपति अली अब्दुल्ला सलेह, अपने महल पर आर. पी. जी. द्वारा किए गए हमले के दौरान गम्भीर रुप से घायल हुए और उन्हें इलाज के लिए 4 जून को भाग कर सउदी अरब जाना पड़ा। ओमान और जॉर्डन के विद्रोह, दमन के द्वारा काबू किए गए, पर लिबिया व सीरिया के विद्रोह ने बर्बर गष्ह युद्ध का रुप ले लिया। पहले दो देषों में नाटो संधि के सदस्य देष, बाग़ियों पर लगातार बमबारी करते रहे और बाद वाले दो देषों के षासकों पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिए गए।

काउन्टर करेन्ट्स पत्रिका के 11 फ़रवरी 2011 के अंक में "गांधी ऑन द नाइल" नामक लेख में निरंजन रामकष्ष्णन ने मिस्र की क्रान्ति के बारे में लिखा,"मिस्र की जनता ने अभी एक राजनैतिक स्मारक खड़ा किया है जो उनके प्राचीन षानदार पुरातत्व के पत्थर और चूने-गारे से बनाए गए स्मारकों के बराबर है। उन्होंने षांत, दष्ढ और सौम्य जन-षक्ति का एक अद्वितीय उदाहरण विष्व के सामने प्रस्तुत किया है। पिछले 18 दिनों के संघर्श के दौरान तीन सौ से अधिक लोगों की जानें गई बताई गई हैं। इनमें सारे के सारे लोग विद्रोह करने वाले लोग थे,अत्याचारीषासकों का एक भी आदमी मरने वालों में नहीं था। घोड़ों और ऊटों पर सवार फ़ौजों के हमले का सामना, वे गहरी दष्ढ़ता एवं साहस से करते रहे। उसके जवाब में हज़ारों की तादात में तहरीर स्क्वायर में और लोग षामिल होते गए। आत्मघाती बमवर्शकों के लिए यह क्षेत्र कुख्यात है, उनके स्थान पर इस आन्दोलन की षुरुआत एक व्यक्ति द्वारा की गई आत्महत्या से हुई। लोगों से भरी हुई किसी इमारत पर बम गिराकर विषाल जन समूह को मारने के बजाए, इसकी षुरुआत ट्यूनिसिया में एक व्यक्ति के आत्मदाह से हुई। पावरोटी और मछली की फ़रियाद करने के स्थान पर वे आज़ादी और तानाषाहषासक को हटाने की मांग पर दष्ढ़ता से डटे रहे। इस अदम्य साहस और संयम के द्वारा मिस्र के निवासियों ने एक ऐटम बम से भी बड़ा बम विस्फोट किया है -

उन्होंने उस भ्रम को तोड़ा कि अरब एवं इस्लाम के अनुयाई सत्याग्रह के अयोग्य हैं। मिस्रवासियों ने वह आन्दोलन कर दिखाया जिस पर गांधी को भी गर्व होता। परन्तु ये विजय पूरी तौर से उनकी अपनी है।"

न्यू यॉर्कर नामक पत्र के 2 मई 2011 में प्रकाषित 'द इनर वॉयस :गांधीज़ रियल लिगेसी' लेख में पंकज मिश्र ऐतिहासिक नमक यात्रा के बाद जवाहरलाल नेहरु को उद्धष्त करते हैं, "मैं नहीं जानता कि भविश्य में क्या होगाकृकृकृकृहमारा फीका अस्तित्व एक अद्भुत महानता में विकसित हुआ है।" वे आगे लिखते हैं, "एक व्यक्ति के साहसी व परानुभूत कार्य द्वारा बदलाव लाने का आनन्द अनगिनत लोगों ने महसूस किया है। आज मिस्र और ट्यूनिसिया के युवा वही अलौकिक उल्लास अनुभव कर रहे है, तथा यमन के निवासी कल वही प्रफुल्लता अनुभव करेंगे- सामूहिक सहकारी कर्म की पुनर्जीवित क्षमता वाली षक्ति।यही गांधी की विरासत का सच्चा प्रमाण है।"

यमन और लिबिया को छोड़ कर उपर्युक्त बाकी विद्रोह उन्हीं देषवासियों के दष्ढ़निष्चय और निडरता के द्योतक हैं। सम्भव है कि गांधीवादी विद्वान इनके पीछे जिने षार्प का परोक्ष रुप में योगदान रहा हो। न्यूयॉर्क टाइम्स के 16 फ़रवरी 2011 के अंक में षेरिल स्टोलबर्ग ने लिखा, "कई साल पहले काहिरा में *'इन्टरनेषनलसेन्टर ऑन नॉन-वॉयलेन्ट कॉनफ्लिक्ट'*, ने प्रजातंत्र कर्मियों के लिए एक कार्यषाला आयोजित की थी। इस सेन्टर में जनतंत्र क्रियावादियों को प्रषिक्षण दिया जाता है। उस कार्यषाला में मि. षार्प ने *"198 मेथड्स ऑफ़ नॉन-वॉयलेन्ट ऐक्षन"* षीर्शक से एक लेख सदस्यों के लिए वितरित किया था। कार्यषाला में भाग लेने वाले दलिया ज़िअदा नामक मिस्र के एक क्रियावादी का कथन था कि उसके प्रषिक्षार्थी ट्यूनिसिया और मिस्र के विद्रोहों में बहुत सक्रिय रहे; तथा मि. षार्प के *"तानाषाह की कमज़ोरियों पर आघात करने वाले संदेष ने बहुत प्रभावित किया।"* मि. षार्प ने स्वयं घोशित किया, "यह सब मिस्र देष के लोगों ने किया है, मेरा इसमें कोई भी योगदान नहीं है। यह सारा कुछ गांधी से प्रेरित हुआ है। अगर लोग किसी तानाषाही से भयभीत नहीं होते, तो वह तानाषाही भारी मुसीबत में है।"

पूर्वी एशिया

फिलिपीन्स में 1986 का ई. डी. एस. ए. (EDSA) या 'पीपल्स पॉवर' क्रांति, अहिंसक आन्दोलन की गतिविधियों को विशेष रूप से उजागर करती है। इसीलिए उसको अधिक विस्तार से देखा जा रहा है। मार्कोस की तानाशाही के मुख्य विरोधी की हत्या के कारण उसका आरम्भ हुआ था।

बेनिग्नो एक्विनो ने अपना व्यवसायिक जीवन एक पत्रकार की तरह आरम्भ किया। 22 वर्ष की आयु में अपने शहर कनसेप्सिऑन के मेयर बने और छः साल बाद टार्लेक प्रान्त के गवर्नर बन गए। 1967 में फिलिपीन्स के सबसे कम आयु के सिनेटर बने। 1973 में जब राष्ट्रपति मार्कोस को, दो साल के सत्र की समाप्ति पर पद त्याग करना था, बेनिग्नो ने राष्ट्रपति पद के चुनाव में खड़े होने का निश्चय किया। पद त्यागने की जगह मार्कोस ने देश में मार्शल लॉ लागू कर दिया, साथ ही संविधान स्थगित कर सारे राजनैतिक विरोधियों को जेल में डाल दिया। बेनिग्नो पर देशद्रोह और कत्ल का आरोप मढ़ा गया। एक सैनिक अदालत में उन पर मुकदमा चला कर मृत्यु की सज़ा सुना दी गई। बाद में उसे आजीवन कारावास में बदल दिया गया। जेल में सात साल बिताने के बाद उन्हें दिल के आपरेशन के लिए अमेरिका जाने की अनुमति दे दी गई। आपरेशन के बाद यद्यपि वे वहां सदा के लिए निवास कर सकते थे, फिर भी उन्होंने स्वदेश लौटने का निश्चय किया, हालांकि उनके जीवन को वहां गम्भीर खतरा था जिसका आभास उनके परिवार और मित्रों को था। 21 अगस्त 1983 को मनीला पहुंचने के बाद वायुयान से उतर कर टर्मिनल को जाते समय उनकी हत्या कर दी गई। स्वदेश वापसी के बाद का उनका व्याख्यान पढ़ा नहीं जा सका। वह एक बहुत ही महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है जिसमें लिखा है, "मैं स्वेच्छा से वापस आया हूं, केवल इसलिए कि मैं अहिंसा के द्वारा, अपने अधिकार पुनः पाने के लिए जो मेरे साथी संघर्ष कर रहे हैं, उनके साथ मिल कर संघर्ष कर सकूं। मैं अमेरिका में राजनैतिक शरण ले सकता था, पर मैं महसूस करता हूं कि संकट की घड़ी में मेरे साथ हर फिलिपीनो का कर्तव्य है कि वह अपने देशवासियों के साथ मिल कर संकट का सामना करे। गांधी के अनुसार निर्दोष व्यक्तियों का स्वैच्छिक बलिदान अमानुषिक अत्याचार का इतना सशक्त उत्तर है कि इससे बेहतर उत्तर की कोई मनुष्य क्या, ईश्वर तक कल्पना नहीं कर सकता।"

उनकी हत्या के बाद उनकी पत्नी **कोराजन एक्विनो** मनीला लौटी। अगले कुछ महीनों में उन्होंने विभक्त विरोधी दल को संयोजित किया और मार्कोस के मार्शल लॉ वाले शासन के अत्याचारों और अन्याय के विरुद्ध एक जन-आन्दोलन का साहसपूर्वक नेतृत्व किया। 1985 के उत्तरार्ध में जब मार्कोस को विश्वास हो गया था कि वह जीत जाएगा, बेनिग्नो का प्रभाव समाप्त हो चुका है और अपने फिलिपीनो और अमेरिकी आलोचकों का मुंह बन्द कर सकता है तब उसने अचानक चुनाव करवाने की घोषणा कर दी। दस लाख हस्ताक्षर-युक्त पत्र के समर्थन के कारण कोराजन ने भी राष्ट्रपति पद के लिए अपना नामांकन दिया। पूर्व सिनेटर सेल्वेडोर लॉरेल राष्ट्रपति पद के लिए एक दावेदार थे, पर कार्डिनल सिन के कहने पर उनके साथ उप-राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने को तैयार हो गए। राजनैतिक अनुभव बिल्कुल न होते हुए भी कोराजन एक करिश्माई नेता और कुशल अभियानकर्ता साबित हुईं। उसके अनेक विवेकपूर्ण कदमों में से एक 'निष्पक्ष

चुनावों के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन' (NAMFREL) का पुनर्गठन था, जिसके जरिए चुनाव प्रक्रिया पर पूरी नजर रखी जा सके। देश भर के पादरी और नन उसके मुख्य स्वयं-सेवक बने। मार्कोस के समर्थकों के बहुमत वाली नेशनल एसेम्बली ने मार्कोस को अवैध रूप से विजयी घोषित कर दिया, जबकि नैमफ्रेल की गणना के अनुसार एक्विनो-लॉरेल के पक्ष में अधिक वोट पड़े थे। इस अन्याय के विरूद्ध अहिंसक विरोध और सविनय अवज्ञा का राष्ट्रव्यापी आन्दोलन कैथोलिक चर्च के समर्थन से छेड़ा गया जिसका अप्रत्याशित स्वागत हुआ। 22 फ़रवरी को जनरल फीडल रेमोस, फिलिपीन्स कॉन्स्टेबलरी के प्रमुख ने मार्कोस को त्यागपत्र देने को कहा। मार्कोस ने सेना को रेमोस को रोकने के आदेश दिए, परन्तु कार्डिनल सिन ने चर्च, द्वारा चलाए जा रहे रेडियो-वेरिटास पर जनता से अपील की कि रेमोस के कैम्प ऐग्विनाल्डो की ओर बढ़ती हुई मार्कोस समर्थक सेना को अहिंसक तरीकों से रोका जाए। पादरी, नन और स्कूल के बच्चों सहित हजारों व्यक्तियों ने सड़कों पर हाथ से हाथ बांधे टैंकों के चारों ओर घेराबन्दी कर ली। इस अभूतपूर्व शक्तिशाली विरोध को देखते हुए अनेक टैंक और सात हेलिकॉप्टर चालक दल बदल कर जनता के साथ हो लिए।

यद्यपि मार्कोस ने 25 फ़रवरी 1986 को अपना औपचारिक उद्घाटन किया, परन्तु विदेशी राजदूतों और उसके विश्वस्त सैनिकों द्वारा बहिष्कार से उसे स्पष्ट आभास हो गया था कि उसने देशी और विदेशी, विशेषकर अमेरिका का, समर्थन पूरी तरह से खो दिया है। अतः वह अपना त्यागपत्र देकर उसी दिन देश से बाहर चला गया। एक घंटे बाद कोराजन एक्किनो ने फ़िलिपीन्स की राष्ट्रपति और सेल्वेड़ोर लॉरेल ने उप-राष्ट्रपति पद की शपथ ग्रहण की। इस प्रकार कोराजन एक्किनो एशिया और ई.डी.एस.ए. की सबसे पहली महिला राष्ट्र-प्रमुख बनीं, जिन्होंने अहिंसक संघर्ष का इतने साहस से और प्रभावशाली ढ़ंग से नेतृत्व किया। यह संसार का पहला 'पीपल्स-पावर रिवोल्यूशन' था जिसका नेतृत्व एक महिला ने किया।

राष्ट्रपति बनते ही कोराजन एक्किनो ने एक नया संविधान लागू किया जिसमें राष्ट्रपति के अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाया और दो सदन वाले विधान मंडल की स्थापना की। सामाजिक स्वतंत्रता, मानवीय अधिकारों और घुसपैठियों तथा पृथकतावादी लोगों से संवाद के पक्ष पर बल देने वाली नीतियां बनाईं। इस कार्य के दौरान उन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा जिनमें नौ बार उनके विरूद्ध विद्रोह के प्रयत्न किए गए। 1992 में उन्होंने अपना छः वर्ष का कार्यकाल

सफलतापूर्वक पूरा किया। केवल 30 महीनों में ई.डी.एस.ए. ने सिर्फ एक अमूल्य जीवन का बलिदान देकर अत्यधिक रूढ़िवादी समुदायों सहित, जिसमें चर्च और सेना भी शामिल हैं, सम्पूर्ण देश को प्रेरित करने में सफलता पाई। यदि मार्कोस के साम्राज्य के पतन के प्रयास के लिए हिंसा का प्रयोग होता तो सैकड़ों लोगों की जान जाती और फिर भी सफलता का कोई भरोसा नहीं होता। इस तरह ई.डी.एस.ए. ने गांधी के अपरिवर्तनीय सिद्धान्त-वाक्य की सार्थकता पुनः स्थापित कर के दिखा दी कि 'लोगों पर शासन तभी तक संभव है जब तक वे चेतन या अचेतन अवस्था में शासित होना स्वीकारते हैं।' जब यह स्वीकृति अस्वीकार हो जाती है तो फर्डिनेन्ड मार्कोस जैसा गहरी जड़ों वाले व्यक्ति का साम्राज्य भी रातों-रात अपनी सारी शक्ति और आधिपत्य खो बैठता है।

दक्षिण एशिया

पाकिस्तान की 'ब्लैक कोट क्रान्ति'

2007-2008 में पाकिस्तान में एक अजीबोग़रीब घटना घटी, जिसमें वकीलों के कष्तसंकल्प, अहिंसक संघर्श के द्वारा मुख्य न्यायाधीष इफ़्तिख़ार मुहम्मद चौधरी को पुनः पदासीन करवाया गया। मुख्य न्यायाधीष को राश्ट्रपति मुषर्रफ़ ने 9 मार्च 2007 को भ्रश्टाचार के आरोप में हठधर्मी से निलम्बित कर दिया था। 12 मार्च को वकीलों ने इस निलम्बन के ख़िलाफ़ विरोध प्रकट करते हुए अदालतों में काम करना बन्द कर दिया।साथ ही उन लोगों ने इस्लामाबाद, लाहौर, करांची और क्वेटा में रैलियां निकालीं। एक मुख्य वकील, बाबर सत्तार ने घोशणा की,"हम एक वकील की तरह काम कैसे कर सकते हैं जब कि एक जनरल का कहा षब्द ही कानून बन जाता है?" यह सवाल पूछने का दुस्साहस करने के आरोप में उन्हें तथा अन्य अनेक वकीलों को बन्दी बना कर यातनाएं दी गईं। परन्तु रैलियों के ज़रिए विरोध प्रदर्षनजारी रहा। रैलियों का आग़ाज़ फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की इन प्रेरणादायक पंक्तियों से किया जाता था-

"ये बेड़ियां, ये हमारी गर्दनों से बंधा वज़न
मुलायम रुई बन जाएगा और हवा मेंग़ायब हो जाएगा
और तब ये आम आदमी अपना हक़ मांगेगा
उस ज़मीं पर जो हमारी अपनी है।
तब ज़ालिम हुक्मरान हार मानेंगे
हम आम इन्सानों से।"

6 अक्तूबर को पार्लियामेन्ट स्थगित होने से पहले राश्ट्रपति मुषर्रफ पुराने सदस्यों के समर्थन से दुबारा चुने गए। उनके विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट के एक पूर्व जज जस्टिस वजिहुद्दीन अहमद खड़े हुए थे जिन्हें सुप्रीम कोर्ट वकील संगठन ने समर्थन दिया था। उन्हे सिर्फ़ 8 वोट मिले जब कि मुषर्रफ़ के पक्ष में 671 वोट पड़े। पर यह स्पश्ट था कि वकील लोग मुषर्रफ़ के षासन का विरोध करते रहेंगे।

राश्ट्रपति के चुनाव में अपनी इतनी भारी जीत के बावजूद मुषर्रफ़ ने 3 नवम्बर को 'आपात काल' की घोशणा कर दी। संविधान को निलम्बित कर 8 जनवरी 2008 को होने वाले आम चुनावों को अनन्त काल के लिए स्थगित कर दिया।मुख्य न्यायाधीष व सुप्रीम कोर्ट के अन्य जजों को बर्खास्त कर जेल में डाल दिया गया। इन घटनाओं के विरुद्ध अन्तर्राश्ट्रीय आक्रोष और निंदा के दबाव से मुषर्रफ़ को चुनाव कराने का ऐलान करना पड़ा। 18 फ़रवरी 2008 को हुए इन चुनावों में पाकिस्तान पीपल्स पार्टी और पाकिस्तान मुस्लिम लीग (एन) को बहुमत मिला और मिलीजुली सरकार का गठन हुआ, जिसके तहत यूसुफ़ रज़ा गिलानी प्रधान मंत्री बने। 7 अगस्त को सरकार के साहसिक निर्णय के तहत राश्ट्रपति मुषर्रफ को पद छोडने या महाभियोग का सामना करने का विकल्प दिया गया। षुरु में उन्होंने यह कह कर अस्वीकार किया,''मुझे मजबूर करने वालों को मैं हरा दूंगा।'' परन्तु 18 अगस्त 2008 को राश्ट्रपति के अपने रिकॉर्ड का जोषीला बचाव करते हुए उन्होंने पद छोड़ने और 'मक्का की तीर्थ यात्रा पर जाने' का फ़ैसला सुनाया।

17 साल चला यह अहिंसक संघर्श को, जिसमें सारे लक्ष्य पूरे हुए,'पीपल्स पॉवर' षब्दकोश में *'ब्लैक कोट क्रान्ति'* के नाम से दर्ज किया गया है।

पाकिस्तान सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएषन के अध्यक्ष, केम्ब्रिज में षिक्षित ऐतज़ाज़ एहसान ने मुख्यतः इस देषव्यापी संघर्श को प्रेरणा और नेतष्त्व दोनों दिया। उनके अनुसार इस आन्दोलन के दौरान प्रजातंत्र को दुबारा स्थापित करने और उग्रवादी ताक़तों को हराने के लिए वकीलों, न्यायपालिका और राजनैतिक पार्टियों का एक नया षानदारगठबंधन बना है। उन्होंने घोशणा की, ''आतंकवाद के ख़िलाफ़ जंग के हथियार वो अवाम है जिसे यक़ीन है कि कोई भी इन्सान अपनी ख़्वाहिष को ज़बरदस्ती उन पर थोप नहीं सकता है।''

पाकिस्तान में आम आदमी चाहे आज गांधी के बारे में जानता न होया इज़्ज़त न करता हो। लेकिन उनकी हत्या के बाद पाकिस्तान टाइम्स ने अपने संपादकीय लेख में 'ग्लोरियस डस्ट' नामक षीर्शक से लिखा, ''भारत की जनता और अप्रत्यक्ष रुप से पाकिस्तान के अवाम दोनों ने बहुत कुछ खोया है। सबसे बड़ा नुकसान हुआ है गांधी को खो कर, क्योंकि वे दोनों में दोस्ती कराने की कोषिष कर रहे थे। हम उम्मीद करते हैं कि उन नफ़रत के दरिन्दों को इस बेषकीमती कुरबानी से आख़िरकार तसल्ली मिलेगी, उस इन्सान की मौत बाकी करोड़ों जानों की हिफ़ाज़त करेगी जिनके लिए उसने अपनी जान दी। ख़िलाफ़त के दिनों में गांधी के झन्डे तले हिन्दू और मुस्लिमों ने आज़ादी के लिए बराबर से ख़ून बहाया था; हम उम्मीद करते हैं कि उनकी सुनहरी मिट्टी पर दोनों कौमें मिल कर आंसू बहाएं और अहद लें कि भारत और पाकिस्तान के मुख़तलिफ़ परचमों तले अपनी आज़ादी को अमन से बरकरार रखेंगे।''

मिआमार (बर्मा) की आउंग सान सूउ

आउंग सान सूउ काइ ने गांधी के सिद्धान्त वाक्यों को प्रेरणात्मक मूर्तरुप दिया है जैसे कि ''डरने वाला व्यक्ति असफल होता है'' तथा ''बल, षारीरिक क्षमता से नहीं, बल्कि अदम्य इच्छाषक्ति से मिलता है''। बर्मा के षहीद हुए राश्ट्रीय नायक जनरल आउंग सान की पुत्री सूउ काइ का बचपन रंगून में बीता। उनकी माता के भारत मे राजदूत नियुक्त होने के बाद वे उनके साथ दिल्ली आकर लेडी श्रीराम कॉलेज में अध्ययन में लग गईं। बाद में उन्होंने ऑक्सफ़ोर्ड और लन्दन के स्कूल ऑफ़ ओरिएन्टल एन्ड अफ़्रीकन स्टडीज़ में षिक्षा पाई, जहां माइकल एरिस नामक एक ब्रिटिष विद्वान से उनकी मुलाकात हुई जिनका विशय तिब्बत था। 1972 में उन्होंने माइकल से विवाह किया तथा लन्दन में रहने लगीं। मार्च 1988 में अपनी बीमार माता की सेवा-टहल के लिए वे बर्मा लौट आईं।2 मार्च 1962 की बग़ावत के बाद से षासन कर रहे जनरल ने विन ने 23 जुलाई 1988 को पद त्यागने का ऐलान कर दिया और कहा कि देष के भविश्य के बारे में जल्दी ही जनमत कराया जाएगा। इस ऐलान की वजह से देष भर में उल्लास की लहर दौड़ गई और 8 अगस्त 1988 को जनतंत्र के समर्थन में एक विषाल आयोजित की गई। 8-8-88 एक षुभ दिन माना जाता है। 26 अगस्त की ष्वेदेगॉन पगोडा के समीप सूउ काइ ने प्रजातंत्र का अपना आवाहन दोहराया और उसके तुरन्त बाद नेषनल लीग फ़ॉर डिमोक्रेसी की स्थापना की। अगले 12 महीनों में वे पूरे देष की यात्रा करती रहीं तथा आम जनता को एक ''अनुषासित ढंग से एक होकरप्रजातंत्र स्थापित करने के लक्ष्य'' की ओर बढ़ते जाने के लिए प्रेरित

करती रहीं। जन-साधारण पर उनके बढ़ते प्रभाव से घबरा कर, नए मिलिटरीप्रषासक जनरल सा मुआंग ने उन्हें 29 जुलाई 1889 को नज़रबन्द कर दिया और किसी भी राजनैतिक कार्य करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।उसके बावजूद 27 मई 1990 को हुए राश्ट्रीय चुनावों में एन. एल.डी. को 59 प्रतिषत वोट और 485 में से 392 सीटें प्राप्त हुए। इस अद्भुत जीत से प्रषासक गुट घबरा गया।उसने चुनावों के नतीजे रद्द घोशित कर, मार्षल लॉ लागू कर प्रषासन जारी रखा।

पिछले 22 सालों में लगभग 19 साल तक उन्हें नज़रबन्द रखा गया। उत्तरी बर्मा की यात्रा के दौरान प्रषासन गुट द्वारा भेजे गए गुन्डों के हाथों दो बार वे मरते मरते बची। जब कैंसर से पीड़ित उनके पति लन्दन में आख़िरी सांसे ले रहे थे, उस समय भी सूउ काइ ने दुखी हो कर देष छोड़ के जाना अस्वीकार कर दिया। प्रषासन ने उन्हें स्वतंत्र कर देने का प्रलोभन दिया सदि वे देष छोड़ के जाने को तैयार हों, पर उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया।

महात्मा गांधी से वे अत्यधिक प्रभावित थीं। इसकी एक झलक उनके एक संदेष से मिलती है जो उन्होंने पंचगनी, भारत में 1 जनवरी 1997 को अन्तर्राश्ट्रीय युवक सम्मेलन के अवसर पर दिया था। वे कहती हैं,''जैसा कि गांधी ने लिखा 'ऐसी कोई स्वतंत्र सरकार नहीं है जो आम जनता के करने योग्य कुछ भी न छोड़े।' हालांकि ये बात 1925 में लिखी गई थी, पर सैनिक तानाषाही प्रषासन के अधीन आज के बर्मा में अब भी लागू होती है। यह वो प्रषासन है जो अपनी ही सरकार में आम लोगों को किसी तरह की भूमिका निभाने नहीं देता है। उन्चास सालों से स्वतंत्र होते हुए भी हम बन्धक ही हैं। अगर हमारा दिमाग़ और आत्मा आज़ाद नहीं है तो वो असली आज़ादी नहीं है। जो प्रषासन आम लोगों को प्रताड़ित और भयभीत रखता हो, जिनका अपने ही भाग्य पर कोई वष न हो, उसका आज़ादी के लिए लड़ना एक छलावा है, जिस लड़ाई में बहुत से इन्सानों ने क़ुरबानी दी है।''

1990 के सखारोव प्राइज़ फ़ॉर फ़्रीडम ऑफ़ थॉट को स्वीकार करते समय उनके भाशण को उनके पुत्र एलेक्ज़ेन्डर ने पढ़ा था। उनका कहना था,''भ्रश्टाचार सत्ता से नहीं, डर के कारण होता है। सत्ता हाथ से निकल जाने का भय प्रषासक को भ्रश्ट बनाता है, और प्रषासक की चाबुक का डर उसे सहने वालों को भ्रश्ट बनाता है।उन्हें 1991 के लिए नोबल षांति पुरस्कार प्रदान करते समय कमेटी का कथन था, ''सूउ काइ का संघर्श, हाल के दषकों में एषिया में सामाजिक साहस का सबसे अद्वितीय उदाहरण है। वे पूरे विष्व में उन प्रताड़ित लोगों के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीक बन गई हैं जो प्रजातंत्र, मानव अधिकार तथा जातिगत समन्वय के प्रति षांतिपूर्ण संघर्श कर रहे हैं।''

1975 स्टेट प्रोटेक्षन ऐक्ट के अधीन लम्बी अवधि तक नज़रबन्दी के दौरान केवल दो महिला सेविकाओं के साथ रहते हुए मनन चिंतन, अध्ययन और लेखन के अलावा वे अपने पुराने पारिवारिक पियानो वादन में व्यस्त रहीं। उनके दो पुत्र लन्दन में रहते हैं। प्रषासन द्वारा उनको नज़रबन्द किए जाने की वजह यह बताई गई कि ''वे देष की सामाजिक षांति तथा स्थिरता पर बुरा असर डाल सकती हैं।'' 22 सितम्बर 2007 को मानव अधि ाकारों के लिए प्रदर्षन कर रहे बौद्ध भिक्षुओं का अभिवादन करने कुछ समय के लिए वे अपने निवास से बाहर निकलीं। अगले दिन उनको इस 'अपराध' के लिए सात दिनों के लिए इन्सेइनजेल में बन्दी बना दिया गया। मई 2008 में चक्रवात नरगिस के प्रकोप के दौरान उनके घर की बिजली आपूर्ति बिगड़ गई, जिसके कारण कई महीनों तक उन्हें मोमबत्ती के सहारे रातें बितानी पड़ीं। इतनी तकलीफ़ें सहन करने के बावजूद 13 नवम्बर 2008 को नज़रबन्दी से रिहाई के समय, वे अपने समर्थकों से एक भव्य मुस्कान के साथ मिलीं और एक सच्चे गांधीवादी के अन्दाज़ में उन्होंने कहा, ''जिन्होंने मुझे नज़रबन्द रखो, मुझे उनसे कोई गिला-षिकवा नहीं है। सुरक्षा अधिकारियों ने मेरे साथ अच्छा व्यवहार किया। मैं चाहती हूं कि प्रषासन भी जनता से अच्छा व्यवहार करे।''

उसके तुरन्त बाद बी.बी.सी. के साथ एक इन्टरव्यू में उन्होंने प्रषासन के साथ जल्द बातचीत होने की आषा जताई। ''मेरे विचार से हमें आमने सामने बैठ कर विचार-विनिमय करना चाहिए, चाहे हम असहमति पर सहमत हों.... अथवा आपसी असहमति की वजहों को सुलझाने की कोषिष करनी चाहिए।'' उन्होंने यह स्पश्ट कह दिया कि 7 नवम्बर 2007 के दिखावे के लिए हुए राश्ट्रीय चुनावों में एन.एल.डी. के भाग लेने को मना करने के कारण, प्रषासन के पाबन्दी लगाने के बावजूद,आज़ादी और प्रजातंत्र की हमारी लड़ाई में 'नेषनल लीग फ़ॉर डिमॉक्रेसी'' अर्थात एन.एल.डी. ही मुख्य भूमिका निबाहेगी। जब उनसे पूछा गया कि प्रजातंत्र की स्थापना कब तक होगी, तो उनका उत्तर था, ''हम जल्द से जल्द उसे लागू करने की कोषिष कर रहे हैं, पर मैं नहीं कह सकती कि उसमें कितना समय लगेगा।''

Suu Kyi, waves to supporters soon after her release

बी.बी.सी. पर दिए गए रीथ भाशण में, ट्यूनिसिया और मिस्र में घटी घटनाओं का ज़िक्र करते हुए उन्होंने कहा, ''क्या हम वहां के लोगों से ईर्श्या

करते हैं? हां, हम इतने षीघ्र और षांतिपूर्ण परिवर्तन की उनकी उपलब्धि पर ईर्श्या ज़रुर करते हैं। परन्तु ईर्श्या से अधिक हमारे भीतर अपने लक्ष्य के लिए एक नई वचनबद्धता और एकता की भावना है। सब महिलाओं और पुरुशों की मानवीय गरिमा और आज़ादी ही हमारा लक्ष्य है।''

अहिंसक संघर्श के निन्दक, आज़ादी और प्रजातंत्र प्राप्ति के लिए सूउ काइ के लम्बी अवधि से चल रहे, पर अभी तक विफल प्रयासों की आलोचना करते हैं। ऐसे लोगों को अफ़गानिस्तान का उदाहरण देना चाहिए, जहां अमेरिका और अन्य नाटो सदस्य देषों के एक लाख से अधिक सैनिक, आधुनिकतम हथियारों से लैस पिछले एक दषक से उन अफ़गान विद्रोहियों से लड़ रहे हैं जिनके पास कहीं ज़्यादा घटिया हथियार हैं। फिर भी वे उस देष को 'संतुश्ट' नहीं कर पाए हैं। अब वे दुबारा उसी राज्य पर राज करना चाहते हैं जिसका तख़्ता उन्होंने पहले पलटाया था। इस बीच हज़ारों अफ़गान लोग मारे जा चुके हैं और उनके घर पूरी तरह बरबाद हो चुके हैं। इनमें अधिकांष आम नागरिक हैं। बर्मा में अनेक लोग गिरफ़्तार किए गए हैं और बहुत से लोग तकलीफ़ सहन कर रहे हैं, पर मरे कम ही लोग हैं। जब भी बर्मा आज़ाद होगा और प्रजातंत्र स्थापित होगा, तो अफ़गानिस्तान से बहुत फ़र्क होगा। बर्मा की आगामी सफलता का सारा श्रेय उसकी अकेली, निडर, दुबली-पतली प्रेरणादायक महिला नेता को जाएगा।

पूर्वी यूरोप

1956 में हंगरी में और 1968 में चेकोस्लोवाकिया में जन-शक्ति अर्थात पीपल्स पॉवर आन्दोलन का उत्सर्ग हुआ तथा उसे कुछ हद तक सफलता भी मिली जैसे 'द प्राग स्प्रिंग' उसका एक उदाहरण है। परन्तु सुनियोजित राष्ट्रीय रणनीति और संगठन की अनुपस्थिति के कारण उन्हें बेरहमी से कुचल दिया गया। पूर्वी यूरोप की पहली सफल अहिंसक क्रांति का श्रेय **लेक वालेसा** और उनके साथी, गंदास्क में 'लेनिन शिपयार्ड' के गोदी कर्मचारियों, को जाता है। सेना में दो साल काम करने के बाद और कारपोरल के पद तक पंहुचने के बाद 1967 में वालेसा ने 'लेनिन शिपयार्ड' में एक बिजली-मिस्त्री की तरह काम करना शुरू किया। 1976 में उन्हें श्रमिकों के पक्ष में कार्य करने की वजह से नौकरी से निकाल दिया गया। तब उन्होंने पोलैन्ड के अनेक शिपयार्डों में गैर-साम्यवादी मजदूर यूनियनों का गठन करना आरम्भ किया। इस दौरान सुरक्षा-कर्मी उन पर सदैव कड़ी नजर रखते रहे और उन्हें समय समय पर नजरबन्द भी किया गया। अगस्त 1980 में वे 'लेनिन शिपयार्ड' में हड़ताल करवाने में सफल हो गए जिसके कारण पोलैन्ड के अन्य शिपयार्डों में भी हड़ताल शुरू हो गई। मजदूरों के मौलिक अधिकार उनकी प्राथमिक मांग थी। 31

अगस्त 1980 को 'गदांस्क समझौते' के द्वारा ये अधिकार उनको दिए गए तथा इनके अलावा स्वतंत्र यूनियन गठित करने का अधिकार भी उन्हें मिला। उसके तुरन्त बाद उन्होंने एक आन्दोलन आरम्भ किया जिसे 'सालिडैरिटी मूवमेंट' (Solidarity Movement) के नाम से भी जाना जाता है। इस आन्दोलन के तहत प्रत्यक्ष रूप में कामगारों को नये मिले अधिकारों को सुनिश्चित करने का लक्ष्य था पर वास्तव में लक्ष्य अहिंसक रूप से साम्यवादी तानाशाही तथा पोलैन्ड पर सोवियत आधिपत्य का विरोध करना था। जल्दी ही यह आन्दोलन एक राष्ट्रीय संगठन में परिणत हो गया जिसकी 38 क्षेत्रीय शाखाएं थीं। कैथोलिक चर्च ने भी वालेसा के प्रयत्नों का समर्थन किया। वे स्वयं भी एक पक्के कैथोलिक थे। जनवरी 1981 में जान पॉल II ने उन्हें वैटिकन में बुलाया। 1980–81 में 'इंटरनेशनल लेबर ऑर्गेनाइजेशन' के अतिथि के तौर पर उन्होंने इटली, जापान, स्वीडेन, फ्रांस और स्विटजरलैंड की यात्रा की। सितम्बर 1981 में गदांस्क में आयोजित प्रथम राष्ट्रीय कांग्रेस में वे 'एकता प्रमुख' अर्थात, सॉलिडैरिटी के चेयरमैन चुने गए।

जनरल वोइचेक येरुजस्की की सोवियत समर्थक पोलिश सरकार को 'सॉलिडैरिटी मूवमेंट' की प्रभावशाली प्रगति और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति से चिन्ता होने लगी। अतः उन्होंने देश में मार्शल लॉ लागू करके उस पर प्रतिबन्ध लगाने का यत्न किया। दिसम्बर 1981 में 'सॉलिडैरिटी मूवमेंट' पर पूरा प्रतिबन्ध लगाकार वालेसा समेत अधिकांश नेताओं को बन्दी बना लिया गया। हालांकि जुलाई 1983 में मार्शल लॉ हटा लिया गया था पर 'सॉलिडैरिटी' की अधिकांश गतिविधियों पर प्रतिबन्ध जारी रहे। अक्तूबर 1983 में लेक वालेसा को नोबल पुरस्कार दिए जाने के बाद 'सॉलिडैरिटी' सदस्यों में पुनः स्फूर्ति जागृत हुई और उनके प्रतिरोध को शक्ति मिली। इसके फलस्वरूप देश में गहरी आर्थिक गिरावट आ गई जिसके कारण येरुजल्स्की सरकार को 'सॉलिडैरिटी' की गतिविधियों पर से रोक हटानी पड़ी तथा देश में चुनाव कराने के लिए बाध्य होना पड़ा। 1989 में हुए चुनावों के बाद पोलैन्ड में पहला गैर-साम्यवादी प्रधानमंत्री बना और दूसरे विश्व युद्ध के बाद से पूर्वी यूरोप पर स्टालिन द्वारा थोपे गए साम्यवादी शासन के औपचारिक अन्त की शुरूआत हुई। मिखाइल गोर्बाचोव के नेतृत्व में सोवियत यूनियन अपने अनेक राज्यों में सैन्य शक्ति के बल पर साम्यवादी पार्टी का शासन कायम रखने को तैयार नहीं था। अप्रैल 1990 में 'सॉलिडैरिटी' की दूसरी राष्ट्रीय कांग्रेस में वालेसा 77.5 प्रतिशत वोटों से चेयरमैन चुने गए और उसके बाद दिसम्बर 1990 में पोलैन्ड के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

पूर्वी यूरोप की इससे पूर्व की असफल क्रांतियों पर टिप्पणी करते हुए वालेसा का कथन था, "हमें तब सफलता नहीं मिली जब हमने अस्त्रों से लड़ने की कोशिश की, पर हमें विजय तब हासिल हुई जब हमने अहिंसा का रास्ता अपनाया। मैं महात्मा गांधी का शिष्य हूं।"

पॉप जॉन पॉल II, जो स्वयं पोलिश है, से प्रेरणा और नैतिक समर्थन मिलने पर लेक

वालेसा का कथन था, "धर्म-पिता ने हमें याद दिलाया कि हम कितने अधिक हैं और हमें निर्भीक बने रहने को कहा।" संघर्ष के दौरान अनेक पोलिश कारखानों की दीवारों पर उनके और 'वर्जिन मेरी' के चित्र साथ-साथ लगे हुए देखे जाते थे।

पोलैन्ड में 'सॉलिडैरिटी' के सफल अहिंसक संघर्ष के कारण, अन्य पूर्वी यूरोप के देशों, बाल्टिक राज्यों और कालान्तर में सोवियत रूस के विघटन की वजह से पैदा हुए स्वतंत्र राज्यों में उसी तरह के संघर्षो का आरम्भ हुआ। 1989 से 2004 के बीच सारे पूर्वी यूरोप में साम्यवादी तानाशाही समाप्त हो गई। अधिकारिक फासिस्ट-विरोधी सुरक्षा दीवार यानी 'बर्लिन दीवार' गिराई गई, एस्टोनिया, लाटविया, लिथुआनिया, जर्मन जनतांत्रिक गणराज्य, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, बल्गारिया, रोमानिया, रूस, सर्बिया-जार्जिया और यूक्रेन में गणतंत्र स्थापित हुआ। इसके अतिरिक्त दोनों जर्मनी दुबारा से संयुक्त जर्मनी बन गए। 24 नवम्बर 1990 को वार्सा पैक्ट रद्द कर दिया गया उसके अनेक पूर्व सदस्य देश यूरोपीय संघ (European Union) में सम्मिलित हो गए।

गांधी की मृत्यु के साठ साल के अंदर ही 130 से अधिक देशों ने अपने को उपनिवेशवाद से मुक्ति दिला दी तथा 20 से अधिक देशों ने दमनकारी जातीय और फासिस्ट शासकों से अहिंसक तरीके से छुटकारा पाया। यह पूरा प्रकरण इतिहास में अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक भूगोल का सबसे गतिमान प्रजातंत्रीकरण है।

पष्चिम यूरोप

मार्टिन बूबर की निष्चित राय है औरबहुत से लोग भी मानते हैं कि हिटलर जैसे "क्रूर दमनकारी" के ख़िलाफ, अहिंसक विरोध कभी भी सफल नहीं हो सकता था। न्यू यॉर्कर के २ मई २०१० के अंक में पंकज मिश्रा का कथन है,"योरप के यहूदियों को हिटलर के ख़िलाफ़ अहिंसक विरोध का इस्तेमाल करने की सलाह देकर गांधी ने जर्मन राज्य को समझने में भयंकर भूल की थी।" उस कथन के एकदम विपरीत योहन गाल्टुंग लिखते हैं," यह सवाल अकसर उठता है कि 'क्या सत्याग्रह हिटलर के विरूद्ध कारगर होता?' इसका जवाब है, 'हां' और वास्तव में

वह कारगर सिद्ध हुआ। योहान गाल्टुंग लिखते हैं "यह पूर्णतया अद्भुत घटना लगती है कि गेस्टापो के विरूद्ध मार्च 1943 में यहूदियों के समर्थन में वास्तव में एक प्रदर्शन हुआ और सफल भी हुआ। वह भी उस समय में जब कि युद्ध और आतंक अपने चरम पर था, वह भी बर्लिन में, जो कि हिटलर के नाजी राज का केन्द्र था।" नाथन स्टोल्टफस ने विस्तार से इस प्रकरण को देखा और वर्णन किया है कि फरवरी 1943 में गेस्टापो ने करीब 10,000 यहूदियों को गिरफ्तार कर लिया जो तब तक बर्लिन में थे। इनमें से लगभग 8,000 को जल्दी से आउशवित्ज ले जाया गया। उसके बाद उनका कुछ पता ही नहीं चला। बाकी 2000 यहूदियों की जर्मन पत्नियां थीं, उनको रोजनस्ट्रास एवेन्यू में 'कलेक्शन सेन्टर' में रोक लिया गया। कैदी बनाए गए पतियों की पत्नियों को जैसे ही पता लगा, वे 'कलेक्शन सेन्टर' पहुंचीं और नारे लगाने शुरू किये 'हमें हमारे पति वापस लौटाओ।' अगले सात दिनों तक उनकी संख्या बढ़ती गई और महिलाओं तथा गेस्टापो अधिकारियों के बीच झड़प बढ़ती गई। अधिकारियों ने धमका भी दिया कि यदि वे वापस नहीं गईं तो गोलीबारी भी हो सकती है। महिलाएं डटी रहीं और नारेबाजी जारी रही। आठवें दिन उनके पतियों को रिहा कर दिया गया, तब उन्होंने राहत की सांस ली। यह विजय केवल सात दिनों के रोजनस्ट्रास के विरोध पर नहीं थी बल्कि उनके पिछले 10 साल के संघर्ष की भी थी, जिसमें नाजी अधिकारियों

बर्लिन में रोजेनस्ट्रासे स्मारक

द्वारा अपने 'अनार्य पतियों' को तलाक देने के लिए दबाव डाला जा रहा था। नाथन स्टोल्टफस ने कुछ संबधित नाज़ी अधिकारियों से पूछा कि अकस्मात इन यहूदियों को रिहा करने का क्या कारण है? उनका जवाब था कि नाजी शासक समझते थे कि सारे जर्मन एकमत से उनके समर्थक

हैं। गोयबेल्स को आशंका हुई कि इस जैसा विरोध पूरे देश में फैल सकता है। यद्यपि इस आन्दोलनकारी प्रदर्शन में स्वार्थ निहित था फिर भी विरोध की सार्वजनिक प्रकृति ने शासन को वास्तविकता का भान करा दिया जब कि आतंक करने वाली पूरी मशीनरी किनारे खड़ी रही। एक ऐसे राज्य में जहां जनता अवरोधित हो, सूचनातंत्र पर प्रतिबन्ध हो, दबा हुआ आपसी मतभेद हो, उसके समक्ष संगठित जनसाधारण का बृहत विरोध एक बड़ी राजनैतिक शक्ति सिद्ध होती है और शासक को बहुत कठिन चुनौती प्रस्तुत करती है। अधिकारियों के लिए यह चुनौती अवज्ञा से अधिक कठिन होती है। यह संघर्ष को जन-साधारण में प्रचारित कर देता है।

स्टोल्टफस बताते हैं कि गोयबेल्स के सहायक लिओपल्ड गुटरर के अनुसार 'रोजनस्ट्रास' विरोध की सफलता का कारण "उसका खुलापन और षडयंत्र के विरुद्ध होना था, जिसे सरकार आसानी से देश और जनसाधारण के विरुद्ध काम की तरह प्रचारित कर सकती थी। निहत्थे काम के तरीकों के इस्तेमाल से अत्याचार से बचा जा सका तथा नाजी शासन की दमनकारी हिंसा को उचित सिद्ध नहीं होने दिया गया। अगर वह आन्दोलनकारी हथियार लेकर आते तब पुलिस को गोली अवश्य चलानी पड़ती।"

अप्रैल-मई 1943 का वॉरसा-यहूदी-बस्ती विप्लव (Warsaw Ghetto Uprising), जो रोज़ेनस्ट्रास के ठीक दो माह बाद घटित हुआ, एक शौर्यपूर्ण पर शस्त्रों से लैस संघर्ष था जिसमें कुछ बन्दी यहूदियों ने ट्रैब्लिंका हत्या कैम्प को ले जाए जाते समय पिस्तौल, तमंचों, पैट्रोल बमों के साथ विद्रोह किया। उनके हाथ पोलिश अधिकारियों से मिली कुछ राइफलें भी थीं। इस विद्रोह में 17 गेस्टापो अधिकारी मारे गए और 90 घायल हुए। इसका दुःखद और पूर्व-अनुमानित परिणाम हुआ कि पूरे विद्रोह को निर्ममता से कुचल दिया गया तथा लगभग 13,000 यहूदी पुरुष, स्त्रियों और बच्चों की निर्मम हत्या कर दी गई।

रोजेनस्ट्रास और वॉर्सा विप्लव से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि नाजी आतंक के विरुद्ध सिर्फ अहिंसक विरोध कारगर पाया गया या यह कहना अधिक उचित होगा कि केवल इसी प्रकार के विरोध के सफल होने की सम्भावना थी।

मार्क कुर्लन्सकी ने स्वीकार किया है,''अकसर नाज़ी कौम को एक ऐसा दुष्मनकहा जाता हैजिसके विरुद्ध अहिंसा का इस्तेमाल बिलकुल बेकार होगा। अनेक अहिंसक आन्दोलनों के सफल होने के बावजूद ऐसा माना जाता है।विष्व में अनेक हिंसक घटनाओं के बावजूद बहुत कम लोग जानते हैं कि अहिंसा के कारण बचाए गए यहूदियों की संख्या हिंसा के कारण मरने वालों से कहीं अधिक है।'' इस संदर्भ में डेनमार्क, बल्गारिया, राओउल वालेनबर्ग, आन्द्रे और मगदा ट्रोक्मे के उदाहरण मौजूद हैं। नाज़ी आधिपत्य में होने के बावजूद डेनमार्क की सरकार ने एक भी यहूदी विरोधी कानून अपने देष

में लागू नहीं होने दिया। नाज़ी आधिपत्य के षुरु होने पर, 1 अक्तूबर 1943 से नाज़ियों ने यहूदियों का निर्वासन षुरु किया तो डेनिष लोगों ने पूरे 6500 यहूदी मूल के लोगों को सुरक्षा के इरादे से छिपा लिया। इनमें 1500 लोग जर्मनी, ऑस्ट्रिया और चेकोस्लोवेकिया से आए षरणार्थी भी षामिल थे।उसके बाद ये छिपाए गए यहूदी नांवों से तटस्थ देष स्वीडेन ले जाए गए।केवल 400 यहूदी जर्मनों के हाथ आ सके जिन्हें वे निर्वासित करने में सफल हो पाए।बल्गारिया ने जर्मनी का मित्र देष होते हुए भी नाज़ी षासकों के निर्देष लागू करने से इन्कार कर दिया। स्वीडन के एक व्यवसायी वालेनबर्ग ने हंगरी में राजदूत के पद पर काम करते हुए करीब 100,000 के यहूदियों को स्वीडन का पासपोर्ट जारी करके बचा लिया।दक्षिण पूर्व फ़्रान्स में लि चम्बन-सुर-लिग्नॉन में चला रहे स्कूल के ट्रैक्मस यहूदी बच्चों को स्कूल में छिपा लिया और फिर उन्हें गुप्त रुप से स्विटज़रलैन्ड भेज दिया। कुर्लन्सकी कहते हैं, ''दूसरे महायुद्ध के दौरान अहिंसक विरोध और असहयोग की ढेरों कहानियां भरी पड़ी हैं। अपने और परिवार की जान जोखिम में डाल कर बहुतों ने हज़ारों यहूदी लोगों को बचाया। तानाषाही सषस्त्र विरोध को कुचलना चाहती है, पर उसे केवल असहयोग ही हराता है।''

यूरोपीय यहूदियों की घोर त्रासदी का एक खास दुखद पहलू था कि उनके कुछ जायोनिस्ट नेताओं ने नाजियों के साथ सक्रिय सांठगांठ कर रखी थी। विख्यात यहूदी विदुषी हाना अरेन्ड ने अपनी पुस्तक *आइकमैन इन जेरूसलमः द बैनेलिटी ऑफ इविल* (Eichman in Jerusalem: The Banality of Evil) में इसका रहस्योद्घाटन किया है। वे लिखती हैं, "इस अंधकारमय कथा में एक यहूदी के लिए, अपने ही सजातीय लोगों के विनाश, में यहूदी नेताओं की भूमिका निस्संदेह सबसे काला अध्याय है। पहले इस बारे में हल्का सा शक था, पर यह पहली बार पूरे मार्मिक विस्तार से राउल हिलबर्ग की पुस्तक, *द डैस्ट्रक्शन ऑफ यूरोपियन ज्यूज* (The Destruction of European Jews) से पता चला है।.... एम्सटर्डम, वॉरॅसा, बर्लिन और बुडापेस्ट में यहूदी अधिकारियों पर इन कार्यों के लिए भरोसा किया जा सकता था— जैसे यहूदी व्यक्तियों की और उनकी सम्पत्ति की सूची तैयार करना, निर्वासित यहूदियों से उन्हीं के निर्वासन और विनाश

14 सितम्बर 1812 को जलते हुए मॉस्को में नेपोलियन का प्रवेश

के खर्च के भुगतान का धन इकट्ठा करना, खाली हुए घरों का लेखा-जोखा रखना, यहूदियों को पकड़ने में पुलिस की मदद करना, उनको रेलगाड़ियों पर चढ़ाना और अन्ततः सारी सम्पत्ति पुलिस को सौंपना, जिसमें वे पूरी तरह सब कुछ हथिया सकें। हम जानते हैं कि यहूदी अधिकारियों को कैसा अनुभव होता था जब उन्हें हत्या का साधन बनाया जाता था— ठीक उसी तरह जैसी उस कप्तान की दशा होती है जिसका जहाज डूबने वाला हो और वह कुछ मुट्ठी भर साथियों समेत अमूल्य सामान को बन्दरगाह तक सुरक्षित तो पहुंचा सका, पर अन्य हजारों साथियों की जान गवां कर। यह कटु सत्य कितना दुखदायी और नृशंस है। हंगरी में डॉ. कास्टनर 4,76,000 लोगों का बलिदान देने के बाद 1,684 लोगों को बचा सके। उनमें से वे लोग ही मुक्ति के योग्य समझे गए जिन्होंने जीवन भर '*जिबर*' (Zibur) अर्थात् समुदाय की सेवा की थी— यानी जायोनिस्ट कार्यकर्ता और अत्यन्त प्रमुख यहूदी गण।"

5. राष्ट्रीय सुरक्षा एवं अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी रणनीति पर प्रभाव

राष्ट्र की सुरक्षा तथा अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के संबंध में गांधी का अभिगम इस सूक्ति पर आधारित था कि शांति और सुरक्षा के लिए सत्य-निष्ठा, न्याय, अहिंसा-प्रशिक्षण और आपसी सहमति द्वारा प्राप्त किए समझौतों का मार्ग अपनाया जाना चाहिए, न कि ढेरों अस्त्र-शस्त्रों को एकत्र करने, दूसरे देशों पर आक्रमण और कब्जा करने और युद्ध करने के रास्ते को। वे सारे कार्य जिनसे भय और घृणा उत्पन्न होते हैं उनका परित्याग करना और उसके विपरीत मार्ग का अनुगमन होना चाहिए। यही अभिगम यूनेस्को के सिद्धांत वाक्य में इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है: 'चूंकि युद्ध का आरंभ मनुष्यों के मस्तिष्क में होता है, वह मनुष्य का मन ही है जिसमें शांति की प्रतिरक्षा को निर्मित किया जाना चाहिए।'

गांधी ने सन् 1942 में भी अहिंसात्मक रक्षा (बचाव) का आग्रह किया था जब भारत पर जापान के आक्रमण की आशंका थी। "यदि भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र होता तो देश में जापानियों का प्रवेश अहिंसात्मक रूप में रोका जा सकता था। अहिंसात्मक विरोध उसी क्षण प्रारंभ हो सकता था जिस क्षण उनके सैनिक देश की धरती पर उतरते। अहिंसा-विरोधी उन्हें किसी भी प्रकार की सहायता देने से इंकार कर देते, यहां तक कि पानी भी नहीं देते। यदि जापानी विरोध-कर्ता उनको पानी देने के लिए मजबूर करें तो उन्हें इन्कार कर देना चाहिए और विरोध करते हुए मरने के लिए भी तैयार रहना चाहिए, क्योंकि किसी ऐसे की मदद करना जो उनके देश को छीनना चाहता हो, उनके कर्तव्य के अंतर्गत नहीं आता।" गांधी के इस दृष्टिकोण को असंगत कह कर उसका उपहास किया गया; किंतु सन 1812 में नैपोलियन के विरुद्ध रूसियों ने बिल्कुल ऐसा ही किया था। यहां तक कि उन्होंने अपने ऐतिहासिक शहर मॉस्को तक को जला दिया था ताकि नैपोलियन

के सैन्य दल रूस की ठंड में शरण तक न पा सकें। यह योजना उनके लिए सराहनीय रूप से कारगर सिद्ध हुई। 6,90,000 सैनिकों की 'ग्रैन्ड आर्मी' या विशाल सेना लेकर 14 सितम्बर 1812 को नैपोलियन मॉस्को पहुंचा, पर वह भंयकर शीत और भुखमरी से त्रस्त केवल 50,000 बची हुई सेना दुबारा फ्रांस वापिस ला पाया। उसका रूसी अभियान "विश्व के इतिहास में सबसे घातक सैनिक आक्रमण कहा जाता है।" अत्यधिक ठंड, भुखमरी और सेना की नौकरी छोड़कर भागने के कारण योद्धा तो उसने खोए ही, 2,00,000 घोड़ों और 1,000 तोपों का भी नुकसान हुआ। इस घोर विपत्ति ने उसे एक निश्चयात्मक मोड़ पर ला खड़ा किया, जिसके बाद उसे अपनी अंतिम निर्णायक हार का सामना करना पड़ा। उसके बाद उसे बन्दी बना कर सेन्ट हेलेना द्वीप में रखा गया।

यद्यपि स्वतंत्र भारत में गांधी के देश की सुरक्षा संबंधी अहिंसात्मक विचार को सरसरी तौर पर नकार दिया गया पर स्वदेशी और विदेशी सुरक्षा विश्लेषकों ने इस विचार को सकारात्मक रूप से स्वीकार किया।

पॉल वेअर अपनी पुस्तक *गांधी इन दि पोस्ट मॉडर्न एज* (Gandhi in the Post Modern Age) के आलेख *नॉन वायलेन्स एंड नेशनल डिफेंस* (Non-Violence and National Defence) में नागरिक सुरक्षा की संकल्पना के विकास की रूप-रेखा प्रस्तुत करते हैं और तदनंतर गांधी के अहिंसात्मक विरोध की रणनीति पर आधारित सामाजिक सुरक्षा की बात कहते हैं। वे इंगित करते हैं कि वाल्टर लिपमैन पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 1928 में इसके समर्थन में लिखा था, यद्यपि इसके पूर्व 1910 में विलियम जेम्स ने युद्ध के प्रतिकार के रूप में 'युद्ध का नैतिक समानार्थी' ढूंढने का आग्रह किया था। 1937 में केनेथ बोल्डिंग ने *पाथ्स ऑफ ग्लोरीः ए न्यू वे विद् वार* (Paths of Glory: A New Way with War) पुस्तक में तर्क दिया कि तकनीकी क्रांति ने युद्ध को अकार्यात्मक बना दिया था और उन्होंने सुझाव दिया कि ब्रिटेन को युद्ध के कार्यात्मक विकल्प के लिए 'अहिंसात्मक सुरक्षा नीति' को अपनाना चाहिए। 1937 में डेनमार्क के लिंडबर्ग और 1938 में हालैंड के ब्रिंड ने अपने अपने देशों से इसी प्रकार कार्यवाही करने का आग्रह किया। 1955 में नॉर्वे में आर्ने नायस और योहान गाल्टुंग ने गांधी के विचार पर आधारित 'अहिंसात्मक सामाजिक सुरक्षा' की संकल्पना को स्पष्टतः अभिव्यक्त किया और इस प्रकार उनके और आधुनिक सामाजिक सुरक्षा के सिद्धांत के बीच सीधा संबंध स्थापित किया। संयुक्त राज्य अमेरिका में 1956 में सेसिल हिन्शॉ ने तर्क दिया कि परमाणु युग में सैनिक सुरक्षा अत्यधिक खर्चीली है अतः उसने सामाजिक सुरक्षा को एक समझदारी वाले विकल्प के रूप में प्रस्तावित किया। सन्1959 में एक सम्मानित पूर्व नौसेना कमांडर स्टीफेन किंग हाल ने अपनी पुस्तक *डिफेंस इन*

द न्यूक्लीयर ऐज (Defence in the Nuclear Age) में समकालीन परिस्थिति में परम्परागत सैन्य सुरक्षा के संबंध में सवाल उठाए और यह आग्रह किया कि ब्रिटेन परमाणु शस्त्रों का बहिष्कार करे, संयुक्त राज्य अमेरिका की परमाणु छतरी को अस्वीकार करे और विकल्प के रूप में परमाणु रहित सुरक्षा साधनों की खोज करे तथा सामाजिक सुरक्षा के बारे में भी सोचे। इन विचारों ने ब्रिटेन में संसद सहित सभी ओर सामूहिक चर्चा का वातावरण पैदा किया और संयोगवश 'कैम्पेन फॉर न्यूक्लीयर डिसआर्मामेंट' (Campaign for Nuclear Disarmament) का प्रारंभ भी इसी समय हुआ। दो दशकों बाद सी. एन. डी. का 'यूरोपियन डिसआर्मामेंट कैम्पेन' (European Disarmament Campaign) के रूप में विस्तार हुआ।

सन् 1959 में पृथक रूप से नॉर्वे के **योहान गाल्टुंग** और संयुक्त राज्य अमेरिका के **जीन शार्प** ने विभिन्न अहिंसा विरोधी आंदोलनों का ध्यानपूर्वक विश्लेषण किया, विशेष रूप से नाजियों द्वारा डेनमार्क और नॉर्वे के कब्जे का, और सामाजिक सुरक्षा की एक विश्वसनीय रूपरेखा प्रस्तुत की। शार्प ने इंगित किया कि सामूहिक संहार वाले शस्त्रों के इस युग में सैन्य शक्ति देश की सुरक्षा करने के योग्य नहीं रही, सिवाय इसके कि इसके द्वारा निश्चित रूप से देशों का आपसी विनाश हो। परम्परागत सैन्य शक्ति में श्रेष्ठ होना एक आक्रमणकारी को किसी देश पर आक्रमण कर कब्जा करने योग्य तो बनाता है, पर उस देश की राजनैतिक बागडोर संभालने के योग्य तब तक नहीं बनाता जब तक उस देश के उत्पीड़ित स्वेच्छा से आक्रमण-कर्ताओं को स्वीकार नहीं करते या उन पर बल प्रयोग कर उन्हें ऐसा करने पर विवश नहीं किया जाता। नागरिकों द्वारा सुरक्षा में सैन्य अधिकार का विरोध सारे व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, जैसा कि नॉर्वे और डेनमार्क ने नाजियों द्वारा कब्जा किए जाने के विरुद्ध हुआ— पुलिस द्वारा विरोधियों को ढूंढने में मदद न करके व उनकी गिरफ्तारी न करके, शिक्षकों द्वारा नाजी प्रचार की शिक्षा न दे करके, कामगारों द्वारा धीरे काम करने की नीति का अनुसरण करके, किसानों द्वारा फसल नष्ट करके, और अखबारों द्वारा संवेदनशील खबरों को न छापने की आज्ञा का विरोध करके। इस प्रकार की युक्तियां (रणनीतियां) संघर्ष को सीमारेखा के स्थान से भीतरी क्षेत्र में स्थानान्तरित कर देती हैं, उस क्षेत्र में जहां विरोधकर्ताओं के पास घुसपैठियों द्वारा उनके देश को हथियाने, उनका शासन करने और शोषण करने की योजना को विफल करने की निश्चित सुविधा होती है।

सन् 1964 के नागरिक सुरक्षा विषयक 'ऑक्सफोर्ड सम्मेलन' ने युद्ध-नीतिज्ञों, सुरक्षा शोध-कर्ताओं, राजनैतिक विश्लेषकों और आम जनता को एक साथ जोड़ कर, अहिंसात्मक प्रतिरोध का प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान किया जिसका परिणाम था एडम रोबर्ट्स द्वारा अहिंसात्मक सुरक्षा की कुशलता और उसमें निहित शक्ति पर एक विद्वतापूर्ण प्रकाशन। 'ऑक्सफोर्ड सम्मेलन' की अनुवर्ती कार्यवाही के रूप में म्यूनिख में 1967 में एक और सम्मेलन हुआ। परिणामतः थिओडोर

एबर्ट की अध्यक्षता में एक शोध-समूह का गठन हुआ जिसने रूस द्वारा 1968 में चेकोस्लोवाकिया के विद्रोह के दमन का विस्तृत रूप में अध्ययन किया। तदनन्तर इस समूह ने जर्मनी के लिए सामाजिक सुरक्षा रणनीति का एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

नॉर्वे सरकार ने सर्वप्रथम अधिकारिक रूप से नागरिक सुरक्षा के गुणों के अध्ययन का काम शुरू किया। इस प्रयोजन से 1987 में गठित **गाल्टुंग और हैन्सन कमीशन** ने 'सम्पूर्ण सुरक्षा' की अनुशंसा की जिसके अनुसार प्रत्येक नार्वे निवासी को सामाजिक और साथ ही सैन्य सुरक्षा का प्रशिक्षण दिया जाना था। डेनमार्क द्वारा किए गए इसी प्रकार के एक और अध्ययन ने यह सुझाव दिया कि किसी भी प्रकार के भावी आक्रमण के समय केवल जटलैंड को सैन्य सुरक्षा प्रदान की जाएगी और डेनिश द्वीपों को नागरिक सुरक्षा पर ही आश्रित रहना होगा। हॉलैंड, स्वीडन, ऑस्ट्रिया और फिनलैंड ऐसे अन्य यूरोपीय देश हैं जिन्होंने सुरक्षा के इस प्रकार के लाभों के अध्ययन के लिए कमीशन का गठन किया। फिनलैंड सरकार के मनोवैज्ञानिक सुरक्षा बोर्ड द्वारा किए गये एक अध्ययन ने संसदीय समिति को यह निर्णय लेने की ओर उन्मुख किया कि नागरिक सुरक्षा को राष्ट्रीय सुरक्षा नीति का अनिवार्य अंग होना चाहिए। 1990 के दशक तक नागरिक/सामाजिक सुरक्षा को स्वीडन, नॉर्वे, लिथुआनिया में राष्ट्रीय सुरक्षा नीति का अपरिहार्य अंग मान लिया गया और तत्पश्चात डेनमार्क, हॉलैंड और फिनलैंड भी उसी दिशा की ओर अग्रसर हुए।

'सामाजिक सुरक्षा' के आविर्भाव के विषय में अपने ऐतिहासिक सर्वेक्षण में, पॉल वेअर निष्कर्ष देते हुए कहते हैं, "एक संकल्पना के रूप में सामाजिक सुरक्षा गांधीवादी आंदोलन के नैतिक नियमों और शांतिवादी (युद्ध विरोधी) आदर्शवाद की देन है। ब्रिटिश साम्राज्य के उदाहरण द्वारा गांधीवादी आंदोलन ने ब्रिटेन की सत्तारूढ शक्ति के विरुद्ध विशाल असहयोग आंदोलन की शक्ति का अद्भुत प्रदर्शन किया। जैसे-जैसे आधुनिक युद्ध की विनाशकता अधिक स्पष्ट हुई, यह स्वाभाविक था कि गांधीवादी असहयोग सिद्धांतों और तकनीकों का प्रयोग राष्ट्रीय सुरक्षा की समस्याओं को सुलझाने के लिए किया जाएगा। शुरू में सामाजिक सुरक्षा विषयक शोध गैर सरकारी स्तर पर हुए। 1970 के दशक तक सरकारों ने इसे प्रोत्साहन देना शुरू किया और राजनैतिक दलों और शांति आंदोलनों में इस पर बहस होने लगीं। एक चौथाई शताब्दी के पांडित्यपूर्ण शोध ने सामाजिक सुरक्षा के अंतर्निहित सिद्धांतों, विविध तरीकों और व्यवहारिक विकास के संबंध में ज्ञान की काफी महत्वपूर्ण सामग्री तैयार की है.... यह तो केवल समय और घटनाएं ही बताएंगे कि क्या गांधी के विचार और अभ्यास राष्ट्रीय सुरक्षा के क्षेत्र में उतने ही प्रभावशाली होंगे जितने कि वे सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में हुए हैं।"

प्रोफेसर जीन शार्प ने, अपनी हाल ही की पुस्तक *वेजिंग नॉन वायलेन्ट स्ट्रगल-ट्वेन्टियथ सेंचुरी प्रैक्टिस, ट्वेन्टी फर्स्ट सेंचुरी पोटेंशियल* (Waging Non-violent Struggle 20th Century

Practice, 21st Century Potential) में, बींसवी सदी के तेईस अलग-अलग प्रकार के अहिंसात्मक संघर्षो का विश्लेषण किया है और यह बताया कि इस प्रकार का संघर्ष किस तरह से राजनैतिक वैधता और शक्ति के स्रोतों को कमजोर करने का कार्य करता है और इसे किस प्रकार से रणनीति-युक्त कार्य-योजना और नियमित प्रशिक्षण द्वारा अधिक प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है। वे निश्चय रूप से कहते हैं, "आज इस प्रकार के संघर्ष को सही रूप से समझा जाए और यदि विवेकपूर्ण, बुद्धिमत्ता और साहस से उसे प्रयुक्त किया जाए तो वास्तव में यह सम्पूर्ण विश्व के बेहतर भविष्य की आशा का द्योतक होगा।"

6. शांति, अध्यात्म और सामाजिक कार्यों में कर्मरत व्यक्ति/आन्दोलन

पिछले पांच दशकों में गांधी, शान्ति, अध्यात्म और सामाजिक कार्यों तथा आन्दोलनों के अग्रणी प्रेरणा-प्रतीक बन गए है। ग्लेन पेज ने अपने 1990 के 'गांधी स्मारक व्याख्यान', जिसका शीर्षक *गांधीज कॉन्ट्रिब्यूशन टु ग्लोबल नॉन-वायलेन्ट अवेकनिंग* (Gandhi's Contribution to Global Nonviolent Awakening) है, में इनमें से पहले दो विषयों पर उनके प्रभाव को विस्तार से बताया, "निःसंदेह गांधीजी और उनके सहयोगियों के कारण बीसवीं शताब्दी में वैश्विक अहिंसक जागृति मुख्य रूप से सम्भव हो सकी है।" वे साग्रह कहते हैं कि सत्याग्रह को एक सशक्त आध्यात्मिक यंत्र की तरह प्रयोग करके उन्होंने विभिन्न धार्मिक समुदायों तथा अधार्मिक मानवतावादियों को अपने अहिंसक आध्यात्मिक संसाधनों की गहरी खोज करने को प्रेरित किया तथा उसके इस्तेमाल से अहिंसक वैश्विक परिवर्तन लाने की प्रेरणा दी। उनके कुछ उदाहरण निम्न है:-

ऐबे ऑफ गेथसेमानी से लिखते हुए थामस मेर्टन अपनी पुस्तक *गांधी ऑन नॉनवायलेन्स* (Gandhi on Nonviolence) के प्राक्कथन का अंत इस तरह करते हैं, "गांधी के सिद्धान्त आज के युग में उस समय से भी अधिक सटीक और तर्क-संगत है, जब उनकी संकल्पना की गई थी और भारत के आश्रमों और गांवों में कार्यान्वित किए गए हैं, जैसा पासेम इन टेरिस में पोप जॉन XXIII ने कहा। पोप द्वारा प्रसारित इस पत्र में गांधी के शांतिपूर्ण दृष्टिकोण का विस्तार, गहनता, सार्वभौमता और सहिष्णुता पूरी तरह व्याप्त है। शांति का सृजन एकांतिता, बहिष्कार, निरंकुशता और असहिष्णुता पर आधारित नहीं हो सकता और न ही अस्पष्ट, उदार नारों से और मिथ्या-रचना की आग में पके थोथे कार्यक्रमों के आधार पर शांति का निर्माण हो सकता है। पृथ्वी पर शांति तभी स्थापित हो सकेगी यदि आंतरिक बदलाव मनुष्य को उचित मस्तिष्क की स्थिति तक ले जाए। इस परमाणु युग में इन्सान के भविष्य में गंभीरता से रुचि रखने वाले व्यक्ति को सत्याग्रह में अन्तर्निहित नितांत आवश्यक तत्व और अनुशासन पर गांधीजी के अभिमत को अच्छी तरह समझना और पालन करना जरूरी है।"

'चर्च कम्यूनिटीज़ इन्टरनेशनल' के प्रकाशक '*प्लाऊ*' (Plough) में जॉन डियर एस. जे. ('डेयर टु इमेजिन' (Dare to Imagine) के लेखक) ने अपने अहिंसा के अध्याय के पहले वाक्यों में यह उद्धरण लिख रखा है, "शांति के भविष्य-दृष्टा होने के लिए हमें अहिंसा पर मनन करना होगा, ऐसा व्यक्ति बनना होगा जो शांति के ईश्वर की कल्पना करता हो, जो ईश्वर को हमारे मन को अस्त्र-रहित बनाने दे, जो शांति के ईश्वर को हमें शांति का मार्ग दिखाने के लिए प्रेरित करे, जो न केवल साम्राज्य की हिंसा को ईश्वर-विरोधी, अनैतिक और कुटिल मान कर निंदा करे, और अहिंसा, न्याय और शांति को ईश्वर का पथ उद्घोषित करे।"

ग्लेन पेज के अनुसार गांधी की वैज्ञानिक कार्यशैली अपनाकर सारे विश्व में अहिंसक बदलाव लाया जा सकता है। इस कार्यशैली की सबसे उपयुक्त परीक्षा उनके 'सत्य के साथ प्रयोग' द्वारा पहले ही हो चुकी है। इस कार्यशैली को विभिन्न वैज्ञानिक अन्वेषणों का विषय बनाया जा सकता है। इसका एक उदाहरण 16 मई 1986 के सेविल के 'स्टेटमेन्ट ऑन वायलेन्स' (Statement on Violence) में उपलब्ध है। बीस विशिष्ट मानव वैज्ञानिकों, मानवजाति-वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों ने घोषित किया, "हमने निष्कर्ष निकाला है कि जीव विज्ञान मानवता को युद्ध के लिए प्रेरित नहीं करता है। जैसे कि 'युद्ध का प्रारम्भ इन्सानों के मस्तिष्क में आरम्भ होता है।' वो जनजातियां जिन्होंने युद्ध की खोज की, वही शांति की खोज करने में सक्षम हैं। यह हम में से हर एक का उत्तरदायित्व है।"

ग्लेन पेज कहते हैं कि गांधी के अनुसार हर व्यक्ति द्वारा कर्म, सामूहिक संगठन, निर्धन और दुर्बल पर केन्द्रित ध्यान तथा निर्भयता पर विशेष बल द्वारा सारे विश्व में अहिंसक जागृति लाई जा सकती है। जिन व्यक्तियों तथा संगठनों पर गांधी का गहरा प्रभाव पड़ा उनकी सूची ग्लेन पेज प्रस्तुत करते हैं— वे हैं मार्टिन लूथर किंग, सेसार चावेज, डॉरथी डे, मेयरीड कॉरिगन और बैटी विलियम्स, मदर टेरेसा, अडोल्फो पेरेज ऐसक्विवेल, दलाई लामा, डेस्मन्ड टुटु, एम्नेस्टी इन्टरनेशनल, बार रेजिस्टर्स इन्टरनेशनल, पीस ब्रिगेडस इन्टरनेशनल, फ्रेन्डस वर्ल्ड कमेटी फॉर कन्सल्टेशन, इन्टरनेशनल फेलोशिप ऑफ रिकन्सिलिएशन, ह्यूमैनिटीज इन्टरनेशनल, सोका गक्काई इन्टरनेशनल, ग्रुपे श्वाइज ओने आर्मी, युनाइटेड फार्म वर्कर्स यूनियन, शांतिसेना, लंका सर्वोदय श्रमदान संगमया, ग्रीन पीस, पैक्स वर्ल्ड फन्ड, सर्विसियो पाज ई जस्टिसिया। "वह विश्वस्त हैं कि इन सब का कार्य, गांधी की विरासत से गुंजायमान है तथा साथ ही अपनी आध्यात्मिक और ऐतिहासिक परम्पराओं पर आधारित है; बल प्रयोग, लालच, घृणा तथा अज्ञानता को पूरी तरह अस्वीकार करता है और इन दुर्गुणों को सम्पूर्ण मानवता के कल्याण और सुख-समृद्धि की राह को रोड़ा मानता है।"

'वर्ल्ड सोशल फोरम' (डब्ल्यू. एस. एफ.) जिसे 'ग्लोबल जस्टिस मूवमेन्ट' के नाम से भी जाना जाता है, शोषक पूंजीवाद और 'कार्पोरेट राज्य के विरुद्ध वैश्विक मानवीय प्रतिरोध' आन्दोलन की तरह उभरा है। इसकी संकल्पना 2000 में ब्राजील मजदूर पार्टी के समर्थन से पोर्टो एलेग्रे, ब्राजील में ओदेद ग्राजेव द्वारा की गई। यह संस्था स्वयं को "एक बहुलतावादी, विविध, गैर-सरकारी, पक्षपात रहित, खुला क्षेत्र की संज्ञा देती है। यहां एक जनतांत्रिक, और निष्पक्ष विश्व के सृजन के लिए विकेन्द्रित परिचर्चा, पुनरावलोकन, अनुभवों का विनिमय, प्रस्तावों को बनाना, संस्थाओं और आन्दोलनों के बीच सम्बन्ध और सामंजस्य बनाने की प्रेरणा दी जाती है।" इस संस्था के पहले तीन वार्षिक अधिवेशन पोर्टो एलेग्रे में 2001, 2002 और 2003 में आयोजित हुए जिनमें भाग लेने वाले सदस्यों की संख्या 2001 में 12,000 से बढ़कर 2003 में 66,000 तक पहुंच चुकी थी। तब तक इसकी क्षेत्रीय शाखाएं यूरोप, एशिया और अफ्रीका में स्थापित हो चुकी थीं। एशिया में हैदराबाद, यूरोप में फ्लोरैन्स तथा अफ्रीका में एडिस अबाबा में 2003 के शुरू में इसके क्षेत्रीय सम्मेलन हुए। 2004 में डब्लू. एस. एफ. के मुम्बई में 16 से 21 जनवरी 2004 को आयोजित सम्मेलन में 100 से अधिक देशों के 85,000 कार्यकर्ता शामिल हुए। नोबेल पुरस्कार विजेता जोजेफ स्टिगलित्ज मुख्य वक्ता थे (2003 डब्लू. एस. एफ. में मुख्य वक्ता नाओम चोम्स्की थे)। 2005 में पोर्टो एलेग्रे में भाग लेने वाले सदस्यों की संख्या 1,55,000 हो गई। अतः 2006 के सम्मेलन को विकेन्द्रित करके काराकास (वेनेजुएला), बामाको (माली) और करांची (पाकिस्तान) में आयोजित किया गया। 2007 में नैरोबी, केनिया में 110 देशों से 1400 गैर-सरकारी संस्थाओं के 66,000 प्रतिनिधियों के भाग लेने से यह अब तक का सबसे प्रभावशाली डब्लू. एस. एफ. रहा। 2008 में वैश्विक सम्मेलन था यानी एक शहर में नहीं, बल्कि सारे विश्व में स्थानीय शाखाओं द्वारा 26 जनवरी के आसपास आयोजित हुआ। यह "कर्मशीलता के लिए वैश्विक आवाहन" था। डेविड हार्डिमैन इन कर्मशील लोगों के विषय में लिखते हैं, "यह लोग एक ऐसी मानवीय भावना के लिए संघर्षरत हैं जो आधुनिक हिंसक प्रणाली, दमन और शोषण के विशालकाय शैतान से कुचले जाने को अस्वीकार करते हैं। वे एक बेहतर, अधिक समानाधिकार वाले अहिंसक भविष्य की कामना करते हैं। उनमें उनका आदर्श- गांधी अभी भी जीवित है।"

जनवरी 2009 में नौवां डब्लू. एस. एफ. ब्राजील में अमेजन के घने जंगलों के बीच बेलेम नामक स्थान में और दसवां पोर्टो एलेग्रे में 26 से 31 जनवरी 2010 को आयोजित हुआ। इसमें ब्राजील के दार्शनिक और समाजशास्त्री **कैन्डिडो ग्रिबाउस्की** ने घोषणा की, "पूंजीवाद की अपूर्णता इतनी प्रत्यक्ष कभी नहीं रही है। हमें सामाजिक और पर्यावरणीय न्याय पर आधारित प्रणाली बनाने की जरूरत है।" 'फ्रेन्डस ऑफ अर्थ' की कोलम्बिया शाखा के प्रमुख हिल्डे ब्रैनडो वेलेंज गेलिआनों को उस समय अद्वितीय प्रशंसा मिली जब

उन्होंने प्रगतिशील राष्ट्रों को वैश्विक आर्थिक व्यवस्था के नियंत्रण को "पूंजीपति सट्टेबाजों के हाथों से छीन लेने का आग्रह किया क्योंकि वे आर्थिक व्यवस्था को नष्ट कर रहे हैं। हमें अपने क्षेत्रों को कोकाकोला और मॉनसैन्टो के शिकंजे से आज़ाद कराना है।" ब्राजील ने, जो बहुत लम्बे समय से 'इंटरनेशनल मॉनिटेरी फंड' (आई. एम. एफ.) का ऋणी रहा है, हाल वैश्विक आर्थिक संकट में 14 अरब डॉलर की राशि आई. एम. एफ. को उधार दी है और उन्होंने घोषणा की कि ब्राजील जैसे प्रगतिशील देश ही विश्व का नया आर्थिक नेतृत्व करेंगे।

7. नाटककार, गीतकार, संगीतकार और फिल्म निर्माता

महात्मा में भारतीय नाटककारों को भी एक अच्छा नाटकीय व्यक्तित्व मिला। 1993 में **प्रसन्ना** द्वारा लिखा गया *गांधी* नामक सशक्त नाटक, उनके अनुसार "गांधीजी की सत्य की खोज की गहराइयों तक पहुंचने का एक प्रयास है।" *संडे टाइम्स* की सोबेला कौर द्वारा लिए गए साक्षात्कार में उन्होंने कहा, "गांधी जी जानते थे कि आजादी की लड़ाई में इन तीन अवस्थाओं से जरूर गुजरना होगा— स्वयं से संघर्ष, देशवासियों से संघर्ष और साम्राज्य की शक्तियों से संघर्ष। अन्य सभी विचारधाराओं से यह अधिक तर्कसंगत लगता है, विशेषकर मार्क्सवाद से, जिससे मैं गांधी और उनके अन्दर बैठे राम को समझ पाने के पहले दृढ़ता से चिपका हुआ था।" मूलतः यह नाटक कन्नड़ भाषा में लिखा गया है। देवेन्द्र राज अंकुर द्वारा हिन्दी में अनुवादित इस नाटक का मंचन दिल्ली तथा अन्य भारतीय नगरों में हुआ है।

प्रदीप दलवी का मराठी नाटक *मी नाथूराम गोडसे बोलतइ,* गांधी की हत्या का स्पष्टीकरण एक हत्यारे की तरफ से प्रस्तुत करता है। 1997 में सर्वप्रथम इसका मंचन हुआ पर छः मंचनों के बाद इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। 2002 में महाराष्ट्र में बी. जे. पी. सरकार द्वारा प्रतिबन्ध हटा लिए जाने के बाद इसका मंचन कई बार हुआ।

2002 में **रामू रामनाथन** के नाटक *महादेव भाई* ने *मी नाथूराम गोडसे बोलतइ* के द्वेषपूर्ण आरोपों को नकारा। नाटककार ने जोर देते हुए कहा, "गांधी को अनेक प्रकार से बदनाम किया जा रहा था। इसलिए मुझे महसूस हुआ कि दर्शकों को यह बताना आवश्यक है कि गांधी किस प्रकार के विचारक थे।" इस नाटक का मंचन भारत के कई नगरों में हो चुका है और इसकी बहुत प्रशंसा हुई है। नारायण देसाई द्वारा वर्णित गांधी जी की डायरी से उद्धृत उनके विचार इस नाटक में प्रस्तुत किए गए हैं।

प्रेमानन्द गजवी द्वारा लिखित अन्वेषणात्मक नाटक *गांधी अम्बेडकर* की बहुत सराहना हुई पर वह 1997 में कुछ महीनों तक ही दिखाया गया। **प्रताप शर्मा** लिखित और लिलेट दुबे

मेट्रोपॉलिटन ऑपेरा, न्यूयॉर्क में 'सत्याग्रह' का मंचन

द्वारा निर्देशित नाटक *सैमी* गांधी के दक्षिण अफ्रीका के जीवन से ले कर उनके देहांत तक की घटनाओं को प्रस्तुत करता है। एक शर्मीले युवा से असाधारण निर्भीक नेता के रूप में उनके परिवर्तन के दौरान वे जिन मानसिक और आध्यात्मिक दुविधाओं से गुजरे, उनको विस्तार से दिखाया गया है। **अजीत दहलवी** का 1995 का मराठी नाटक *गांधी विरुद्ध गांधी,* गांधी और उनके बड़े पुत्र हरिलाल के कटु संबंधों को उजागर करता है। अंततः इसमें दर्शक यह सोचता रह जाता है कि इस दुखद संबंध के लिए दोनों में से कौन जिम्मेदार था। **बंगलौर लिटिल थिएटर** का 2008 का नाटक *द प्रॉफेट एन्ड द पोएट* गांधी और टैगोर के आपसी खास सम्बंधों को उन दोनों के बीच हुए पत्राचार के आधार पर प्रस्तुत करता है। विजय पटकी द्वारा निर्देशित इस नाटक का मंचन शांति निकेतन, साबरमती आश्रम, राजकोट, बंगलौर और मैसूर में हो चुका है।

ब्रायन बॉयडेल, आइरिश संगीतकार, रॉयल कॉलेज ऑफ म्यूजिक और रॉयल आइरिश एकेडेमी में अध्ययन के बाद ट्रिनिटी कॉलेज में 1962 से 1982 तक संगीत के प्रोफेसर थे। उन्हें गांधी की हत्या से गहरा आघात लगा जिन्हें वे अपने समय का सर्वोच्च व्यक्ति मानते थे। उन्होंने गांधी की स्मृति में तुरन्त *इन मैमोरियम* (In Memorium) संगीत रचना शुरू कर दी और उसी साल जून तक उसे पूरा कर लिया। तुरन्त ही उसका मंचन हुआ और तब से बॉयडेल के अनेक कार्यक्रमों में वृहत रूप से उसका प्रदर्शन होता रहा है। संगीत रचना में एक Prelude है और एक Funeral March; बीच में Prelude पर आधारित Coda है। Prelude मनुष्य की दुखी दशा को दर्शाता है जिसका अंत Funeral March में होता है और अंत में एक अपार्थिव शांति सारे में व्याप्त हो जाती है। ब्रायन बायडेल की यह रचना बहुत ही प्रसिद्ध हुई।

पंडित रविशंकर, प्रसिद्ध सितारवादक ने गांधी की हत्या के तुरन्त बाद राग *मोहन कौंस* की रचना की। तबले पर उस्ताद अल्लारक्खा की संगत के साथ सितार पर उसका प्रस्तुतिकरण 1978 में 'डॉयशे ग्रामोंफोन' कम्पनी द्वारा रिकॉर्ड किया गया, जिसका शीर्षक *महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि* (Homage to Mahatma Gandhi) रखा गया है। तब से दुनिया भर में इसके हजारों रिकार्डों की बिक्री होती रही है।

आधुनिक संगीत के महानतम संगीतकार की तरह प्रसिद्ध **फिलिप ग्लास** ने पंडित रविशंकर के सहयोग से 1966 में एक विशिष्ट शैली विकसित की। 1972 में दलाई लामा से मिलने के बाद से वह तिब्बतियों की स्वतंत्रता, अहिंसा और शाकाहार के प्रबल समर्थक रहे हैं। *आइन्सटाइन ऑन द बीच* (Einstein on the Beach) नामक प्रभावशाली रचना के बाद 1978 में उन्होंने *सत्याग्रह* (Satyagraha) ऑपेरा की रचना की, जिसका मौखिक भाग संस्कृत में गाया गया है। इसकी विषय-वस्तु भगवद्गीता पर आधारित है तथा दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी की आध्यात्मिक और राजनैतिक जागृति प्रस्तुत करती है। दूसरे तथा तीसरे अंक में लिओ टॉल्सटॉय, रवीन्द्र नाथ टैगोर तथा मार्टिन लूथर किंग जूनियर भी सम्मिलित किए गए हैं। उत्तरी अमेरिका में इसका पहला प्रदर्शन लेविस्टन, न्यूयॉर्क में जुलाई 1981 में और कुछ महीनों बाद इंग्लैंड में पहला प्रस्तुतिकरण बर्मिंघम में हुआ। 'इंगलिश नेशनल ऑपेरा' और 'मेट्रोपोलिटन ऑपेरा', न्यूयॉर्क का एक नया संयुक्त प्रयास लंदन में अप्रैल 2007 में और अप्रैल 2008 में प्रस्तुत किया गया। इसके तुरन्त बाद एशिया सोसाइटी की अध्यक्ष, विशाखा देसाई, के साथ बातचीत में उन्होंने कहा कि गांधी के विचारों और 1960 के दशक में अमरीका में हुए 'सिविल राइट्स आन्दोलन' का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

नरेश सोहल, भारत में जन्में ब्रिटिश संगीतकार ने अपनी *सत्याग्रह* (Satyagraha) सिम्फ़नी गांधी को समर्पित की। मार्च 1997 में इसको पहली बार 'लंदन सिम्फोनी ऑर्केस्ट्रा' द्वारा जूबिन मेहता ने प्रदर्शित किया। उसकी समीक्षा करते हुए निकोलस विलियम्स ने *इन्डेपेन्डेन्ट* में लिखा, 'पिछली संध्या के प्रदर्शन में 'रूल ब्रिटेनिया' और 'राम धुन' के प्रदर्शन को आजादी की लड़ाई में दो विरोधी पार्टियों की रूपक कथा की तरह प्रयोग किया गया। यह एक स्थाई संबंध को उपयुक्त श्रद्धांजलि थी जो कि नेहरू के शब्दों में 'राष्ट्रों के इतिहास में यदाकदा ही घटित होती है'।

गांधीजी पर लिखने वाले अन्य प्रसिद्ध गीतकार और गायक हैं- *दे किल्ड हिम* (They Killed Him) के **बॉब डिलन**, *गांधी और जीसस* (Gandhi and Jesus) के **पीट मार्टिन**, *गांधी* (Gandhi) के **पैटी स्मिथ**, *गांधी एन्ड सिटिंग बुल* (Gandhi and Sitting

Bull) के **बॉब लिविंग्स्टन**, *ला बैले दि सेन्देल एत गांधी* (La Ballade De Sandale Et Gandhi) के **प्लूम लत्रावर्स**, *एत गांधी लिन्दू दित ताउते डू* (Et Gandhi lindoux dit tout doux) के **एंगे**, *अंहिसा ऐन्ड मन्त्र महात्मा* (Ahins and Mantra Mahatma) के **आउफविन्ड**, *गांधी* के **हॉवर्ड कारपेन्डैल** और *महात्मा* के **बर्न्ड स्टेलटर**।

'यू. एस. ब्रॉडकास्टिंग सिस्टम' की छः *फोर्स मोस्ट पावरफुल* (Force Most Powerful) फिल्में, जिनमें बीसवीं शताब्दी के सफल अहिंसक संघर्षों का ब्यौरा दिया गया है तथा 1982 में **रिचर्ड एटेनबरो** द्वारा निर्मित फिल्म *गांधी* (Gandhi) का उल्लेख इस पुस्तक में पहले ही किया गया है। पिछले पांच दशकों में गांधीजी पर बनी उल्लेखनीय फिल्में हैं– 1963 में **मार्क रॉबसन** की *नाइन आवर्स टु रामा* (Nine Hours to Rama), 1996 में **श्याम बेनेगल** की *द मेकिंग ऑफ द महात्मा* (The Making of the Mahatma), 2000 में **कमल हसन** की तमिल और हिन्दी में बनी *हे राम* (Hey Ram), **अरून पटवध न** की 2002 की *वार एन्ड पीस* (War and Peace), **अनुपम खेर** की 2005 की *मैंने गांधी को नहीं मारा* (Maine Gandhi ko Nahi Mara), **विधु विनोद चोपड़ा** की 2006 की *लगे रहो मुन्ना भाई* (Lage Raho Munna Bhai) हिन्दी तथा अंग्रेजी, तमिल और तेलुगू में उपशीर्षक सहित, **अनिल कपूर** की 2007 की *गांधी माई फादर* (Gandhi My Father), **सी. आर. मनोहर** की 2009 की *महात्मा* (Mahatma) और **अमित चड्ढ़ा** की 2009 की *रोड टु संगम* (Road to Sangam)। इन सब फिल्मों में से **एटेनबरो** की *गांधी* (Gandhi) और **विधु विनोद चोपड़ा** की *लगे रहो मुन्ना भाई* (Lage Raho Munna Bhai) ने जन मानस पर गहरी छाप छोड़ी है। जब कि **अरून पटवर्धन** की *वार एंड पीस* (War and Peace) सैन्यवाद और युद्ध की विभीषिका का सर्वोत्तम प्रस्तुतिकरण है, विशेषकर परमाणु अस्त्र बनाम गांधी के सत्य, अहिंसा और शांति के उपदेशों के कारण।

7. शिक्षा तथा अकादमी–सम्बंधी विज्ञान

यद्यपि गांधी ने अपने आप को एक दार्शनिक के स्थान पर 'व्यवहारिक आदर्शवादी' घोषित किया, फिर भी उनका प्रभाव जीवन के सभी क्षेत्रों में, शिक्षा के क्षेत्र में भी, दृष्टिगोचर होता है। रूसो ने प्लूटो की पुस्तक *रिपब्लिक* (Republic) की प्रशंसा करते हुए उसे 'शिक्षा पर आज तक की प्रस्तुत की गई पुस्तकों में से सर्वोत्तम शोध पुस्तक', की संज्ञा प्रदान की। उपरोक्त पुस्तक में प्लूटो ने शिक्षा को आदर्श समाज के निर्माण हेतु एक महान अनिवार्यता कह कर महत्व दिया। गांधी, जिन्होंने प्लूटों की *रिपब्लिक* (Republic) नामक पुस्तक पढ़ी थी और उनकी पुस्तक *एपोलोजी*

(Apology) का गुजराती में अनुवाद किया था, उन्होंने भी शिक्षा को अपने आदर्श सर्वोदय समाज के निर्माण के लिए उतना ही अधिक महत्व दिया। उनके अनुसार "बच्चे की शिक्षा गर्भावस्था से ही प्रारम्भ हो जाती है। बच्चे के गर्भ में आने के समय ही माता-पिता की शारीरिक और मानसिक स्थिति की प्रतिकृति बच्चे में स्वतः आ जाती है। तत्पश्चात् गर्भ-धारण के पूरे समय यह प्रतिकृति मां की मनःस्थिति, इच्छा, स्वभाव तथा जीवनचर्या से लगातार प्रभावित होती रहती है। जन्म लेने के बाद, बच्चा अपने माता-पिता का अनुकरण करने लगता है और काफी समय तक उन पर पूर्ण आश्रित रहता है।" हालांकि, शिक्षा के क्षेत्र में उनका सबसे बड़ा योगदान 'बुनियादी शिक्षा' की उनकी अभिनव संकल्पना थी, उन्होंने लिखा "बेसिक (बुनियादी) शिक्षा का मुख्य उद्देश्य हस्तकलाओं के माध्यम से बच्चों का शारीरिक, मानसिक एवम् नैतिक विकास करना है। यह मूल रूप से गांव के बच्चों के लिए है और इसकी संकल्पना उन्हें आदर्श ग्रामीण के रूप में रूपांतरित करने के प्रयोजन से की गई है।"

बेसिक (बुनियादी) शिक्षा के आधारभूत तत्व है :-

"साक्षरता शिक्षा का अन्त नहीं है और न ही प्रारम्भ है। यह केवल एक साधन है जिसके द्वारा पुरुष, स्त्री व बच्चे शिक्षित हो सकते हैं अतःएव मैं एक बालक की शिक्षा का प्रारम्भ एक उपयोगी हस्त-कौशल से करूंगा ताकि जिस क्षण से वह शिक्षा आरम्भ करे, उत्पादन करने योग्य बने। मैं यह विश्वास करता हूं कि शिक्षा की इस प्रणाली से मस्तिष्क और आत्मा का उच्चतम विकास सम्भव है।

"वस्तुतः सब तरह की शिक्षा आत्म-निर्भर बनाने वाली होनी चाहिए अर्थात् अंत में इसके ऊपर किया गया व्यय लाभ देगा, केवल मूलधन के अतिरिक्त जो अक्षुण्ण रहेगा। इसमें हाथों की प्रतिभा अन्तिम चरण तक उपयोग में लाई जाएगी, अर्थात् शिक्षार्थी दिन का कुछ समय किसी उद्योग में दक्षतापूर्वक कार्य करने में लगाएगा। इसका दोहरा लाभ होगा, शिक्षा से धनोपार्जन करना तथा एक व्यवसाय सिखा देना जो जीविकोपार्जन करने के लिए बाद में भी काम में लाया जा सकता है।

"सारी शिक्षा मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा के माध्यम से प्रदान की जानी चाहिए। शिक्षार्थियों

को हिन्दुस्तानी भाषा भी आनी चाहिए, देवनागरी या उर्दू लिपि में लिखी भाषा, ताकि वे पूरे भारत में संप्रेषण कर सकें। वे जो भी नया ज्ञान सीखें, उसका उन्हें अपनी मातृभाषा में अनुवाद करना चाहिए और अपने विद्यालयों के आसपास बसे गांवों के विद्यालयों तक उसे फैलाना चाहिए।

"शिक्षा की विषय-वस्तु में किसी भी प्रकार के वर्ग का धर्म सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु सार्वभौमिक नीतिशास्त्र तथा अपने अलावा अन्य सभी धार्मिक आस्थाओं के मूल सिद्धान्तों का समावेश होना चाहिए ताकि उनमें सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना का विकास हो सके।

"असंख्य स्कूलों की स्थापना के स्थान पर अनिवार्य शैक्षिक-वातावरण का निर्माण किया जाना अधिक आवश्यक है। शिक्षार्थी, चाहे गांवों के हों या शहरों के, बेसिक शिक्षा उन्हें भारत की सर्वोत्तम और अक्षुण्ण वस्तुओं से जोड़ती है। यह बच्चे की मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक क्षमताओं को परिष्कृत करती है और एक सामाजिक क्रान्ति के नेतृत्व की ओर उन्मुख करती है, जिसके दूरगामी परिणाम होंगे.... और यह वर्तमान काल की सामाजिक असुरक्षा और विभिन्न वर्गों के बीच के विषाक्त सम्बन्धों जैसी समस्त समस्याओं के निराकरण की दिशा में दीर्घकालिक प्रयत्न होगा।"

गांधी ने यह अभिमत भी दिया था, "यदि शिक्षा दृढ़ चरित्र का निर्माण नहीं करती तो उस शिक्षा का कोई मूल्य नहीं है" और "यदि हमें इस संसार में वास्तविक शांति प्राप्त करनी है और यदि हम युद्ध के विरुद्ध वास्तविक लड़ाई लड़ना चाहते हैं तो हमें इसकी शुरुआत बच्चों से करनी पड़ेगी.... ईसा ने सबसे महान और प्रशंसनीय सत्य का उद्घोष किया था जब उन्होंने कहा कि 'प्रज्ञा बच्चों के मुख से ही प्रस्फुटित होती है'।"

ग्लिन रिचर्ड्स, गांधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में और प्लूटो, टीलिच, मोंटेसरी तथा व्हाईटहैड के विचारों के बीच समानता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, "गांधी की शिक्षा सम्बन्धी विचारधारा का सबसे महत्वपूर्ण अंग यह है कि इसमें दूसरे दार्शनिकों, धर्म-वैज्ञानिकों और शिक्षा शास्त्रियों की शिक्षाओं का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है।" वे बताते हैं कि प्लूटो के अनुसार शिक्षा का अर्थ तथ्यों को इकट्ठा करना नहीं था, बल्कि "वास्तविक जीवन का गम्भीर चिन्तन था—आध्यात्मिक न होकर अनुभव-जन्य, चिन्तन, अस्तित्व का क्षेत्र, न कि कुछ बन जाने का क्षेत्र।" शिक्षा के तीन मुख्य उद्देश्यों -तकनीकी, मानवोचित और प्रेरक जो क्रमशः कुशलता प्राप्त करने, मानसिक अनुशासन का विकास करने और सामाजिक परम्पराओं को संरक्षित रखने— इन तीनों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास ही टीलिच के अनुसार शिक्षा का अर्थ है। मोंटेसरी का सिखाने का तरीका "संगीत और शारीरिक व्यायाम के आध्यात्मिक संयोजन के साथ शिक्षण हेतु उचित

वातावरण पर बल देता है", जबकि व्हाईटहैड के अनुसार "कोई भी पाठ्यक्रम तकनीकी विषयों को सम्मिलित किए बिना सम्पूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि शारीरिक कार्य कुशलता का उतना ही महत्व है जितना कि वैज्ञानिक ज्ञान और सौन्दर्यपरक रसास्वादन का।" निष्कर्ष के रूप में रिचर्ड्स लिखते हैं, "गांधी की आध्यात्मिक अंतरात्मा में, टीलिच जैसा सादृश्य, मोंटेसरी जैसी प्रणाली और व्हाइटहैड की तरह की दृढ़ धारणा थी, जिसके फलस्वरूप वे स्वतः ही उन सबके अग्रणी बन जाते हैं जो शिक्षा की सर्वसम्मत विचार-धारा प्रस्तुत करना चाहते हैं।"

हार्वर्ड रिसर्च सेंटर इन क्रिएटिव एलटूइज्म (Harvard Research Centre in Creative Altruism) के संस्थापक पिटिरिम सोरोकिन लिखते हैं, "स्वार्थहीन प्रेम में अधिकांश लोगों की कल्पना से अधिक रचनात्मक और आरोग्यकारी शक्ति है। प्रेम एक जीवनदायिनी शक्ति है जो शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। यह अच्छाई और मुक्ति का उदात्त रूप है, मानवता को उन्नत करने के लिए सबसे शक्तिशाली शैक्षिक बल है.... प्रेम हमारी चेतना के अहं और उसके बुद्धिसंगत— सुखकारी, उपयोगितावादी और एकात्मक हितों से भी अधिक उत्कृष्ट होता है। यदि उसका केन्द्र-बिन्दु स्वार्थ ही बना रहता है तो वह उच्चतम, परहितवादी प्रेम नहीं है बल्कि वह निकृष्ट कोटि का प्रेम है। कोई भी व्यक्ति जो लगातार आत्मकेन्द्रित नीति को अपनाता है, कभी भी उत्कृष्ट प्रेम की ऊंचाइयों तक नहीं पहुंच सकता और न ही बुद्ध, जीसस, आसिसी का सेंट फ्रांसिस या गांधी बन सकता है।.... गांधी बारम्बार दृढ़ता से कहते हैं कि प्राकृतिक रूप में उनकी समस्त परहितवादी गतिविधियां उनकी अधिचेतना द्वारा प्रेरित थीं, जिन्हें वह सत्य, ईश्वर, प्रेम इत्यादि की संज्ञा देते हैं। धर्म और नैतिकता का केवल बुद्धिसंगत ज्ञान, सत्य (ईश्वर) को देखने, समझने और उत्कृष्ट प्रेम की राह अपनाने के लिए पूर्णयता अपर्याप्त है। अनुनय-विनय, एकाग्रता, आत्म-समर्पण और विनम्रता के बिना अधिचेतना के अनुग्रह को सक्रिय कर पाना असम्भव है।

गांधी द्वारा प्रतिपादित बेसिक शिक्षा (बुनियादी शिक्षा) का बहुत कम प्रभाव भारतीय शिक्षा-पद्धति और नीति पर पड़ा क्योंकि उसने पश्चिमी साक्षरता पर बल दिया है, प्राथमिक शिक्षा के स्थान पर तकनीकी और विज्ञान-शिक्षा को बहुत बढ़ावा दिया। किन्तु गांधी द्वारा संस्थापित, अहमदाबाद स्थित, 'गुजरात विद्यापीठ' और मदुरई के पास स्थित 'गांधीग्राम ग्रामीण विश्वविद्यालय' (Gandhigram Rural University) में उनकी संकल्पना को पूर्णतः समर्पित भाव से अपनाया गया है। इसके अतिरिक्त 100 से अधिक भारतीय विश्वविद्यालयों में गांधी पर अध्ययन-केन्द्र कार्यरत हैं। अहमदाबाद के 'इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ मैनेजमेंट' (Indian Institute of Management) ने हाल ही में 'अहिंसा शक्ति प्रोजेक्ट' शीर्षक से एक परियोजना आरम्भ की है जो उसके स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में 'समझौते' की कार्यप्रणाली का भाग है। हार्वर्ड, कोलम्बिया और

शिकागो विश्वविद्यालयों में गांधी के राजनैतिक और अहिंसात्मक विरोध-निवारण की रणनीति का पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि गांधी से प्रेरणा पाकर *स्माल इज ब्यूटीफुल* (Small is Beautiful) नामक पुस्तक के लेखक ई. एफ. शूमाकर के नाम पर डार्टिंगटन, डेवॉन, यू. के. में 'शुमाकर कॉलेज' खोला गया है। उसके संस्थापक-निदेशक गांधीवादी सतीश कुमार के अनुसार वहां "नये प्रकार के ज्ञान की रूपरेखा जो केवल बौद्धिक समाज के लिए ही नहीं है बल्कि उसमें धरती और धर्म की समझ भी जुड़ी है," उपलब्ध है। विभिन्न राष्ट्रों और पृष्ठभूमियों के लोग वहां गहन अध्ययन, प्रायोगिक गतिविधियों और गम्भीर चिन्तन के लिए आते हैं। आर्ने नायस, फ्रिटजॉफ काप्रा, दीपक चोपड़ा, हम्बर्टो माटुराना, वूल्फगैंग साक्स और वन्दना शिवा जैसे अनेक ख्यातिप्राप्त चिन्तकों ने वहां पढ़ाया है।

9. आर्थिक सिद्धांतों एवं कार्यप्रणाली पर प्रभाव

गांधी के आर्थिक विचार मुख्यतः भारत की चतुर्दिक व्याप्त अकथनीय गरीबी से प्रभावित थे। उनकी काफी आलोचना हुई एवं उन्हें पुरातन और अव्यवहारिक कहा गया। एक आलोचक ने बहुत विश्वास से घोषणा कर दी कि "गांधी को अर्थशास्त्र की समझ नहीं है" और उन पर 'समय को पीछे ले जाने' का आरोप मढ़ डाला। किंतु फिर भी आर्थिक क्षेत्र में गांधी ने उल्लेखनीय प्रभाव डाला।

गांधी के लिए अर्थशास्त्र और नैतिकता में कोई गहरा भेद नहीं था। "वह आर्थिक नीति, जो व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को क्षति पहुंचाती है, अनैतिक है, अतः अपराध है। इसी तरह ऐसी आर्थिक नीति जो एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र को क्षीण करती है, अनैतिक है।.... उन करोड़ों लोगों के लिए स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं है जो यह नहीं जानते कि अपने ऊपर थोपी गई बेरोजगारी से वे कैसे मुक्ति पाएं। स्वराज्य की प्राप्ति अल्पकाल में संभव है, किंतु यह केवल चरखे के पुनर्जीवन द्वारा ही संभव है।"

गांधी चाहते थे कि मूल रूप से गांव ही आर्थिक सत्ता की इकाई हों और यह लोगों की आंतरिक प्रतिभा, पारंपरिक व्यवसायों और सरलता से उपलब्ध सामग्री अथवा प्रतिस्थापित प्राकृतिक संसाधनों से उपलब्ध की जाए। उनके अनुसार यदि किसी वस्तु के उत्पादन के लिए गांव को क्षमता से अधिक पूंजी लगानी पड़ती हो तो उसे सबसे पास के शहर में स्थापित किया जा सकता है। वे व्यक्ति जो उस शहर में काम करना चाहते हैं, अपने गांव में ही रह सकते हैं। इन छोटे औद्योगिक कस्बों को गांव की सस्ती मजदूरी वाले कामगारों का लाभ मिलेगा और कृषि के पुनरुत्थान से पूंजी में वृद्धि होगी। इसके अलावा इस प्रकार की योजना, स्थानीय संप्रेषण के नेटवर्क

में सुधार लाने का कारक बनेगी तथा आवश्यकता की साधारण वस्तुओं को दूर के शहरों से मंगवाने की आवश्यकता भी नहीं रहेगी।

गांधी के सामान्य जीवन-यापन और शारीरिक श्रम के विचार टॉलस्टॉय, रस्किन और थोरो के विचारों में भी परिलक्षित होते हैं। "सही अर्थों में सभ्यता, वस्तुओं को बढ़ाते जाने में नहीं बल्कि अपने स्वार्थ की आवश्यकताओं को स्वयं प्रयत्न करके कम करने में है। केवल इसी से वास्तविक रूप में सुख और संतोष प्राप्त होगा और सेवा भाव बढ़ेगा।"

आर्थिक मामलों में गांधी प्रशासन के हस्तक्षेप के पूर्ण विरोधी थे क्योंकि इससे व्यक्ति की रचनात्मक प्रवृत्ति प्रभावित होती है। "मैं प्रशासन के अधिकारों में वृद्धि के कारण बड़े भय से आशंकित होता हूं क्योंकि बाह्य रूप से शोषण कम होने के कारण भलाई होने के स्थान पर इससे मानव जाति का बहुत बड़ा नुकसान होता है— व्यक्ति की विशिष्टता नष्ट होती है जो हर प्रकार की प्रगति का मूल है। मैं बहुत से ऐसे उदाहरण जानता हूं जहां लोगों ने ट्रस्टीशिप (Trusteeship) को अपनाया किंतु एक भी ऐसा उदाहरण नहीं जानता जहाँ प्रशासन ने वास्तव में निर्धनों के लिए कार्य किया हो।" वे विश्वास करते थे कि नैतिक आचरण आर्थिक क्षेत्र का भी एक प्रभावकारी उपकरण है और उसके द्वारा व्यक्तियों के आर्थिक व्यवहार में परिवर्तन लाकर लाभकारी बदलाव लाया जा सकता है जैसे विदेशी कपड़ों को न खरीदना। विनोबा भावे का भूदान आंदोलन इस बात का एक और अच्छा उदाहरण है।

यद्यपि गांधी ने अपने आर्थिक विचारों के विषय में काफी लिखा और कहा भी किंतु उनके पास न तो समय था और न ही प्रशिक्षण कि वे एक सुसंगत आर्थिक सिद्धांत को परिभाषित करें। कालांतर में जिसे गांधीवादी अर्थशास्त्र (Gandhian Economics) कहा जाने लगा, वह उनके विशिष्ट शिष्य जे. सी. कुमारप्पा (जे.सी.के.) के समर्पित प्रयासों का प्रतिफल है। उन्होनें दो दशकों से अधिक समय तक इसकी *यंग इंडिया* (Young India) के कालमों में और अपनी पुस्तक *इकोनोमी ऑफ परमानैन्स* (Economy of Permanence), 1945 में प्रकाशित पुस्तक में व्याख्या की। इस पुस्तक में जे. सी. के. ने पशु-पक्षियों और मधु-मक्खियों के सरल उदाहरण का उपयोग करके पांच तरह की अर्थ-व्यवस्था का उल्लेख किया है- परजीवी (Parasitic), परभक्षी (Predatory), उद्यमी (Enterprising), समूहवादी (Gregationary) तथा सेवा के प्रति समर्पित (Service Oriented) होती है। वे अंतिम अर्थ-व्यवस्था का अनुमोदन करते थे क्योंकि इस व्यवस्था में व्यक्ति केवल लाभ (Profit) के पीछे नहीं भागता। आवश्यकता से अधिक माल की खपत के लिए बाजार हथियाने और ग्राहक बनाने के लिए ही युद्ध शुरू किए जाते हैं। उत्पादन पहले किया जाता है और फिर बन्दूक की नोंक पर मांग पैदा की जाती है।" गांधी के विचारों को प्रतिध्वनित करते हुए वे तर्क करते हैं कि केवल ग्राम आधारित और सेवा के प्रति उन्मुख अर्थ-व्यवस्था के

द्वारा ही पूरा रोजगार, समाज कल्याण, प्रकृति संरक्षण, सच्चा जनतंत्र और शांति सुनिश्चित की जा सकती है। "पश्चिमी सभ्यता एक क्रिसमस के पेड़ की तरह है, जो भांति-भांति के सुन्दर खिलौनों, गुड़िया आदि से सजाया जाता है..... पर जैसे क्रिसमस-ट्री जीवित पौधे से काट कर बनाया जाता है, उसका पोषण धरती माता से नहीं हो सकता। यद्यपि वह थोड़े समय तो तरोताजा और हरा भरा रह सकता है, पर शीघ्र ही वह सूख कर केवल जलाने के योग्य रह जाता है।"

सिरक्यूज़ विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त जे. सी. के. बंबई में एक उन्नतिशील चार्टर्ड एकाउन्टेंट थे। एक मित्र की सलाह पर, सन् 1929 में वे कोलम्बिया विश्वविद्यालय में अपने शोध-निबंध के संबंध में, जिसका शीर्षक *पब्लिक फाइनेन्स एन्ड इंडियन पौवरटी* (Public Finance and Indian Poverty) था, गांधी की राय लेने गए। उनकी झोपड़ी में उन्हें 'अपनी सिल्क की पैंट की अच्छी तरह की गई इस्तिरी वाली तहों के बावजूद गोबर से लिपे फर्श' पर बैठना पड़ा। किंतु उन्हें उसका पूरा मुआवजा तब मिल गया जब गांधी ने उनके शोध-प्रबंध की प्रशंसा इन शब्दों द्वारा की, "मेरे संपर्क में आए तुम पहले ऐसे अर्थशास्त्री हो जो मेरी ही तरह सोचता है", और उस शोध-प्रबंध को *यंग इंडिया* (Young India) में क्रमशः छापने का प्रस्ताव रखा। इस प्रकार उन दोनों के बीच एक प्रगाढ़ संबंध की शुरुआत हुई। तदुपरांत उन्होंने जे. सी. के. को *यंग इंडिया* (Young India) का सम्पादन करने को मना लिया तथा 'अखिल भारतीय ग्रामीण उद्योग संघ' (All India Village Industries Association) के अध्यक्ष का पद भी सौंपा। विदेश में शिक्षित, रेशमी सूट धारी जे. सी. के. को पहली मुलाकात में ही मंत्रमुग्ध करना भी गांधी जी के सम्मोहक व्यक्तित्व का एक और उदाहरण है।

गांधी के आर्थिक विचारों का समर्थन करने वाले पहले विदेशी अर्थशास्त्री, जर्मनी के अर्थशास्त्री अर्नेस्ट शूमाकर थे जो ब्रिटिश कोयला बोर्ड के परामर्शदाता थे। अपनी पुस्तक *स्माल इज ब्यूटीफुल* (Small is Beautiful) में उन्होंने गांधी का उल्लेख 'जनता के अर्थशास्त्री' के रूप में किया – "जिन्होंने उस अर्थशास्त्र को मानने से इंकार कर दिया जिसके लिए लोगों का महत्व कोई मायने नहीं रखता था।" उन्होंने तर्क दिया, "अत्यधिक उत्पादन की तकनीक जन्मजात रूप से उग्रवादी है, पर्यावरणीय रूप से विनष्टकारी है, अपरिवर्तनीय संसाधनों के लिए आत्मघाती है और मानव को मूर्ख सिद्ध करने वाली है। बहुत सारे व्यक्तियों द्वारा उत्पादन की तकनीक जिसमें सर्वोत्तम आधुनिक ज्ञान और अनुभव का प्रयोग हो, मनुष्य को मशीनों का दास बनाने के बदले विकेन्द्रीकरण में सहायक, प्रकृति के नियमों के अनुकूल, कम उपलब्ध संसाधनों को कम से कम खर्च करने वाली और मनुष्यों के लिए अधिक सहायक और लाभकारी सिद्ध होती है।" उन्होंने इसे 'मध्यवर्ती तकनीक' (Intermediate Technology) की संज्ञा दी और यह पुष्टि की कि यह परम्परागत तकनीकों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है और आधुनिक तकनीकों की अपेक्षा कम लागत

वाली और सरल है। जॉर्ज मेकरोबी ने शूमाकर की पहल का अनुगमन करते हुए अपनी पुस्तक *स्मॉल इज़ पॉसिबल* (Small is Possible) लिखी। मैक्सिको के एक ऑस्ट्रियन कैथोलिक पादरी, ईवान इलिच, ने शूमाकर के विचारों को अपनी पुस्तकों *टूल्स फार कन्वाइवियेलिटी* (Tools for Conviviality) और *एनर्जी एन्ड इक्वीटि* (Energy and Equity) में प्रतिध्वनित किया।

नरेन्द्र पानी की पुस्तक *इन्क्लूसिव इकोनोमिक्स* (Inclusive Economics) भी गांधी की आर्थिक प्रणाली की सराहना करती है, जो उस परम्परागत आर्थिक अभिगम का विरोध करती है जिसमें पहले सैद्धांतिक प्रतिरूप निर्मित कर लिया जाता है और उसके अनुरूप नीतियों का निर्धारण होता है। इसके विरुद्ध गांधी की आर्थिक प्रणाली में पहले वांछित उद्देश्यों का और फिर उन्हें पाने की आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। पानी तर्क करते हैं कि सामान्य सैद्धांतिक प्रतिरूप की अपेक्षा यह निर्धारित परिणामों को प्राप्त करने का बेहतर अभिगम है, जिसमें अधिकतर अनपेक्षित और दुःखद परिणाम प्राप्त होते हैं, जैसे कि 1997 में एसियन आर्थिक संक्रमण (ASEAN Economic Crisis) काल में हुआ था। वे लिखते हैं "भव्य और महत्वपूर्ण परिकल्पनाओं के संबंध में यह गांधी का संशयवाद है, जो इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में अर्थशास्त्रियों द्वारा अनुभव की गई चुनौतियों से उन्हें प्रासंगिक बनाता है। गांधीजी ने समाज को समझने के लिए, सिद्धांतों के परे जाने पर बल दिया। इसके लिए जो तरीका उन्होंने अपनाया वह ज्ञात और अज्ञात दोनों को सन्निहित किए हुए था और साथ ही साथ स्वार्थ-साधकता की गुंजाइश को कम करने वाला था। यदि हम अपना ध्यान सिद्धांत से हटा कर प्रणाली पर केन्द्रित करें तो गांधी के विचारों की स्वीकारिता बड़े पैमाने पर हो पाएगी। यहां तक कि अर्थशास्त्र की मुख्य धारा में भी गांधी की प्रणाली के मूल्य को कुछ महत्व दिया गया है।.... प्रायः कई बार गांधी के विचारों को उनकी तपस्वी जीवन शैली से जोड़ा जाता है।

"वस्तुतः लोगों में यह विश्वास करने की प्रवृत्ति है कि गांधी का तरीका केवल उनके लिए ही उपयुक्त हो सकेगा जो उनकी तरह तपोमय जीवन शैली को अपनाएंगे। किंतु एक बार हम यह जान लें कि यह तरीका विभिन्न प्रकार के नैतिक ढांचों के लिए भी समान रूप से अनुकूल है, इसे व्यापक प्रासंगिकता प्राप्त होगी।"

गांधी की अभिनव ट्रस्टीशिप की संकल्पना कि "वे जिनके पास धन है, उन्हें अब न्यासियों की तरह व्यवहार करना चाहिए और अपने धन को निर्धनों के लिए रखना चाहिए", ने नैतिकता और अर्थशास्त्र के मध्य एक संबंध स्थापित करने का यत्न किया है। इसका सार यह है कि धन चाहे वसीयत द्वारा, व्यापार, उद्योग या अन्य तरीके से कमाया जाए, वह 'ईश्वर प्रदत्त' है और वह उतना ही व्यक्ति का है जितना समाज का, और उसे न्यास (Trust) के रूप में रखा जाना चाहिए और सबकी भलाई के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए। गांधी के जीवन काल में इस

संकल्पना का बहुत कम प्रभाव हुआ। फिर भी, दो भारतीय पूंजीपति— जमना लाल बजाज और जे. आर. डी. टाटा ने इसे स्वीकार किया। दूसरे उदाहरण में यह आंशिक रूप से पारिवारिक परम्परा के कारण था किंतु उन पर गांधी के प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता। जे. आर. डी. टाटा के एक पत्र का निम्न उद्धरण उस प्रभाव की पुष्टि करता है, "मैं कह सकता हूं कि मैं सदा से मूलरूप से गांधी की न्यासिता की संकल्पना से सहमत रहा हूं और मैंने अपने पूरे कार्यकाल में इस पर अमल करने का प्रयास किया है। वस्तुतः हमारी कम्पनी समूह ने जहां तक संभव हो, इसे आधिकारिक रूप में अपनी सैद्धांतिक नीति बना लिया है। मेरा संदेह केवल इस प्रकार की संकल्पना की प्रायोगिकता को लेकर रहा है विशेष रूप में सोचते हुए कि एक ओर नैतिक स्तर है या उसकी कमी है जो आज देश के बड़े व्यापारी वर्ग पर हावी हो रही है और दूसरी ओर समाजवाद की हठधर्मिता और उसके परिणामस्वरूप सरकार द्वारा व्यक्तिगत उद्यम का विरोध है।"

हाल ही के कुछ वर्षों में पूंजी और श्रम के बीच चला आ रहा तीक्ष्ण विवाद कम हुआ है और स्टॉक रखने के विकल्प ने मजदूरों को उद्यम की पूंजी का एक हिस्सेदार बना दिया है। एक अच्छे सामूहिक शासन में, सामूहिक सामाजिक दायित्व, एक अविभाज्य अवयव के रूप में उभर कर आया है। गांधी की न्यासिता की संकल्पना को उनके द्वारा भी अपनाया जा रहा है जो उनसे प्रभावित नहीं थे। सामूहिक उद्यम के जिन समकालीन लोगों ने गांधी के प्रभाव को सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया है उनमें इन्फोसिस के नारायण मूर्ति और विप्रो के अजीम प्रेमजी हैं। यद्यपि वे करोड़पति है किंतु उनकी जीवन-शैली अत्यंत मर्यादित है और उनके अतिरिक्त धन का अधिकतर भाग जनसाधारण की शिक्षा और उन्हें शौच की सुविधाएं प्रदान करने में खर्च होता है। गांधी की न्यासिता की संकल्पना का सर्वश्रेष्ठ कार्यरत उदाहरण है टाटा का स्टील प्लांट और जमशेदपुर का नगर क्षेत्र जिसके संबंध में विश्व के सबसे बड़े स्टील निर्माता लक्ष्मी मित्तल ने हाल में लिखा, "वे लोग जो सामूहिक सामाजिक दायित्व की बात करते हैं और उसमें भारत की भूमिका की बात करते हैं उनके लिये जमशेदपुर देखना अनिवार्य है।.... मेरा टाटा स्टील से कोई लेना-देना नहीं है, पर मैं दृढ़ता से यह विश्वास करता हूं कि आशा और भलाई का जो संदेश वे प्रसारित कर रहे हैं वह निश्चय ही अनुकरण के योग्य है।.... जब मैं 1992 में जमशेदपुर गया था, तब से उन्होंने कहीं अधिक अच्छा काम किया है। वह नगर निश्चित रूप से पहले से अधिक व्यस्त हो गया है, किंतु शुक्र है कि उनके मूल्य नहीं बदले हैं.... स्थान को अधिक हरा-भरा और अधिक स्वच्छ वातावरण बनाने में पर्यावरण प्रबंधकों का प्रशंसनीय योगदान है। जिस स्वच्छ वायु में मैंने सांस ली— मुझे लगा कि मैं किसी पर्वतमाला के समीप हूं। वहां कहीं भी कारखानों से निकला धुआं नहीं था, न ही व्यक्तियों के चेहरे थके-मांदे नजर आए। महिला कामगारों की संख्या कहीं

अधिक थी यहां तक कि कर्मशाला (Shop Floor) में भी उनकी उपस्थिति पर्याप्त संख्या में थी. ... वहां की वायु में एक बहार थी जो एक विलक्षण शांति से प्राप्त होती है और जो हमेशा से ही जमशेदपुर का प्रभाव चिन्ह रही है। जमशेदजी नौशेरवाजी टाटा ने एक भवन खड़ा किया था जो आज एक हृष्ट-पुष्ट कम्पनी है और यह लाभ और मूल्य निर्धारण से संबंधित नहीं है। कौन करोड़पति बनता है और कौन नहीं— यह उससे संबंधित नहीं है। गरिमा व सम्मानपूर्वक अपना कार्य करने और चले आ रहे पुरातन मूल्यों को संजो कर रखने का यह उल्लेखनीय उदाहरण है।"

10. पर्यावरण और परिस्थितिकी वैज्ञानिकों पर प्रभाव

इन क्षेत्रों में गांधी के नेतृत्व की पुष्टि उनके 'सादा जीवन उच्च विचार' के सिद्धान्त के आग्रह द्वारा होती है। वे अपने परिसर को स्वच्छ रखना, पशु-पक्षियों की रक्षा करना, सभी प्रकार के अपव्यय का प्रतिकार करना और यथासम्भव अधिकतम मात्रा में स्थानीय रूप में उपलब्ध, पुनः प्रयोग की जा सकने वाली सामग्री का प्रयोग करना आदि भावों पर बल देते हैं। उन्होंने लिखाः

"एक सीमा तक भौतिक सुख आवश्यक है किन्तु उसके बाद वह एक बाधा बन जाता है। अतः असीमित इच्छाओं को जन्म देना और उन्हें पूर्ण करना एक मिथ्या विश्वास और एक फन्दा है। मनुष्य सादा जीवन और उच्च विचार के आदर्श से उसी क्षण गिर पड़ता है जब वह अपनी दैनिक आवश्यकताओं को बढ़ाना शुरू कर देता है। उसकी खुशी वस्तुतः संतुष्टि में है। मैं दावे के साथ कहता हूं कि यूरोपीय लोगों को अपना नजरिया बदलना होगा यदि वे उन सुविधाओं के बोझ से विनष्ट होने से बचना चाहते हैं जिनके वे दास बनते जा रहे हैं।"

"पृथ्वी ने हर व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त दिया है किंतु उसके लोभ या लालच के लिये नहीं.... हमारे समय में युद्ध लालच से उत्पन्न होते हैं।"

"गांवों में सुन्दर और शालीन वातावरण की जगह गोबर के ढ़ेर पड़े हैं। कई गांवों तक पहुंचना भी कोई सुखद अनुभव नहीं है।"

"मेरी उत्कट अभिलाषा है कि सवेरे-सवेरे धरती-माता पर लोगों को गंदगी फैलाने का घृणित पाप करने से कैसे रोकूं।"

"मेरे लिए गाय का अर्थ है एक समूचा मानवीय संसार। गाय के द्वारा मनुष्य सब जीवों के बीच अपने अस्तित्व को पहचान सका है।"

"वास्तविक संघर्ष, पर्यावरण और विकास के बीच नहीं, बल्कि, पर्यावरण और मनुष्य द्वारा किए जा रहे पृथ्वी के अंधाधुंध शोषण के बीच है।"

गांधी के पारिस्थितिक ज्ञान के संबंध में शूमाकर ने लिखा, "गांधी को हमेशा से ज्ञात था और अब समृद्ध देश भी अनिच्छा से अनुभव कर रहे हैं कि उनकी समृद्धि विश्व को निर्धन बनाती जा रही है। संयुक्त राज्य अमेरिका, जिसकी जनसंख्या विश्व की मात्र 5.6 प्रतिशत है, विश्व के 40 प्रतिशत संसाधनों का प्रयोग करता है, जिनमें से अधिकतर संसाधनों का नवीनीकरण असंभव है।.... धरा रूपी अंतरिक्षयान के मूल तथ्यों के संबंध में अब पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध है और यह विदित है कि इसके उच्च वर्ग के निवासियों द्वारा की जा रही मांगों को बिना अंतरिक्षयान को नष्ट किए अधिक समय तक सहन नहीं किया जा सकता।"

भारत के शहरी नागरिकों की बढ़ती हुई समृद्ध शैली को देखते हुए और देश के अधिकतर स्थानों पर शोचनीय पर्यावरण की दशा को देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि इस क्षेत्र में भारतीयों पर गांधी का प्रभाव बहुत ही कम पड़ा है। फिर भी उनके प्रति निष्ठा रखने वाले कुछ लोग विशेषकर सुन्दरलाल बहुगुणा और मेधा पाटकर ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। पहले व्यक्ति सुन्दरलाल बहुगुणा गांधी से मिले थे और उन्हें उनका वरदहस्त गांधी के निधन के एक दिन पूर्व ही प्राप्त हुआ था। उन्होंने अपना जीवन गांधी के और तत्पश्चात् विनोबा भावे के संदेश को संचरित करने और उसके क्रियान्वयन के लिए उत्सर्ग कर दिया। सुन्दरलाल बहुगुणा ने विशेष रूप में टेहरी क्षेत्र, जो हिमालय के निचले पर्वतीय क्षेत्र में स्थित है, में प्रचुर मात्रा में कार्य किया। सन् 1973 में जब चमोली जिले में पेड़ों के काटने का व्यवसायिक कार्य शुरू हुआ, 'चिपको आंदोलन' की शुरूआत महिलाओं और पुरुषों के एक सक्रिय दल द्वारा की गई ताकि पेड़ों का काटना रोका जा सके और उनके परम्परा से चले आ रहे वन-अधिकारों को पुनः प्राप्त किया जा सके। जिन लोगों ने इस आन्दोलन में मुख्य भूमिका निभाई, वे थे गौरा देवी, सुदेशा देवी, बचनी देवी, सुन्दरलाल बहुगुणा, चण्डी प्रसाद भट्ट और गोविन्द सिंह रावत। यह आन्दोलन शीघ्र ही हिमालय के सारे निचले पर्वतीय क्षेत्र में फैल गया। इसका सबसे महत्वपूर्ण पक्ष था महिलाओं की सामूहिक सहभागिता जो उस क्षेत्र की आर्थिक स्थिति में मुख्य भूमिका निभाती है और वन-कटाई से सबसे अधिक प्रभावित हो रही थी।

उनका नारा था-

"लाठी गोली खाएंगे, अपने पेड़ बचाएंगे।"
"भाले कुल्हाड़े चमकेंगे, हम पेड़ों पर चिपकेंगे।"

यह साहसिक संघर्ष आठ साल तक चला तथा देश और विदेश दोनों का इस ओर ध्यान आकर्षित हुआ। अंततः सन् 1981 में उनका उद्देश्य पूरा हुआ जब हिमालय की तराई में वनों का व्यवसायिक रूप से काटना वर्जित हो गया।

प्रसिद्ध पारिस्थितिकी-विज्ञ वन्दना शिवा ने आनुवांशिक रूप से परिवर्तित बीजों के विरुद्ध अपना 'बीज सत्याग्रह' आरम्भ करने का दिन गांधी की 'नमक यात्रा' के आरम्भ की तारीख को चुना और यह घोषणा की कि "जैसा कि गांधी ने ब्रिटिश राज्य के अन्यायपूर्ण नमक नियमों के विरुद्ध असहयोग के लिए डांडी में नमक बना कर घोषणा की थी, उसी प्रकार 'बीज सत्याग्रह' लोगों के द्वारा असहयोग की घोषणा है जो उन अन्यायपूर्ण पेटेंट कानूनों के विरुद्ध है जिनके आधार पर किसानों द्वारा बीजों के सरंक्षण को अपराध माना जाता है।"

अन्तर्राष्ट्रीय हरित आंदोलन स्पष्टतः गांधी की प्रेरणा को स्वीकार करता है। जर्मन हरित-दल की संस्थापक पेट्रा केली ने सार्वजनिक रूप से कहा, "हमारे राजनैतिक कार्य के एक विशेष क्षेत्र में हम महात्मा गांधी से बहुत अधिक प्रेरित हुए हैं। यह हमारा विश्वास है कि रहन-सहन और निर्माण का वह तरीका जो अंतहीन मांग या आपूर्ति पर आधारित है और कच्चे माल का प्रचुरता से प्रयोग करता है, उस कच्चे माल को दूसरे देशों से प्राप्त करने की तीव्र विनियोजन की आकांक्षाओं को जन्म देता है। इसके प्रतिकूल, कच्चे माल का उत्तरदायित्वपूर्ण उपयोग, परस्थिति की ओर उन्मुख जीवन-यापन शैली और मित-व्ययता हमारी हिंसा-पूर्ण राजनीति के खतरे को कम करता है जो हमारे नाम पर पहचानी जाएगी।" कई अन्य यूरोपीय और लैटिन अमेरिकी देशों में भी समान सोच वाले 'हरित दल' बन गए हैं।

वैश्विक पर्यावरण के क्षेत्र में गांधी का ठोस प्रभाव संयुक्त राष्ट्र संघ के पर्यावरण कार्यक्रमों द्वारा सत्य सिद्ध होते हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण है उनका वह सूक्ति वाक्य, "पृथ्वी ने हर व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त दिया है किंतु उसके लोभ या लालच के लिए नहीं...." जिसका सभी, प्रचार-अभियान के नारे के रूप में प्रयोग करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका की जन प्रसारण सेवा ने अपने टेलीविजन कार्यक्रम श्रृंखला *रेस टु सेव द प्लेनेट* (Race to Save the Planet) में इसी प्रकार का उपक्रम किया है।

जून 1992 में रिओ दि जेनेरियो में आयोजित पर्यावरण और विकास पर आयोजित संयुक्त राष्ट्र के सम्मेलन में 117 राष्ट्र-प्रमुखों और 178 देशों के प्रतिनिधियों द्वारा भाग लिया गया जो कि दुनिया के नेताओं की सबसे बड़ी सभा थी। जिन संधिपत्रों और अन्य अभिलेखों पर उन्होंने

हस्ताक्षर किए उसके द्वारा उन्होंने अपने देशों द्वारा यह वचन-बद्धता प्रकट की कि वे आर्थिक विकास के कार्यक्रम इस प्रकार कार्यान्वित करेंगे ताकि पृथ्वी के पर्यावरण और पुनः नवीनीकरण किए जा सकने योग्य संसाधनों का संरक्षण हो सके।

सितम्बर 1999 में संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा ने राज्य सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों और नागरिक समुदायों को सम्बोधित कर 'शांति की संस्कृति के घोषणा पत्र' (Declaration on a Culture of Peace) को अंगीकार किया ताकि उस संस्कृति का, जो जीवन के लिए सम्मान, स्वतंत्रता, न्याय, सहिष्णुता, आपसी बातचीत, सहयोग, प्रजातंत्र, समान अधिकार, सबके लिए समान अवसर और स्वपोषित विकास पर आधारित है, विकास हो सके। वर्ष 2000 को 'शांति की संस्कृति का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष' और वर्ष 2001 से 2010 तक 'विश्व के बच्चों के लिए शांति और अहिंसा का अंतर्राष्ट्रीय दशक' घोषित किया गया है। यह पहली बार था कि अहिंसा को सार्वभौमिक घोषणा पत्र और कार्यान्वयन कार्यक्रम का स्पष्ट और सुव्यक्त अवयव बनाया गया था।

27 जून, 2007 को संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा में प्रतिवर्ष 2 अक्टूबर को 'अहिंसा का अंतराष्ट्रीय दिवस', मनाने के विषय में एक प्रस्ताव पारित किया गया और सभी सदस्य राष्ट्रों, संयुक्त राष्ट्र की संस्थाओं, अशासकीय संस्थाओं और व्यक्तिगत लोगों को इस दिन को उपयुक्त तरीके से मनाने का आग्रह किया जिससे हर संभावित तरीके द्वारा अहिंसा का संदेश सर्वत्र संचारित किया जा सके।

11. प्रबंधन सिद्धांतों एवं अभ्यास पर प्रभाव

प्रबंधन के क्षेत्र में गांधी का प्रभाव प्रत्यक्ष न था किंतु परोक्ष रूप में लोगों की बौद्धिक सोच में परिवर्तन पैदा करते हुए जिस प्रकार से उन्होंने सफलतापूर्वक अपने अनेक सत्याग्रहों का प्रबंधन किया जिसमें विभिन्न परिपेक्ष से आए हजारों लोगों ने भाग लिया, वह सराहनीय है।

1930 के दशक के प्रारंभ में ब्रिटेन के प्रमुख अर्थशास्त्री, लॉर्ड केन्स ने *ए ट्रीटीस ऑन मनी* (A Treatise on Money) शीर्षक से एक विशिष्ट नैतिक मार्गदर्शक पुस्तक लिखी, जिसमें वे लिखते हैं, "कम से कम अगले एक सौ वर्षों तक हमें स्वयं को यह दिखावा करना होगा कि उचित अनुचित है और अनुचित ही उचित है, क्योंकि अनुचित लाभकारी है और उचित नहीं। धनलोलुपता एवं सूदखोरी को अभी कुछ और समय तक हमें अपना आराध्य मानना होगा। तभी हम आर्थिक आवश्यकताओं की सुरंग से निकल कर प्रकाश की राह तक पहुच पाएंगे।" अधिकतर औपनिवेशिकीय आर्थिक और वित्त संबंधी प्रबंधन, समय-समय पर किए 'संवैधानिक

1931 में लंकाशायर के कपड़ा मजदूरों के साथ गांधी

सुधारों' और उन पर न्यायिक व्यवस्था का छद्मावरण डाल कर किए जाते रहे हैं।

इसके बिल्कुल विपरीत 1980 के प्रारंभ में अमेरिकी प्रबंधन गुरु, पीटर ड्रकर, ने प्रबंधकों को एक बिल्कुल अलग प्रवचन दिया। *न्यू रियेलिटीज़* (New Realities) में उन्होंने लिखा, "क्योंकि प्रबंधन-कौशल एक सार्वजनिक साहसिक कार्य के प्रति लोगों को प्रेरित करता है तथा उनका मार्गदर्शन करता है, वह गहराई से संस्कृति में सन्निहित होता है। अतएव एक मुख्य चुनौती जिसका प्रबंधक-गण अनुभव करते हैं, वह है अपने कामगारों की उस परम्परा व संस्कृति को पहचानना, प्रबंधन हेतु जिसका प्रयोग निर्माण की इकाई के रूप में किया जा सके। इसके अतिरिक्त, मेरी ही तरह उन सभी लोगों ने जिन्होंने एक लम्बे समय तक हर प्रकार के संस्थानों के प्रबंधक वर्ग के साथ कार्य किया है, वे जान गए हैं कि, प्रबंधन में मनुष्य की प्रकृति, अच्छाई, बुराई आदि आध्यात्मिक पहलू गहराई से जुड़े हुए हैं।"

1990 से 'टोटल क्वालिटी मैनेजमैंट' (Total Quality Management), 'कस्टमर रिलेशन मैनेजमैंट' (Customer Relation Management), 'कॉरपोरेट सोशल रिस्पोंसिबिलीटी' (Corporate Social Responsibility), सब भागीदारों के हितों एवं पर्यावरण सुरक्षा की संकल्पना, प्रबंधन सिद्धांत और उत्कृष्ट सामूहिक शासन मे सन्निहित है। गांधी इन सिद्धांतों को 1920 से ही अमल में ला रहे थे। टोटल क्वालिटी मैनेजमैंट (Total Quality Management) के विषय में उन्होंने लिखा, "विद्यार्थियों को वैज्ञानिक तरीके से चरखा चलाना चाहिए। उनके उपकरण हमेशा साफ-सुथरे, व्यवस्थित और सही दशा में होने चाहिए, तभी उनका धागा स्वाभाविक रूप से उच्चतम स्तर का होगा।"

कस्टमर रिलेशन मैनेजमेंट (Customer Relation Management) पर उन्होंने भली-भांति अपने विचार व्यक्त किए, "हमारे परिसर में एक ग्राहक सबसे महत्वपूर्ण आगंतुक है। वह हम पर आश्रित नहीं है, बल्कि हम उस पर आश्रित हैं। वह हमारे कार्य में बाधक नहीं है।

वह हमारे कार्य का उद्देश्य है.... हम उसका कार्य कर उस पर कोई उपकार नहीं कर रहे हैं। वह हमें कार्य करने का अवसर देकर हमारे ऊपर उपकार कर रहा है।"

कॉरपोरेट सोशल रिस्पोंसिबिलीटी (Corporate Social Responsibility) की झलक उनके शैक्षिक, स्वास्थ्य और शौच संबंधी उन प्रयासों में दीखती है जो उन्होंने चम्पारन के नील की खेती करने वाले किसानों के लिए तत्काल शुरू कर दिये थे, जैसे ही उन्होंने अपने प्रयासों से अंग्रेजी जमीदारों के साथ कामगारों की समस्याओं का समाधान कर लिया था।

सभी भागीदारों के हितों की रक्षा के संबंध में यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने 1931 की गोलमेज-सम्मेलन की लन्दन यात्रा के बीच समय निकाल कर लंकाशायर कपड़ा मिल के कामगारों को भारत में किए गए विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के आन्दोलन का औचित्य समझाया, जो उस बहिष्कार से बुरी तरह प्रभावित हुए थे।

मैनफोर्ड एलाएंस (Manford Alliance) के संस्थापक निदेशक, आनन्द डेविड ने 2 अक्टूबर, 2005 के *ट्रेनिंग एन्ड मैनेजमैंट* (Training and Management) के विशेष अंक में *दि लीडर महात्मा* (The Leader Mahatma) का अंक निकाला और लिखा कि "पीटर सेंगे की *फिफ्थ डिसिप्लिन* (Fifth Discipline) या डैनियल गोलमैन की *वर्किंग विद इमोशनल इंटेलिजेंस* (Working with Emotional Intelligence) के बाद एक विद्वान की पुस्तक जो संस्थाओं और उनके विकास की दुनिया में प्रामाणिक रूप से अलग दृष्टिगत होती है वह है *गुड टु ग्रेट* (Good to Great).... इसमें यह इंगित है कि सफल और स्थाई संस्थाओं पर शोध करने पर उनके नेता का चरित्र सदैव उभर कर सामने आया। एक प्रमुख संकल्पना पांचवें स्तर के नायक की भी है। इसके अंतर्गत पांचवें स्तर के नायक का एक अध्ययन है.... जिसमें नायक सबसे शालीन किंतु सबसे अधिक दृढ़ निश्चयी; सबसे नम्र किंतु फिर भी साहसी है और उसका प्राथमिक अभिप्राय एक संस्थान (राष्ट्र) को स्थिरता देने जैसा बड़ा कारण होता है, न कि केवल स्वयं को प्राप्त होने वाले सीमित लाभ। हममें से कई व्यक्तियों की दृष्टि में गांधी ऐसे ही नेता हैं।"

पांचवें स्तर के नेतृत्व अथवा नायक का प्रारूप कार्नेगी मेलन विश्वविद्यालय के सॉफ्टवेयर इंजिनियरिंग इंस्टीटयूट द्वारा सन् 1995 में विकसित किया गया जो 'पीपल केपेबल मैच्योरिटी मॉडल' (People Capable Maturity Model) का उत्कृष्ट रूप है। जब कि नेतृत्व के पहले से चौथे स्तर का संबंध मूल प्रबंधन, कार्य प्रणालियों, पर्यावरण, संगठन संबंधी सक्षमता, कुशलता का विश्लेषण, सामूहिक प्रयास और परामर्श देने से है, पाचवां स्तर अपने प्रेरित नेतृत्व और दक्ष सामूहिक प्रयास द्वारा व्यक्तियों व संस्था की क्षमताओं को अपनी प्रेरणा द्वारा सर्वोत्तम रूप में निखारने का कारक होता है।

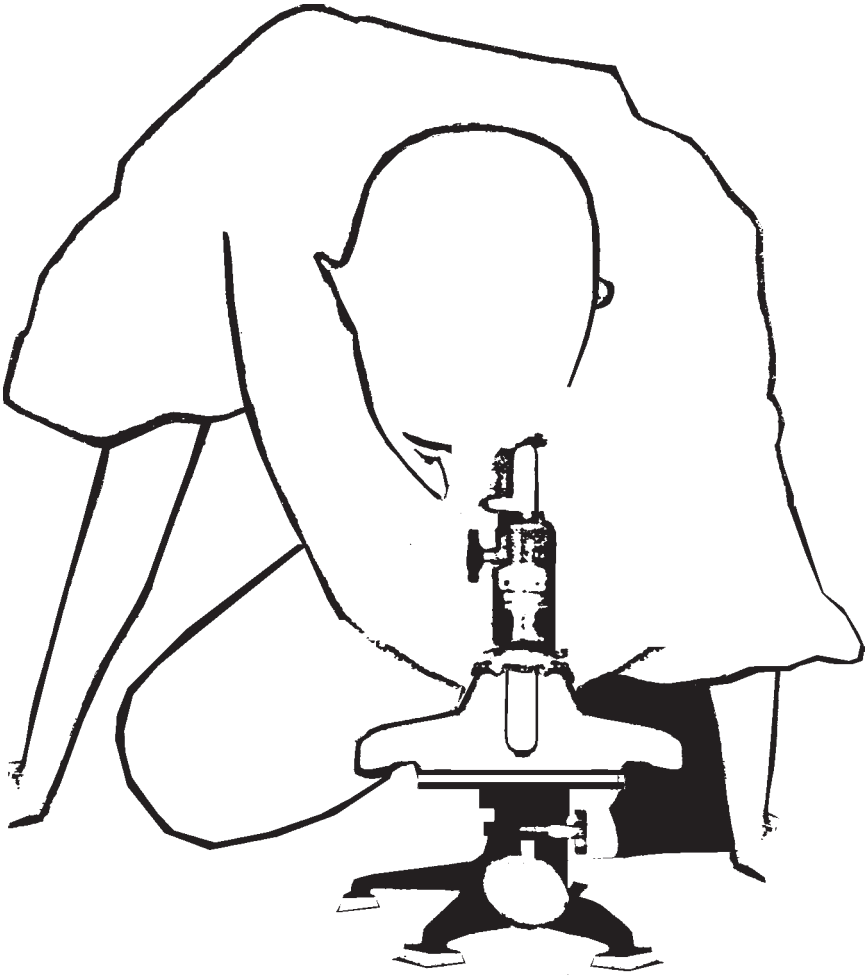

कलाकारः वेंकटेश

"मैं विज्ञान के हर उस आविष्कार को पुरस्कृत करूंगा जो सर्वजन हिताय हो"

13. विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर प्रभाव

गांधी की विचारधारा 'बहु उत्पादन के स्थान पर अनेकों द्वारा उत्पादन' के कारण कुछ आलोचकों ने यह आरोप लगाया कि गांधी विज्ञान एवं प्रगति के विरोधी थे। इस विषय पर 1924 में जब उनसे विशेष रूप से पूछा गया कि वे मशीन के विरोधी क्यों हैं तो उनकी प्रतिक्रिया थी, "मैं मशीन विरोधी कैसे हो सकता हूं जब कि मैं जानता हूं कि हमारा यह शरीर भी एक नाजुक मशीन है? चरखा एक मशीन है, एक छोटी दांत-खोदनी भी एक मशीन है। जिस बात का मैं विरोध करता हूं वह है मशीनों के प्रति हमारा पागलपन, न कि मशीनें। मशीनों से मनुष्य के अंग क्षीण नहीं होने चाहिए।"

उनका विचार था कि मशीन द्वारा 'श्रम के बचाव' के कारण हजारों श्रमिक कार्य न होने के कारण सड़कों पर पहुंच जाते हैं। वे चाहते थे लोग परिश्रमी हों, 'मशीन की तरह नहीं बल्कि एक व्यस्त मधुमक्खी की तरह'। उनका कथन था, "मैं सबके हित के लिए की गई हर खोज को पुरस्कृत करूंगा और उस मशीन का स्वागत करूंगा जो गांवों में रहने वाले करोड़ों व्यक्तियों के बोझ को कम करती है।" मशीन जिसकी उन्होंने प्रशंसा की वह थी सिंगर सिलाई की मशीन।

योहान गॉल्टुन्ग का कथन है, "गांधी द्वारा सिंगर सिलाई मशीन की स्वीकृति से हमें पता चलता है कि वे ऐसी मशीन चाहते थे जिसे एक व्यक्ति द्वारा चलाया जा सकता है, अतः उसके द्वारा न तो शोषण होना है और न ही लोगों से विमुख होना है। इसमें एक दिलचस्प प्रश्न उठता है कि क्या गांधी जी ने इस प्रकार की (लैप टॉप या कम्प्यूटर जैसी) और मशीनों को भी स्वीकार किया होता जो मशीनीकरण की आपत्ति का कारण न होती?" गाल्टुंग का सोचना है कि उन्होंने इन मशीनों को स्वीकार किया होता और कहते हैं, "निर्णायक बिन्दु है छोटी विकेन्द्रित इकाइयों की स्वायत्तता, जिसमें आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के कड़ुए या मीठे फलों (परिणामों) को वर्जित नहीं किया गया है।"

आधुनिक मशीनों द्वारा बहु-उत्पादन के कारण भारत पर पड़ने वाले सर्वनाशी प्रभाव का पॉल केनेडी द्वारा भली-भांति उल्लेख किया गया है; "सन् 1814 में भारत ने केवल दस लाख गज सूती कपड़ा आयात किया था किंतु 1830 तक वह बढ़ कर 510 लाख गज और 1870 तक आश्चर्यजनक रूप से बढ़ कर 9,950 लाख गज हो गया था। एक गणना के अनुसार, जो भयंकर परिणाम दृष्टिगोचर हुआ वह यह था कि यद्यपि 1750 की औद्योगिक क्रांति के आरंभ में भारत और ब्रिटेन दोनों की प्रति व्यक्ति आय का स्तर लगभग समान था, किंतु 1900 तक पहुंचते-पहुंचते भारत का स्तर ब्रिटेन के स्तर का केवल सौंवा भाग ही रह गया था।"

क्लॉड मार्कोविट्स ने विज्ञान के संबंध में गांधी के विचारों को बहुत बारीकी से मूल्यांकित किया है। वे स्पष्ट करते हैं कि हालांकि गांधी उस तरीके के घोर आलोचक थे जिससे विज्ञान का प्रयोग उद्योग, औषधि और अस्त्र-शस्त्र के क्षेत्र में होता था, किंतु वे विज्ञान विरोधी नहीं थे। "वस्तुतः उनका दृष्टिकोण पूर्णतः वैज्ञानिक था— यहां तक कि उनका दैवी दृष्टिकोण भी वैज्ञानिक था, क्योंकि वे सत्य की खोज भी अपने प्रयोगों द्वारा, करना चाहते थे, जैसा कि उनकी 'आत्मकथा' का शीर्षक इस बात को स्पष्टतः इंगित करता है। यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि क्या गांधी का ईश्वर अनुभवातीत था क्योंकि वे केवल प्रयोगों की कसौटी पर प्राप्त सत्य पर इतनी गहराई से विश्वास करते थे।"

मिखाइल सोंनलेटनर, गांधी के सत्याग्रह के 'वैज्ञानिक'- सूत्र को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, -

'हमारे चारों ओर एक ऐसी अव्यक्त रहस्यपूर्ण शक्ति विद्यमान है जो सर्वत्र व्याप्त है, एक जीवन्त शक्ति जो अपरिवर्तनीय है, जो सबको सूत्रबद्ध करती है, रचना करती है, नष्ट करती है और पुनर्निमाण करती है। वह शक्ति है ईश्वर की.... ईश्वर के रूप में यह एक जीवन्त शक्ति है। हमारा जीवन उसी शक्ति का दिया है। वह शक्ति हममें विद्यमान है किंतु हमारे शरीर का अंग नहीं है। वह जो उस महान शक्ति के अस्तित्व को नकारता है, स्वयं अपने आप से उस परम शक्ति के प्रयोग को वंचित कर, अकर्मण्य रह जाता है।.... सत्याग्रह, शुद्ध और साधारण रूप में आत्मशक्ति है। जहां भी जिस भी हद तक अस्त्र-शस्त्र या शारीरिक शक्ति के प्रयोग की गुंजाइश है, वहां इस आत्म-शक्ति के प्रयोग की संभावना उतनी ही कम होती है। यह शुद्ध रूप में प्रतिरोधी बल है और मुझे इन विरोधी शक्तियों का सत्याग्रह के प्रारम्भ में भी पूर्ण आभास था।.... सत्याग्रह, जीवन के जीवित नियम का संकेत देता है। यह नियम वैसे ही कार्य करेगा जैसा कि गुरुत्वाकर्षण का नियम करता है— चाहे हम स्वीकार करें या न करें। और जिस प्रकार से एक वैज्ञानिक प्रकृति के नियमों के विभिन्न प्रयोगों द्वारा चमत्कारों को प्रस्तुत कर देता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति प्रेम के सिद्धांत का वैज्ञानिक सूक्ष्मता से परिपालन करेगा, वह अधिक चमत्कार दिखा सकता है।" सोंनलेटनर निष्कर्ष रूप में कहते हैं, "पर्याप्त रूप से विकसित सत्याग्रही, एक जहरीले सर्प को नुकसान न पहुंचाने वाला बना सकता है, एक भूखे शेर को शांत कर देने की क्षमता रखता है। इस प्रकार की, गांधी की सत्याग्रही छवियों में, डैनियल का उत्कृष्ट उदाहरण दृष्टिगोचर होता है जो शेर के पिंजरे में प्रवेश के बाद भी बिना किसी नुकसान के सुरक्षित रहा....। कोई भी शक्ति वैश्विक ज्योति का सामना नहीं कर सकती, वह ईश्वरीय

शक्ति, जो मानव के भीतर सन्निहित है.... इन सिद्धांतों में गांधी सही है या नहीं, इस बात को एक अविश्वसनीय महत्व का मुद्दा ही समझ कर छोड़ दिया जाना चाहिए, जिस पर समय आने पर, हमारे स्वयं के अनुभव अधिक स्पष्ट प्रकाश डाल पाएंगे।"

गांधी ने यह भी कहा था :

"वैज्ञानिक बताते हैं कि हमारी पृथ्वी जिन अणुओं से बनी है उनके बीच एक न दिखने वाला बल है, जिसके बिना धरती टुकड़ों में बिखर जाएगी और हम जीवित ही नहीं रह पाएंगे। जब अदृश्य वस्तुओं में भी एक बांधने वाली शक्ति विद्यमान है तो उसे चेतन वस्तुओं में भी अवश्य होना चाहिए और उस शक्ति का नाम प्रेम है।.... किन्तु हमें प्रेम की उस शक्ति का प्रयोग उन सभी वस्तुओं के लिए करना सीखना चाहिए जो जीवित हैं।.... जहां प्रेम है, वहीं जीवन है.... घृणा विनाश की ओर उन्मुख करती है।.... इसीलिए मैंने भारत के सम्मुख आत्म-त्याग के पुरातन सिद्धान्त को रखने का साहस किया है।.... वे ऋषि जिन्होंने हिंसा के होते हुए भी अहिंसा के सिद्धान्त की खोज की, न्यूटन से भी अधिक प्रतिभा-संपन्न थे।"

यह उल्लेखनीय है कि गांधी की 'जीवन शक्ति' जो प्रत्येक व्यक्ति को आत्मिक शक्ति प्रदान कर सकती है, आइंस्टाइन के विख्यात सूत्र $E=MC^2$ के सदृश्य है, जिसके अनुसार पदार्थ के छोटे से छोटे कण में भी ऊर्जा निहित है जो मुक्त होने पर शक्ति का अथाह पुंज प्रदान कर सकती है। यह दिलचस्प बात है कि दोनों संकल्पनाएं एक वर्ष के भीतर ही— 1905 और 1906 में अभिव्यक्त की गईं। यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि गांधी ने अपने सिद्धान्त का 'निर्मित हो रहे विज्ञान' के रूप में उल्लेख किया और साथ ही यह भी जोड़ा कि 'अहिंसक संघर्ष की मेरी तकनीक उसी स्थिति में है जैसी कि एडिसन के समय में विद्युत की थी। इसे और अधिक परिष्कृत और विकसित करने की आवश्यकता है।.... मैं इन प्रयोगों को पूर्णता की संज्ञा किसी भी हद तक नहीं दे सकता। मैं उनके लिए एक वैज्ञानिक से अधिक दावा नहीं करता, जो यद्यपि अपने प्रयोगों को पूरी बारीकी से पूर्व विचार और सूक्ष्मता से करता है किन्तु अपने निष्कर्षों के बारे में कोई दावे नहीं करता, पर उस विषय में निष्पक्ष विचार रखता है।"

गांधी मार्ग (Gandhi Marg) के एक आलेख *गांधी एज ए साइंटिस्ट* (Gandhi as a Scientist) में टी. एस. अनंथु, आइंस्टाइन को इस प्रकार उद्धृत करते हैं, "मनुष्य, उस पूर्ण का एक हिस्सा है जिसे हम ब्रह्माण्ड कहते हैं— एक ऐसा हिस्सा जो स्थान और समय में सीमित है। वह अपने स्वयं का, अपने विचारों और भावनाओं का अनुभव स्वयं

करता है, जैसे कि वह अन्य सबों से पृथक हो जो एक प्रकार से अपनी चेतन अवस्था का दृष्टि-भ्रम है। यह भ्रांति हमारे लिए एक प्रकार की कैद या बंधन है जो हमें अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं और कुछ प्रिय निकटस्थ व्यक्तियों को प्रेम व्यक्त करने तक सीमित रखती है। हमें स्वयं को इस कैद से आजाद करना चाहिए, इसके लिए हमें अपनी करुणा तथा सहृदयता का दायरा बढ़ाना आवश्यक है। इसके लिए हम समस्त प्राणियों और सम्पूर्ण प्रकृति को प्रेम से गले लगाएं।" अनंथु निष्कर्ष रूप में कहते हैं, "मानव जाति की उक्त परिभाषा और पृथ्वी पर हमारे जीवन का ध्येय इतना अधिक गांधी के कथन के समान प्रतीत होता है— फिर भी यह बात आइंस्टाइन की लेखनी से निकली है। यह उन दोनों के बीच सांसारिक दृष्टिकोण की साम्यता को दर्शाता है तथा प्रेम और अहिंसा के सिद्धान्त को उस परम आधारभूत सिद्धान्त की नींव के रूप में प्रस्तुत करता है जो समस्त ब्रह्माण्ड को संचालित करता है— जिसमें निर्जीव तथा सजीव दोनों भाग शामिल हैं। गांधी की यह समझ और जीवन के इस परम सिद्धान्त सम्बन्धी उनका निजी अनुभव उन्हें बहुत बड़े वैज्ञानिक कहलाने का हकदार बनाता है।"

12. राजनैतिक दर्शन और उग्रवादी राष्ट्रीयता पर प्रभाव

किस प्रकार के अन्याय व दमन के विरुद्ध प्रभावी अहिंसात्मक प्रतिकार कर उसका अनुकूल प्रभाव छोड़ा जा सकता है— प्रोफेसर जीन शार्प इसका श्रेय गांधी को देने के अतिरिक्त उनकी उस मूल अंतर्दृष्टि को भी मान्यता देते हैं "जिसमें सरकारों के स्वभाव के बारे में भी पूरी जानकारी थी कि राज्य को चलाने के लिए वस्तुतः सभी शासक अपनी प्रजा के आत्म-समर्पण, आज्ञाकारिता और सहयोग पर निर्भर होते हैं।" वे गांधी को उद्धृत करते हैं, "राजनीति में सत्याग्रह का प्रयोग इस अपरिवर्तनीय सूक्ति पर आधारित है कि जनता की सरकार चलाना तभी तक संभव है जब तक कि जनता चेतन या अचेतन रूप से शासित होने के लिए तैयार है।"

डॉ. जोअन बॉन्डूरन्ट स्पष्टतः कहते हैं कि गांधी ने "राजनैतिक दर्शन को एक असीमित योगदान दिया है", उन्होंने (गांधीजी ने) मुख्य धारा के राजनैतिक सिद्धांत की उस आधारभूत अवधारणा को चुनौती दी जो साधन और परिणाम के अलगाव को मान्यता देती है। उनके अनुसार "गांधी के द्वन्द्वात्मक विचारों का तात्पर्य परिणाम के सृजन में है। हेगेलवादी और मार्क्सवादी तर्कशास्त्र के विरूद्ध गांधीवादी सिद्धांत समाज की व्याख्या नहीं करता बल्कि उसे एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में मानता है जिसके द्वारा प्राणी-मात्र के मूलभूत विरोधों को समाप्त कर पूर्णतः नई परिस्थिति उत्पन्न की जा सके.... गांधी-वादी प्रयोग यह प्रस्ताव करते हैं कि यदि मनुष्य को अपने

आपको भय और आशंका से समान रूप से मुक्त करना है तो वह अपने हिंसात्मक आवेश को रोक कर स्वयं को उस पर विजय पाने के लिए तैयार रखे।"

प्रो. डेनिस डॉल्टन, गांधी की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि उन्होंने स्वराज्य, अधिकार और कर्तव्यों की संकल्पना से राजनैतिक सिद्धांतों में मौलिक योगदान दिया है। वे लिखते हैं "स्वतंत्रता और दायित्व की संकल्पना में यूरोपीय व अमेरिकी राजनैतिक सिद्धांत सत्रहवीं शताब्दी से ही विभाजित रहे हैं। एक ओर लॉक और मिल का दर्शन है तो दूसरी ओर रूसो और हेगल के विचार हैं। दोनो संकल्पनाओं का सैद्धांतिक विरोध इतना गहरा है कि 'इसिआह बर्लिन' के फैसले में भी जीवन के अंत के प्रति परस्पर विपरीत असंगत विचारों का सुझाव दिया गया है।" वे तर्क करते हैं कि गांधी ने अधिकारों को कर्तव्य से और स्वतंत्रता को उत्तरदायित्व से सीधा जोड़ कर राजनैतिक विचारों में 'अलग विचार' प्रस्तुत किया जिसको "पश्चिमी राजनैतिक संभाषणों में सम्मिलित किया जाना चाहिए।" गांधी का अधिकारों को कर्तव्यों से जोड़ने का विचार इस आधार वाक्य पर आधारित है कि व्यक्ति के अधिकार समाज द्वारा प्रदान किए जाते हैं अतः उनका लाभ व्यक्ति और समाज दोनों को होना चाहिए। अतः बोलने की स्वतंत्रता का अधिकार तभी तक संभव होगा जब व्यक्ति इस अधिकार का प्रयोग असामाजिक तरीकों से नहीं करता। समाज से उनका तात्पर्य व्यक्तियों के सामूहिक सत्व से है न कि प्रशासन से। इस क्षेत्र में प्रशासन की भूमिका के संबंध में वे सशंकित थे।

प्रो. ग्लेन पेज ने 1990 में गांधी स्मृति और दर्शन समिति, नई दिल्ली में अपने 'गांधी स्मृति व्याख्यान' का शीर्षक *गांधीज कन्ट्रीब्यूशन टु ग्लोबल नॉन वायोलेंट अवेकनिंग* (Gandhi's Contribution to Global Non-Violent Awakening) रखा था और एक अंतर्राष्ट्रीय, अंर्तध्यात्मिक, अंर्तनुशासनिक वैश्विक संस्थान की आवश्यकता पर बल दिया ताकि "गांधी की परम्परा और अन्य अहिंसात्मक संसाधनों को वैश्विक सर्वोदय (अहिंसात्मक सर्वमंगल) के लिए वैश्विक सत्याग्रह (सत्य और प्रेम पर आधारित अहिंसात्मक कार्य) में समाविष्ट किया जा सके।" सारे विरोधों के बावजूद 1994 में होनोलूलू में उन्होंने 'सेन्टर फॉर ग्लोबल नॉन वायलेंस' (Centre for Global Non-Violence) की स्थापना करने में सफलता पाई, उसके पश्चात उन्होंने उससे भी अधिक महत्वाकांक्षी अगली योजना 'नॉन किलिंग ग्लोबल पॉलिटिकल साइंस' (Non Killing Global Political Science) की रूपरेखा बनाई। इसी शीर्षक से प्रकाशित उनकी पुस्तक, जो सन् 2002 में प्रकाशित हुई, में प्लूटो के समय से लेकर आज तक के राजनीतिक दर्शन के विकास का सर्वेक्षण है, हाल के दशकों में हुए अनेक सफल अहिंसात्मक संघर्षों की सूची है तथा एक अहिंसात्मक भूमण्डलीय समाज की संकल्पना है जहां "कोई हत्या नहीं, हत्या करने की धमकियां

नहीं और हत्या के लिए विशेष रूप से बनाए कोई हथियार नहीं है।" प्रोफेसर विलियम स्मिरनॉव, उपाध्यक्ष, 'रशियन पोलिटिकल साइंस एसोसिएशन' (Russian Political Science Association) एवं 'इंटरनेशनल पोलिटिकल साइंस एसोसिएशन' (International Political Science Association) ने पुस्तक की प्रशंसा करते हुए लिखा "इस अनोखी पुस्तक के मूल विचारों को इक्कीसवीं सदी में मानव समाज के लिए साधारण मूल्यों का आधार और साथ ही उनके कार्यान्वयन के रूप में देखा जाना चाहिए।"

आज के आतंकवाद से ग्रसित वैश्विक परिप्रेक्ष में गांधी की 1909 में लिखी पुस्तक *हिन्द स्वराज* (Hind Swaraj) जो 'हिंसा की भारतीय विचार धारा के उत्तर के रूप में' और 'घृणा के स्थान पर प्यार' की शिक्षा के रूप में लिखी गई, अधिक प्रासंगिक है। तदुपरांत उन्होंने लिखा, "यह *हिन्द स्वराज* (Hind Swaraj) एक प्रयास था- क्रांतिकारियों को एक ऐसा विकल्प देने का जो अपरिमित रूप से उच्च कोटि का हो, जिसमें आत्म-त्याग और शौर्य भावना सन्निहित हो जो क्रांतिकारी में होनी चाहिए।"

भारतीय युद्धप्रिय राष्ट्रवादियों की हिंसक गतिविधियों के संबंध में उन्होंने 1908 में ही लिखा था, "मैं उनके उच्च उद्देश्यों से कितनी भी सहानुभूति रखूं और सराहना करूं, मैं हिंसात्मक तरीकों से कभी भी सहमत न होने वाला विरोधी हूं— चाहे उनके कितने ही महानतम् कारण क्यों न हों।.... हिंसा के कार्य, बचे हुए लोगों के मन में तीखी कड़ुआहट और विध्वंसकारी के मन में पाशविकता व क्रूरता पैदा करते हैं"....

दिसम्बर 1928 में *द कर्स ऑफ एसेसिनेशन* (The Curse of Assasination) शीर्षक से लिखे आलेख में उन्होंने लिखा, "अंग्रेजी पुस्तकों ने हमें यह सिखाया कि हम मार-धाड़ करने वाले खलनायकों, डाकुओं, तोड़-फोड़ करने वालों की भी एक वीर नायक के रूप में सराहना करें। अखबारों में इस प्रकार के कार्यों की झूठी-सच्ची भड़काऊ कहानियों के कॉलम भरे होते हैं। हममें से कुछ लोगों ने किसी भी जोखिम भरे कार्य की प्रशंसा करने की कला सीख ली है। इसे एक अपशगुन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं माना जा सकता। निर्दयतापूर्वक किए गए डाके या हत्या को एक महान कार्य कदापि नहीं माना जा सकता।"

सितम्बर 1931 में, लन्दन के एमर्सन क्लब में उन्होंने साग्रह कहा, "युद्ध, उन लोगों को भ्रष्ट कर देता है जिन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है। वह कोमल चरित्र के लोगों को कठोर बना देता है। वह नैतिकता की हर सुन्दरता को विकृत कर देता है। युद्ध का रास्ता लालच के दीवानेपन से भ्रष्ट और मलिन होता है हत्या के खून से लाल होता है। हमारे लक्ष्य का यह मार्ग नहीं है।" यदि गांधी का 'प्रस्ताव': घृणा के स्थान पर प्रेम, आज के घोर तत्ववादियों, विद्रोहियों, जिहादी

आत्मघाती मानव बमों को स्वीकार हो, तो उनके अपने-अपने नियत कार्यक्रम कहीं अधिक ठीक से पूरे हो सकेंगे और यह दुनिया निश्चित ही उसमें रहने वालों के लिए एक पूर्ण सुरक्षित स्थान होगी। यह तथ्य कि गांधीजी का यह 'प्रस्ताव' लगभग सौ वर्ष पूर्व दिया गया था, इस बात का प्रमाण है कि उनकी दूरदृष्टि कितनी असाधारण थी। इस विषय में योहान गाल्टुंग प्रशंसा करते हुए लिखते हैं- "गांधी निश्चित रूप से एक क्रांतिकारी थे— पश्चिमी सभ्यता के विभिन्न क्रांतिकारियों से कहीं अधिक— गांधी नें क्रांति में ही क्रांति ला दी।"

संयुक्त राष्ट्र संघ, न्यूयार्क के भवन पर निर्मित 'अहिंसा' शिल्प

कलाकार– नंदलाल बोस

"इस परमाणु बम से उत्पन्न दारुण घटना से उचित रीति से जो शिक्षा मिल सकती है वह यह है कि जिस प्रकार प्रतिहिंसा से हिंसा का अंत नहीं हो सकता उसी प्रकार किसी और बम से इस बम का निराकरण नहीं हो सकता। मनुष्य जाति को हिंसा से तो अहिंसा के सहारे ही छुटकारा पाना है।"

वैश्विक परिपेक्ष्य में गांधी के दर्शन व रणनीतियों का समर्थन

'हिन्द स्वराज' में गांधी ने आधुनिक सभ्यता में अन्तर्निहित घृणित अमानवीयता, हिंसा और युद्ध भावना की कटु आलोचना की है। कई आलोचकों ने इसे पूरी तरह गलत ठहराया। राजमोहन गांधी ने भी इन विचारों को 'पूर्वाग्रही दृष्टिकोण' तथा 'एक योद्धा का घोषणापत्र' कहा फिर भी वे दीवानेसाब से सहमत हैं कि "1909 की गर्मियों में ही गांधी को सैनिक संघर्षों की वास्तविकता के बारे में उन कट्टर क्रान्तिकारियों की अपेक्षा अधिक ज्ञान था जो इतने उत्साह से उसके विषय में उनसे बात करते थे।" आगे वे कहते हैं, "1909 में गांधी ने बोअर और जूलु युद्ध बहुत निकट से देखे थे.... और स्वयं उन पर दक्षिण अफ्रीका में तीन हिंसक प्रहार हुए थे।" सी. एफ. एन्ड्रयूज बताते हैं कि 'हिंद स्वराज' लिखते समय गांधी पर टॉल्सटॉय का सबसे अधिक प्रभाव था और अपनी पुस्तक *दि स्लेवरी ऑफ अवर टाइम्स* (The Slavery of Our Times) में टॉल्सटॉय ने हिंसा को आधुनिक सभ्यता से जोड़ा था। इसके अलावा गांधी ने एडवर्ड कारपेन्टर की पुस्तक *सिविलाइजेशनः इट्स कॉज एन्ड क्योर* (Civilisation: Its Cause and Cure) पढ़ी थी। इसमें इसे रोग की संज्ञा दी गई थी।

किन्तु फिर भी उनकी कुछ टिप्पणियां ठीक वैसी ही सच साबित हुई हैं जैसा कि उन्होंने उल्लेख किया था। 'हिंद स्वराज' में चाहे जितना भी पूर्वाग्रह रहा हो, वास्तविकता यह है कि उनका अधिकांश दृढ़-कथन ठीक वैसा ही सच साबित हुआ है जैसा कि उन्होंने उल्लेख किया है, "पहले वे चमड़े के वस्त्र पहनते थे और भालों को हथियार के रूप में प्रयोग में लाते थे, अब वे लम्बी पतलून पहनते हैं और साथ में पांच या उससे अधिक कारतूस वाली बंदूकें रखते हैं.... पहले मनुष्य चौपहिया गाड़ी में सवारी करता था आज वे 400 या उससे अधिक मील प्रति-दिन की गति से रेलगाड़ी में सफर करते हैं इसे सभ्यता की पराकाष्ठा कहा जाता है। यह कहा जाता है कि जैसे-जैसे मनुष्य उन्नति करेगा वह हवाई-यानों में सफर कर विश्व के किसी भी भाग में मात्र कुछ घंटों मे पहुंच जाएगा। मनुष्य को अपने हाथ-पैर इस्तेमाल नहीं करने पड़ेंगे। वे एक बटन दबाएंगे और उनके समीप उनके वस्त्र पास में उपलब्ध होंगे। वे दूसरा बटन दबाएंगे और अखबार उनके पास पहुंच जाएगा; तीसरा बटन दबाते ही उनकी मोटर कार उनकी प्रतीक्षा कर रही होगी.... पहले जब मनुष्यों की आपस में लड़ाई होती थी उनका सामना एक दूसरे की शारीरिक शक्ति से होता था; अब यह संभव है कि एक ही व्यक्ति पहाड़ की चोटी से गोलियां चला कर हजारों व्यक्तियों को धराशायी कर दे.... इसे आधुनिक सभ्यता कहा जाता है। पहले लोगों को शारीरिक दबाव और जोर-जबरदस्ती से दास बनाया जाता था। अब वे धन के लालच और उससे खरीदी जा सकने वाले आराम और ऐश्वर्य के गुलाम हैं। अब मनुष्यों को ऐसी बीमारियां हो रही

है जिनकी पहले किसी ने कल्पना भी न की थी और चिकित्सकों की एक फौज उनके निदान का तरीका खोज रही है और इसीलिए अस्पतालों की संख्या बढ़ गई है। यह आधुनिक सभ्यता की परीक्षा है। यदि इसके विरुद्ध कोई व्यक्ति बोलता है तो उसे अज्ञानी समझा जाता है। यह सभ्यता न तो नैतिकता जानती है न धर्म। उसके समर्थक सीधे रूप में कहते हैं कि उनका काम नैतिकता सिखाना नहीं है।.... यह सभ्यता धर्म विरोधी है और इसने यूरोपीय लोगों पर इतना आधिपत्य जमा लिया है कि वे अर्ध-विक्षिप्त से नजर आते हैं.... मुहम्मद की शिक्षा के अनुसार यह एक 'पैशाचिक सभ्यता' है। हिन्दुत्व में इसे 'कलियुग' कहा जाता है।"

यह भी सच है कि 'हिंद स्वराज' लिखे जाने के समय से 40 सालों से भी कम समय में करीब 6 करोड़ लोग, दो विश्व युद्धों में यूरोप, उत्तरी अफ्रीका, पूर्व और दक्षिण एशिया में तथा स्पेन और ग्रीस के गृह युद्धों में— आम नागरिक— मारे जा चुके हैं। प्रत्येक युद्धरत देश ने अत्यधिक विध्वंसक अस्त्रों का प्रयोग किया, यहां तक कि अमेरिका ने जापान के दो शहरों में एटम बम भी गिराए। जर्मनी में युद्ध के अंतिम तीन वर्षों में 60 लाख यूनानियों, जिप्सियों, सम-लैंगिकों और मानसिक रूप से विकलांग व्यक्तियों को गैस चैम्बरों में होम कर दिया गया। आधुनिक सभ्यता के अग्रणी कुछ देशों द्वारा किए गए ऐसे घृणित अपराधों को गांधी द्वारा 'पैशाचिक' करार दिया जाना, संभवतः विकृत नहीं जितना कि शुरू में वह प्रतीत हुआ था। आज कई व्यक्ति विशेषतः जर्मनी और इटली के निवासी सरलता से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि नैपोलियन और मुसोलिनी वास्तव में आधे-पागल थे।

भारत के बंटवारे के विरुद्ध गांधी का कठोर विरोध भी पूरी तरह तर्क-संगत सिद्ध हुआ है। लॉर्ड माउन्टबैटन के देश के बंटवारे के निश्चय की घोषणा के तुंरत बाद उन्होंने सजग किया था, "यदि आप अपने पीछे अव्यवस्था छोड़ कर नहीं जाना चाहते तो आपको निश्चय करना होगा और सम्पूर्ण भारत के प्रशासन को.... एक ही दल पर छोड़ कर ज़ाना होगा।" उन्होंने स्पष्ट किया कि जिन्ना शासित सरकार भी वह 'एक दल' हो सकता है यदि समस्त भारत का विभाजन न हो और यह सरकार समस्त भारत के लोगों के हित के लिए कार्य करे। जिन्ना की 'दो देशों' की दलील का प्रबलता से विरोध करते हुए उन्होंने क्रोधपूर्वक पूछा 'भारत एक देश क्यों नहीं है? क्या यह मुगल काल के समय में एक नहीं था? क्या भारत दो देशों से मिल कर बना है? यदि ऐसा है तो केवल दो ही क्यों? क्या ईसाई तीसरे, पारसी चौथे नहीं है? क्या चीन के मुसलमान दूसरे चीनियों की अपेक्षा अलग देश में हैं?.... मैं साहस से यह कहता हूं कि जिन्ना और वे सभी जो उनकी तरह सोचते हैं, इस्लाम की कोई सेवा नहीं कर रहे हैं। वे इस्लाम के हर शब्द में निहित संदेश की गलत व्याख्या कर रहे हैं।" तदुपरांत् जब सचमुच में पाकिस्तान एक वास्तविकता बनने जा रहा था, उन्होंने लिखा, "सेना का विभाजन होने जा रहा है.... सेना का यह विभाजन हर

देशभक्त के हृदय में भय और गलतफहमी पैदा कर रहा है। क्यों दो सेनाएं बनाई जा रही हैं? क्या वे विदेशी आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिए हैं या एक दूसरे से युद्ध करने के लिए....।"

बंटवारे के पहले और उसके दौरान जिस कत्ले-आम की शुरुआत हुई, चार भारत-पाकिस्तान युद्ध (कारगिल सहित) और साथ ही पाकिस्तान का 25 वर्षों के भीतर लहू-लुहान होते हुए अलगाव के बारे में, जैसा कि राजमोहन गांधी निश्चयपूर्वक कहते हैं, "गांधीजी भविष्य-दृष्टा थे, जो उन्होंने भविष्य का सही दृश्य वर्णित किया।" वे इंगित करते हैं कि भारत की स्वतंत्रता के कुछ वर्षों के बाद ब्रिटेन ने 'नो इन्डेपेन्डेंस बिफोर मेजॉरिटी रूल' (No Independence Before Majority Rule) (NIBMAR) नियम लागू करना प्रारम्भ किया। "यदि यह भारत पर पहले लागू किया जाता तो देश का विभाजन रोका जा सकता था। किन्तु भारत के लिए 'हर मेजेस्टीज गवर्नमेंट' (Her Majesty's Government) (HMG) के सिद्धान्त के अनुसार अखिल भारतीय सहमति के पहले, बहुमत का नियम लागू नहीं किया गया।" इसके कारण, जिन्ना को उन सभी प्रस्तावों पर, जो उन्हें अस्वीकार थे, निषेधाधिकार का अवसर मिल गया, तथा पाकिस्तान को हथियाने का मौका मिल गया, जिसे हासिल करना उनका दृढ़ संकल्प था, चाहे वह एक कटा हुआ, दीमक खाया हिस्सा क्यों न हो। एक धर्म-निरपेक्ष गणराज्य की तरह शुरु होकर पाकिस्तान शीघ्र ही छिन्न-भिन्न और विकृत देश रह गया- 1958 में पहला सैनिक विद्रोह हुआ और 13 सालों तक चला। दो अन्य विद्रोह हुए जिनके बीच 11 और 8 सालों के दो जनतंत्रीय शासन के अन्तराल थे। 62 साल के अपने अस्तित्व में केवल 29 साल का जनतांत्रिक शासन पाकिस्तान में सम्भव हो सका है। उसके सैनिक शासक, जिनका अपना कोई राजनैतिक आधार नहीं है, इस्लामिक मौलिकता-वादियों को समर्थन देते और उनका मन जीतने की कोशिश में लगे रहते हैं। पाकिस्तान के तीन प्रधानमंत्रियों के सलाहकार तथा श्रीलंका में रहे पूर्व राजदूत हसन हकानी ने अपनी पुस्तक *पाकिस्तानः बिटवीन मौस्क एंड मिलिटरी* (Pakistan: Between Mosque and Military) में सेना, शासक और इस्लामी मौलवियों की सांठ-गांठ तथा दो राष्ट्र के सिद्धान्त का आने वाली पीढ़ियों के युवा वर्ग पर घातक प्रभाव की चर्चा की है। वे बताते हैं कि इस्लामी राष्ट्रवाद, भारत-विरोधी प्रचार, और विदेशी सैनिक व आर्थिक सहायता के सैद्धान्तिक तिपाए पर ही पाकिस्तान अपनी राष्ट्रीय एकता की रक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका निभा पा रहा है।

बंगलादेश खो देने के बाद, पाकिस्तान के सैनिक व गैर-सैनिक दोनों तरह के शासक लगातार गुप्त रूप से आतंकवाद का इस्तेमाल कर कश्मीर को भारत से अलग करने में तथा

अफ़गानिस्तान में सामरिक जड़ें मजबूत करने का प्रयत्न करते रहे हैं। आतंकवादियों ने वहां अपना घर बना लिया है। उनमें से एक दल ने दिसम्बर 2007 में पूर्व प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो की हत्या कर दी। उसके बाद से इस्लामाबाद, लाहौर, कराची, पेशावर में और रावलपिन्डी के सैन्य-गढ़ पर अनेक आतंकवादी आक्रमण किए जा चुके हैं जिनके फलस्वरूप असंख्य मौतें और भयंकर विनाश हुआ है। अनेक राजनैतिक व सुरक्षा-विश्लेषक पाकिस्तान को अब एक 'असफल राष्ट्र' और 'आतंकवाद का पालक' मानते हैं। पाकिस्तान 'आतंक का पालक' निष्चित रुप से कहा जा सकता है, ख़ासतौर पर इसलिए किऐबटाबाद के फ़ौजी नगर के किलेनुमा एक घर में 2005 से गुप्त रुप से रहते हुए ओसामा बिन लादेन और उसके परिवार का मारा जाना इस नाम की सार्थकता की पुश्टिकरता है। यह घर पाकिस्तान की जानीमानी मिलिटरी एकेडमी के एकदम समीप स्थित है। उसे 2 मई 2011 को हेलिकॉप्टर पर सवार एक अमेरिकी नौसेना की टीम ने मारा।

हिरोशिमा और नागासाकी में गिराए गए एटम बमों की दुखद त्रासदी के पश्चात परमाणु-अस्त्रों के संबंध में गांधीजी के उद्‌गार यूं स्पष्ट रूप से व्यक्त हुए थे, "बमबारी की चरम दुर्घटना से तर्क संगत रूप से यही शिक्षा ली जानी चाहिए कि इसे जवाबी बम द्वारा नहीं समाप्त किया जा सकता। अहिंसा ही केवल वह वस्तु है जिसे एटम बम नष्ट नहीं कर सकता है.... अब जब तक विश्व में अहिंसा को नहीं अपनाया जाता, स्पष्टतः पूरी मानव-जाति का आत्मघात ही इसका परिणाम होगा।" अलबर्ट आइंस्टाइन ने इसी प्रकार के मनोभाव की पुनरावृत्ति की, "एटम की अपरिमित शक्ति ने हमारी सोच के अतिरिक्त सब कुछ बदल दिया है; अतएव हम एक ऐसे महासंकट की ओर अग्रसर हो रहे हैं जिसकी तुलना भी नहीं की जा सकती। यदि मनुष्य जाति को जीवित रहना है तो हमें सोच के नए तरीकों को अपनाने की आवश्यकता होगी।"

यद्यपि स्वतंत्र भारत ने गांधी के अहिंसात्मक राष्ट्रीय सुरक्षा के विचारों को नकारा किंतु उसने पूरे चार दशकों तक दृढ़ता से परमाणु शस्त्रों का निर्माण, परीक्षण और एकत्रीकरण का विरोध 'मानवता के विरुद्ध अपराध' कह कर किया। फरवरी 1988 में संयुक्त राष्ट्र जनरल एसेम्बली के निरस्त्रीकरण पर आयोजित तीसरे विशेष सत्र में प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने दावे के साथ कहा कि, "परमाणु अस्त्र उस पूरी मानव सभ्यता को विलुप्त कर डालेंगे, जिसे मनुष्य ने हजारों वर्षों के अथक परिश्रम और मुश्किलों से बनाया। परमाणु शस्त्र वाले राष्ट्रों और परमाणु शस्त्र विहीन राष्ट्रों दोनो के लिए ही इस प्रकार के सर्वनाश का समान खतरा है। यह अत्यावश्यक है कि परमाणु हथियारों को पूर्णतः समाप्त कर दिया जाए.... वैश्विक संहार के ठीक विपरीत आश्वासन के आधार पर शांति की निश्चित घोषणा की जानी चाहिए। हमें अहिंसा और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व पर आधारित एक विश्वमंडल की आवश्यकता है।" उन्होंने तीन स्तरों में सारे परमाणु

हथियारों के सन् 2010 तक नष्ट करने की रूप-रेखा बनाई और सबसे इस कार्य योजना को अपनाने का आग्रह किया।

दुर्भाग्य से 11 मई 1998 को एक चरमपंथी राष्ट्रवादी सरकार ने, परमाणु अस्त्र रहित विश्व के संबंध में भारत के लम्बे समय से चले आ रहे दुष्कर संघर्ष को, आणविक बम के तीन धमाकों द्वारा एक क्षण में तिरोहित होने पर बाध्य कर दिया। *आउटलुक* (Outlook) पत्रिका ने इस कार्य का वर्णन 'सारे जुओं की जननी' के रूप में किया और प्रश्न किया कि क्या यह कार्य राष्ट्रीय हित में किया गया अथवा सत्तारूढ़ पार्टी के हित में किया गया? नेताओं ने इस कार्य की सार्थकता भारत की संकटापन्न सुरक्षा व्यवस्था के कारण उचित ठहराई। 'पिशाच द्वारा धार्मिक ग्रन्थ का उद्धरण' देने की तरह उनमें से एक ने गांधी का आह्वान करते हुए तर्क दिया कि अहिंसा का परिपालन केवल उनके द्वारा हो सकता है जिनमें एक दानव का बल हो और यह कि 'परमाणु आधिपत्य आदेश की अवहेलना करना और यह घोषणा करना कि उसके प्रयोग में पहल नहीं करेंगे, दोनों मिलकर एक व्यवहारिक अहिंसात्मक, परमाणु विरोधी योजना बनाते हैं।' तत्कालीन गृहमंत्री ने दंभपूर्ण वक्तव्य दिया कि 'परमाणु हथियारों के उपार्जन ने भारत की सुरक्षा के वातावरण को बदल डाला है, अतः अब कोई भी देश भारत पर आक्रमण करने की सोच भी नहीं सकेगा', जबकि दो सप्ताहों के भीतर ही पाकिस्तान ने भारत के सदृश्य परमाणु अनुरूपता स्थापित कर ली और उसके कुछ महीनों के बाद ही गुप्त रूप से अपने सैन्य दलों को कारगिल भेज दिया। उसके बाद जो युद्ध हुआ वह पिछले भारत-पाक युद्धों की तुलना में छोटा था। फिर भी जब लड़ाई में पाकिस्तान का पलड़ा हल्का पड़ने लगा तो उसने यह इशारा करना शुरू कर दिया कि वह 'अंतिम अस्त्र' का प्रयोग कर सकता है। पाकिस्तानी सुरक्षा विश्लेषक हुसैन हक्कानी और संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेश उप-सचिव स्ट्रोब टैलबॉट ने अपनी पुस्तकों *पाकिस्तान बिटविन मॉस्क एंड मिलेट्री* (Pakistan between Mosque and Military) तथा *इंगेजिंग इंडिया* (Engaging India) में यह पुष्टि की है कि पाकिस्तान की वह धमकी खोखली धमकी नहीं थी और कारगिल संघर्ष के अंतिम चरण में पाकिस्तान ने निश्चित रूप से एक 'परमाणु आयाम' हासिल कर लिया था। पाकिस्तान के सेना प्रधान, जिहादी मानसिकता वाल और राजनैतिक रूप से अशांत परिदृश्य

सौजन्यः आउट लुक पत्रिका

पर जब हम विचार करते है तो पाते हैं कि भारत के परमाणु हथियारों ने सुरक्षा संवर्धन के स्थान पर अपने लिए बहुत बड़ा नया खतरा पैदा कर दिया हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्व रक्षा सचिव **रॉबर्ट मैक्नमारा** ने *फारेन पालिसी* (Foreign Policy) के स्प्रिंग (Spring) 2005 के अंक में अपने आलेख *न्यूक्लियर एपोकैलिप्स* (Nuclear Apocalypse) में लिखा कि यदि बुश प्रशासन और कांग्रेस सावधानी पूर्वक परमाणु हथियारों की सैन्य उपयोगिता, उनके प्रयोग संबंधी नैतिक और कानूनी दृष्टिकोण और वर्तमान वैश्विक संदर्भ में दुर्घटनावश प्रयोग के खतरों पर विचार करें तो वे इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि "जैसा कि मेरा और अधिकतर वरिष्ठ सैनिक नेताओं, राजनीतिज्ञों और नागरिक सुरक्षा विशेषज्ञों का मत है कि हमें तत्काल सारे परमाणु हथियारों का सम्पूर्ण रूप में अथवा सम्पूर्णता की हद तक उन्मूलन कर देना चाहिए। बहुत से व्यक्तियों के लिए पिछले चालीस वर्षों से चली आ रही युद्ध तकनीकों से चिपके रहने का आकर्षण बहुत बड़ा है। किंतु ऐसा करना एक बहुत गंभीर त्रुटि होगी जो कि सभी राष्ट्रों के लिए भयंकर खतरा है।"

हारवर्ड के प्रोफेसर **नोआम चोम्स्की** ने *इंडिपेन्डेन्ट* (Independent) के 6 अगस्त 2005 के अंक में अपने एक लेख, जिसका शीर्षक था *वी मस्ट एक्ट नाउ टु प्रीवेन्ट एनदर हिरोशिमा-ऑर वर्स* (We Must Act Now to Prevent Another Hiroshima— or Worse) में इसी प्रकार के विचार की पुनरावृत्ति की। "लंदन में हुए हाल के विस्फोट और दुर्भाग्यपूर्ण घटना पुनः स्मरण दिलाते हैं कि किस प्रकार से आक्रमण और उसकी प्रतिक्रिया का चक्र अनुमान से भी अधिक हो सकता है, यहां तक कि हिरोशिमा और नागासाकी की भीषण घटनाओं से भी अधिक भयावह होने की स्थिति तक।" उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका की तत्कालीन 'प्रत्याशित आत्म रक्षा' की नीति पर रोष व्यक्त करते हुए राष्ट्रपति जिमी कार्टर का उद्धरण दिया कि "इस क्षति का प्रमुख अभियुक्त अमेरिका है। यह दावा करते हुए कि वह विश्व को ईराक, लीबिया, ईरान और उत्तरी कोरिया के तीव्रगति से बढ़ते हुए परमाणु जनित खतरों से बचा रहा है, अमेरिकी नेताओं ने न केवल वर्तमान संधि समझौते का परित्याग किया है बल्कि एन्टी बैलिस्टिक मिसाइल, धरती में प्रक्षेपण करने वाले 'बंकर बस्टर' और संभवतः कुछ नए छोटे बमों सहित नए अस्त्रों के विकास और उनके परीक्षण की योजना को कार्यान्वित करने का दावा भी किया है। उन्होंने पिछली प्रतिज्ञाओं का परित्याग तो किया ही है और अब उन्होंने परमाणु शक्तिविहीन राष्ट्रों के विरुद्ध परमाणु शस्त्रों के प्रथम प्रयोग की आशंका भी पैदा कर दी है।"

जनवरी 2009 में **बराक ओबामा** के संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का पद संभालने के बाद से इस आशा की किरण जगी है कि इस विषय में अमेरिका की नीति में कुछ बदलाव आए। उन्होंने आशा व्यक्त की है और अपने अथक प्रयासों का प्रण लिया है कि विश्व को परमाणु क्षस्त्रों से छुटकारा दिलाया जाए।

हिरोशिमा और नागासाकी की दुखद घटना के साठ वर्षों बाद, परमाणु अस्त्रों के कारण भयंकर संभावित खतरों के संबंध में गांधी, आइंस्टाइन, बरट्रैन्ड रसल जैसे अन्य विचारकों की भविष्य-सूचक बुद्धिमत्ता को अब विश्व के परम शक्तिमान राष्ट्र के एक छोटे किंतु प्रभावपूर्ण समूह द्वारा स्वीकार किया गया है। खेद है कि गांधी के अपने देश में हाल में ही अंर्तमहाद्वीपीय प्रक्षेपक अस्त्रों के विकास की घोषणा की गई है और नौसेना प्रमुख ने यह कहा है कि 'भारत के पास हद से ज्यादा सर्वनाशी आघात करने की 'दोहरी क्षमता' होनी चाहिए और भारत को इस संबंध में अपने संदेहों को छोड़कर केवल तरीके नहीं ढूंढने चाहिए बल्कि अपनी शक्ति का प्रदर्शन दूसरे देशों में भी करना चाहिए।'

वे सभी लोग जो वाक-चातुर्य द्वारा 'हद से ज्यादा सर्वनाशी' दोहरे स्तर के आघात का समर्थन करते हैं यह भूल जाते है कि इस प्रकार की क्षमता स्वतः पहले आघात के लिए प्रेरित कर सकती है। परमाणु शस्त्र-नीति के महागुरु हेनरी किसिंगर ने 'साल्ट 2' पर अमेरिका की अंतर्राष्ट्रीय संबंध विदेशी नीति समिति में घोषणा करते हुए इंगित किया था, "परमाणु युग में अप्रत्याशित विनाशक शक्ति के अस्त्रों के साथ साथ उनकी अंर्तमहाद्वीपों तक अति-शीघ्र पहुंच सकने की क्षमता के साथ साथ अचानक किए जाने वाले आक्रमण की क्षमता के कारण सभी अत्यन्त असुरक्षित हैं। इन नई और अत्यन्त संवेदनशील परिस्थितियों में इस निष्कर्ष से बचना असम्भव है कि जिस पक्ष की प्रतिकार करने की क्षमता कमजोर होगी, संकट के समय में उसकी प्रतिक्रिया इतनी तीव्र होगी कि महाप्रलय की आशंका बढ़ जाएगी। वह देश जिसकी सामरिक शक्ति सुरक्षित नहीं होगी वह न चाहते हुए भी अपने विरोधी के पहले आक्रमण करने की प्रतीक्षा किए बिना स्वयं पहले वार करेगा क्योंकि उसे यह आभास होगा कि वह जीवित नहीं रह पाएगा।"

परमाणु हथियारों के समर्थक यह स्मरण करना चाहेंगे कि एक परमाणु शक्तिविहीन उत्तरी वियतनाम ने परमाणु अस्त्रों से सज्जित अमेरिका का सामना किया और तदुपरांत परमाणु अस्त्र वाले चीन का सामना भी किया और दोनों अवसरों पर विजयी हुआ। स्वेज नहर के विषय में परमाणु शक्ति-विहीन मिस्र ने सफलता पूर्वक परमाणु शक्ति से लैस ब्रिटेन का सामना किया। सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है — 1971 में अमेरिकी परमाणु के भयादोहन के बावजूद अपरमाणुवादी भारत द्वारा श्रीमती इंदिरा गांधी के निर्भीक नेतृत्व में बांग्लादेश का स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में सुनिश्चित किया जाना। इन सभी उदाहरणों में बल के बदले न्याय, कायरता के स्थान पर साहस और बेहतर अस्त्र-शस्त्र के स्थान पर अदम्य इच्छा-शक्ति की विजय हुई।

स्वतंत्रता पाने के बाद से जनतांत्रिक और धर्म-निरपेक्ष नीतियों को सुरक्षित रखने में भारत की सफलता एक महान उपलब्धि है। यद्यपि नेताओं और संविधान बनाने वालों ने गांधी की

'एक केन्द्रित वृत्तों' की ग्राम आधारित प्रजातंत्रीय विचारधारा तथा अर्थव्यवस्था पर कम से कम राजकीय नियंत्रण किए जाने के विचारों की अवहेलना की; उन्होंने वैस्टमिनिस्टर शैली का संसदीय प्रजातंत्र तथा सोवियत समाजवाद द्वारा संयोजित अर्थव्यवस्था को अपनाया। देश ने इन दोनों निर्णयों का एक बहुत बड़ा मूल्य चुकाया है। गांधी के प्रजातंत्र में, जिसमें जिला, राज्य और राष्ट्र स्तर पर पंचायतों के लिए परोक्ष रूप में चुनाव किए जाते, एक खर्चीली चुनाव व्यवस्था की आवश्यकता न होती जो आज के समय में भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा कारण है। संसदीय सीटों के अधिकतर प्रत्याशी अब चुनावों में कम से कम तीन करोड़ रुपए खर्च करते हैं। जबकि उनमें से एक ही प्रत्याशी विजयी होता है, पर हर प्रत्याशी किसी न किसी स्रोत से धन एकत्र करता है। यही बात राज्य, जिले और स्थानीय स्तर के चुनावों के लिए भी लागू होती है, यद्यपि उनमें अपेक्षाकृत कम धनराशि खर्च होती है। विजयी प्रत्याशी अपने धन को पुनः प्राप्त करने के लिए अपने पद का लाभ उठाते हुए अनुचित तरीकों को अपनाते हैं। हथियारों की खरीद तथा सेना के लिए कफन संबंधी समान में हेराफेरी, कानूनी कागजातों और रसीदी टिकटों की जालसाजी, सदन में प्रश्नों को उठाने के लिए तथा अपने क्षेत्र के विकास के लिए नियत धन-राशि की अदायगी के लिए संसद सदस्यों द्वारा धन की मांग, आदि कुछ वीभत्स चौंकाने वाले कटु प्रमाण हैं। 'ट्रांसपेरेन्सी इंटरनेशनल', 2004 के 'वैश्विक भ्रष्टाचार मानक' (Global Corruption Barometer) द्वारा, 'भ्रष्टाचार अवबोधन सूचक' (Corruption Perception Index), जिसमें 10 (अत्यन्त स्वच्छ) से शून्य (अत्यंत भ्रष्टाचारी) तक का मापक्रम निर्धारित किया है, भारत का स्थान 2.7 के अत्यन्त निचले स्तर पर दर्शाया गया है! वर्ष 2008 तक यह सूचकांक नाममात्र को बढ़ कर केवल 3.4 तक पहुंचा है।

1980 के दशक के उत्तरार्ध से गांधी के प्रबुद्ध सर्व-धर्म-सम्भाव अभिगम का तथा भारतीय संविधान में घोषित मौलिक अधिकारों का स्पष्ट तिरस्कार करते हुए चरम दक्षिण पंथी साम्प्रदायिक समुदाय, हिन्दुत्व, हिन्दू राष्ट्र, अल्पसंख्यकों को प्रसन्न करने वाले प्रत्यय जैसे रथ-यात्राएं, संत सम्मेलन, मुस्लिमों तथा ईसाईयों पर मौखिक तथा शारीरिक हमलों का तीखा प्रचार कर रहे हैं। साथ ही ये समुदाय उनके आराधना-स्थलों को नष्ट करने का प्रयास भी कर रहें हैं, जिसमें से सबसे विध्वंसक प्रयास 6 दिसम्बर 1992 को बाबरी मस्जिद को नष्ट करना है। इसके साथ-साथ वे हिन्दुत्व के मानसिक जनक वीर सावरकर और विचारक एम. एस. गोलवलकर का गुणगान करते हैं जिन्होंने अपनी पुस्तक *वी ऑर अवर नेशनहुड डिफाइन्ड* (We or Our Nationhood Defined) में इस विचार की महत्ता और व्याख्या बखानी है। वे लिखते हैं, "हिन्दुस्तान में विदेशी जातियां (सारे मुस्लिम और ईसाई) या तो हिन्दू संस्कृति और भाषा अपना लें, हिंदू धर्म का आदर करना सीखें, और उसका सम्मान करें, हिन्दू जाति और संस्कृति की यशोगाथा के अलावा अन्य किसी विचार का ध्यान न करें, अपना पृथक अस्तित्व छोड़कर हिन्दू

धर्म में समा जाएं या हिन्दू राष्ट्र के अधीन होकर देश में रहें, बिना किसी मांग के, बिना किसी प्राथमिकता वाले व्यवहार के— यहां तक कि उन्हें नागरिक अधिकार भी नहीं मिलने चाहिए। इसके अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई विकल्प नहीं है और न होना चाहिए।" इस विचार, और गांधीजी के भारत के सपने, जिसमें सारे धर्म और उनके अवलम्बी बराबर से सम्मानित हों और समान अधिकार पाएं, में इससे अधिक विरोधाभास नहीं हो सकता। दुर्भाग्यवश, अयोध्या में भव्य राम-मंदिर के निर्माण के बहाने इस विचार को अधिक बढ़ावा मिला तथा इस विचार-धारा को काफी राजनैतिक लाभ मिला। 1998 में इस दल ने 13 अन्य दलों के साथ मिलकर सत्ता संभाली। यद्यपि एक साल के भीतर ही इस सरकार का पतन हो गया, पर 1999 के चुनावों के बाद यह दल दुबारा सत्ता में आया। इसने अच्छे शासन और प्रगति का वादा किया था, पर कानून-व्यवस्था तथा सामाजिक दशा काफी हद तक खराब हो गई। गुजरात के गोधरा, अहमदाबाद तथा अन्य नगरों में फरवरी 2002 में मुस्लिम विरोधी नृशंस हत्याकांड हुए। हैरानी की बात है कि इसके बावजूद दिसम्बर 2002 के प्रदेश चुनावों में इस दल को भारी बहुमत मिला। इसी तरह की मुस्लिम-विरोधी और ईसाई-विरोधी रणनीतियां अपनाकर मध्य प्रदेश, उड़ीसा और कर्नाटक में राजनैतिक लाभ उठाए गए। सामाजिक सामंजस्य और राष्ट्रीय सुरक्षा पर इस तरह की नीतियों के विषैले प्रभावों का स्पष्ट वर्णन बीरेन्द्र प्रकाश और प्रदीप लाहिरी (अवकाश-प्राप्त, वरिष्ठ आई. ए. एस. अधिकारी) ने अपनी पुस्तकों *हिन्दुत्व डिमिस्टिफाइड* (Hindutva Demystified) तथा *डिकोडिंग इनटॉलरेन्स-रॉयट्स एन्ड द एमर्जेन्स ऑफ टेरेरिज्म इन इन्डिया* (Decoding Intolerance: Riots and the Emergence of Terrorism in India) में विस्तार से किया है। 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद से अनेक स्थानों पर आतंकवादी हमले हो चुके हैं जैसे अहमदाबाद, अजमेर, बंगलौर, कोयम्बतूर, हैदराबाद, मुम्बई (1992, 2002, 2003, 2006 और 2009), नई दिल्ली (13 दिसम्बर 2001 को संसद-भवन पर) तथा श्रीनगर में।

राजनीति उत्प्रेरित जातीय हत्याकांडों के समान ही यह भी सत्य है कि 'संघ परिवार' का एक अतिवादी अंग 'अभिनव भारत' प्रकाश में आया है जिसमें सेवारत सैनिक अधिकारी अति दुष्टतापूर्ण गतिविधियों के लिए भर्ती किए गए हैं। उनमें से एक 'मालेगांव विस्फोट', 'हैदराबाद की मक्का मस्जिद विस्फोट' और 'अजमेर शरीफ बम विस्फोटों' का षड़यंत्रकारी था। इन सारी घटनाओं में प्रारम्भ में तो मुस्लिमों पर ही शक हुआ और वे गिरफ्तार भी किए गए। सौभाग्य से सी. बी. आई. अब भी अपनी कार्यशैली में कुशल और उद्देश्यपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त अधिकांश भारतीयों, विशेषकर हिन्दुओं की अन्तर्निहित धार्मिक सहिष्णुता दृढ़ होने के कारण धर्म-निरपेक्षता कायम है।

2004 और 2009 के आम चुनावों और उसके बाद दिल्ली, राजस्थान और उड़ीसा के विधान-सभा चुनावों से यह स्पष्ट हो गया है कि अधिकांश भारतीय मतदाता सामाजिक सामंजस्य,

कुशल प्रशासन और स्थिरता को घृणा, हिंसा और अस्थिर मिली-जुली सरकारों की अपेक्षा प्राथमिकता देता है। भारतीय जनता पार्टी का वोट 2004 में 22.2% से घट कर 2009 में 18. 8% रह गया है और संसद में उसके सदस्यों की संख्या 138 से घटकर 116 रह गई है। उसके मुख्य प्रचारक गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 300 चुनाव रैलियों को सम्बोधित करके 37 सीटें पार्टी के लिए जीतीं। वहीं राहुल गांधी ने 102 रैलियों को सम्बोधित कर 75 सीटें जीत लीं, जिनमें अवध क्षेत्र की 7 सीटें शामिल हैं। अवध क्षेत्र से ही 1998 में 'राम मन्दिर बनाओ' के उत्तेजक नारे में भारतीय जनता पार्टी राष्ट्रव्यापी प्रमुखता पा सकी थी। राहुल गांधी के प्रचार वक्तव्यों में सबसे सहृदय था, "गरीब लोग ही भारत को महान बनाएंगे। भारत का शक्तिस्रोत शहरों या मेट्रो में नहीं है, बल्कि गांवों में हैं।"

इन आम चुनावों का दूसरा सुखद पहलू महिला सांसदों का प्रतिशत 8.7 से बढ़ कर वर्तमान लोक सभा में 10.7 होना है। दो दुखद परिणाम हैं--करोड़पति सांसदों की संख्या में 154 से 300 की बढ़त और कलंकित सांसदों की संख्या में 128 से 150 तक की बढ़त है। इनमें से 73 के विरूद्ध गम्भीर अपराधों के आरोप हैं— गांधीजी के जन्म स्थान पोरबन्दर से सबसे अधिक 16 ऐसे सांसद हैं।

माधव गोडबोले ने इंदिरा गांधी के षासनकाल से षुरु हुईसंसद की तेज़ी से घटती हुई मान-मर्यादा का बहुत सही वर्णन किया है।सदन का सत्र कार्यरत होते हुए सांसदों द्वारा अभद्र व्यवहार, कार्यवाही में रुकावट डालना, सदन से अनुपस्थिति, दल-बदल, भ्रश्टाचार, अपराधों के आरोप तथा न्यूनतम बहस के बिना ही वैधानिक कार्य आज की संसद का आम रवैया हो गया है। यहां तक कि अपराधों के आरोपी एक संसद सदस्य को जेल से षपथ लेने के लिए लाया गया। 2008 के पूरे साल में केवल 46 बार संसद के कार्य किए जा सके। लोक सभा के षीतकालीन सत्र के आख़िरी दिन, आठ महत्वपूर्ण बिल, सिर्फ़ 17 मिनटों में ताबड़तोड़ पास किए गए। वे लिखते हैं, ''भारत चाहे ओलम्पिक पदक न जीत पाए, पर बिना सोचे विचारे, आनन-फ़ानन में कानून पास कराने के लिए सालों साल स्वर्ण पदक जीत लेगा।'' वे आगे बताते हैं कि सुप्रीम कोर्ट द्वारा, राज्य सभा सदस्य जया बच्चन को यू.पी. फ़िल्म डेवलपमेन्ट कॉर्पोरेषन के अध्यक्ष पद के अयोग्य करार दिए जाने के ध मााकेदार फ़ैसले के तुरन्त बाद संसद ने एक संसदीय संषोधनबिल पास कर दिया। जया बच्चन को अध्यक्ष पद के अयोग्य ठहराया गया था क्योंकि उस पदसे व्यक्तिगत लाभ उठाया जा सकता है। पास हुए अयोग्यता-निरोधकया 'प्रिवेन्षन ऑफ़ डिसक्वालिफ़िकेषन' बिल के कारण 'संसद के दोनों सदनों के करीब 40 सदस्य' इसी प्रकार के आरोप की वजह से अयोग्य ठहराए जाने से बच गए। इस बिल को गत 47 साल की अवधि से पूर्वप्रभावी

घोशित किया गया। राश्ट्रपति के द्वारा पुनर्विचार के लिए संसद में भेजे जाने के बाद दोनों सदनों ने इसे पुनः सहमति दे दी, जिसके बाद उन्हेंबिल पर हस्ताक्षर करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचा।

संसद सदस्यों के निर्वाचन क्षेत्र विकास निधि (एम.पी.एल.ए.डी.एस.) के बारे में गोडबोले बताते हैं कि ''धूर्त राजनीतिज्ञ नरसिम्हा राव को जब बाबरी मस्जिद की सुरक्षा में असफल होने की वजह से संसद के आक्रोष का सामना करना पड़ा, तब उन्होनें सांसदों को तुश्ट करने के लिए नई योजना प्रस्तुत की और अपनी अल्पमत सरकार को टिकने का सहारा दिया।'' इसके तहत सभी सांसदों को 50 लाख रुपए सालाना 'उदारतापूर्ण दान' के मिलने लगे। बाद में इस राषि को बढ़ा कर एक करोड़, फिर 2 करोड़ और हाल में 5 करोड़ कर दिया गया!

श्रीमती सोनिया गांधी की अध्यक्षता में राश्ट्रीय सुरक्षा परिशदने अप्रैल 2005 में कहा, ''असल में स्थानीय क्षेत्रों के विकास की ज़रुरतों का आंकलन और मध्यस्थता निर्वाचित स्थानीय सरकारों द्वारा तयकिया जाना चाहिए। अतः एम.पी.ए.एल.ए.डी.एस. कोसमाप्त कर के इस निधि को उन कार्यों के लिए सीधे पंचायतों व नगरपालिकाओं को दे दिया जाना चाहिए।'' फ़रवरी 2007 में श्री वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में दूसरे प्रषासन सुधार आयोग ने एम पी ए एल ए डी एस को समाप्त करने का प्रस्ताव इस आधार पर किया, ''इस योजना से विधायक सीधे प्रषासक बन जाता है। इससे अधिकारों की पष्थकतागम्भीर तौर पर कम होती जाती है।'' इसके बावजूद बहुत अचरज की बात है कि ये योजना अभी भी जारी है और जुलाई 2011 में इस उदार दान की राषि बढ़ा कर 5 करोड़ कर दी गई है!भारत के सांसद,अपने भारी वेतन, अन्य सुविधाओं व एम.पी.ए.एल. ए.डी.एस. वषद्धि को उचित ठहराते हैं। वे न्यूयॉर्क की वॉल स्ट्रीट के बैन्करों की तरह बन गए हैं जो अपने 'सक्रिय काम' के लिए भारी बोनस हर साल अपनी जेबों में भरते हैं। गांधी जी कुटिया में रहते थे, उनका पहनावा अधनंगे किसान की तरह का था, क्योंकि वे महसूस करते थे कि अगर वे भारत की अनगिनत गरीब जनता के साथ अपने को नहीं जोड़ेंगे और उन्हीं की तरह नहीं रहेंगे तब तक वे उनकी ओर से बातचीत नहीं कर सकते।

1950 से 1991 के दौरान सरकार द्वारा नियोजित अर्थव्यवस्था के कारण देश में 'लाइसेंस राज' का बोलबाला रहा जिसके कारण औद्योगिक और आयात लाइसेंस प्राप्त करने के लिए भ्रष्टाचार तेजी से बढ़ता गया। यह रोग आर्थिक व्यवस्था के हर कोने में तथा हर सरकारी विभाग में असाध्य कैंसर की तरह फैल गया। कृषि, उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, तथा आवास के क्षेत्रों में अत्यधिक पूंजी निवेश किए जाने के बावजूद देश की 40% जनसंख्या अभी तक गरीबी, कुपोषण,

रोग, बेकारी, निरक्षरता, घरों की कमी, उपचार-सुविधाओं के अभाव तथा जन-साधारण के लिए अवसंरचना अर्थात इन्फ्रास्ट्रक्चर की कमी से ग्रसित है। यद्यपि कृषि और औद्योगिक उत्पादन काफी मात्रा में बढ़ा है, पर 1990 तक सामूहिक आर्थिक प्रगति 3% के आसपास ही रही। इसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक प्रगति की 'हिन्दू दर' कह कर इसका मजाक उड़ाया गया। यहां तक कि नेहरू और इंदिरा गांधी के प्रबल समर्थक भी अब यह स्वीकार करते हैं कि भारत का आर्थिक विकास का चरण, लाभकारी होने के बजाए विनाशकारी रहा है।

1991 में शुरू हुए आर्थिक उदारीकरण के कारण भारत के करोड़ों लोगों को बहुत अधिक संख्या में उद्यम-उपक्रम (एन्टरप्रेन्योरशिप) के अवसर मिले। नतीजन 2000 तक आर्थिक प्रगति बढ़कर 8% तक पहुंची, और 2007 में 10% तक हो गई। दुर्भाग्यवश, 1998 से लेकर 2008 तक के समय में सरकारी नीतियों का झुकाव नागरिकों व कॉर्पोरेट क्षेत्रों तथा विदेशी निवेशकों की ओर अधिक हो गया है जिसके कारण नगर और ग्राम के बीच की खाई और अधिक गहरी हो गई। अन्न के बीजों की ब्रिकी बहुराष्ट्रीय बाजार में किए जाने की शुरूआत के बाद से 1998 से आज तक दो लाख से अधिक किसान अभाव के कारण आत्महत्या तक करने पर मजबूर हो गए। 150 से अधिक जिलों में नक्सलवाद का प्रसार ग्रामीणों और आदिवासी क्षेत्रों में फैल रहे गहरे सामाजिक असंतोष, और क्षोभ का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसका मुख्य कारण कृषि-योग्य उत्पादकों के मूल्यों में वृद्धि, सरकार द्वारा कृषि-योग्य भूमि तथा वनों का विशेष-आर्थिक-क्षेत्रों (एस.ई.जेड), राजमार्गों, हवाई-अड्डों तथा औद्योगिक, खनिज और पर्यटक योजनाओं के लिए अधिग्रहण है। *एशियन एज* के 3 दिसम्बर 2007 के संस्करण में *दि ग्रेट सेज गिवअवे* (The Great SEZ Giveaway) शीर्षक वाले अपने लेख में जयति घोष ने एस.ई.जेड. में कॉर्पोरेट कम्पनियों को उपलब्ध कराए गए असंख्य मुनाफों की सूची दी है। यह अनगिनत लाभ राष्ट्रीय कोष से बहुत अधिक मूल्य पर उन्हें उपलब्ध कराए गए हैं। 2007 में गांधी जी के जन्म-दिवस पर इस तथाकथित 'विकास' के कारण विस्थापित किए जाने के विरोध में 25,000 भूमिहीन मजदूरों तथा आदिवासियों ने अहिंसक विरोध प्रदर्शन करते हुए ग्वालियर से दिल्ली तक की यात्रा की और 28 अक्तूबर को दिल्ली पहुंच कर उन्होंने एक राष्ट्रीय भूमि सुधार समिति का गठन किए जाने की मांग की। प्रख्यात कृषि वैज्ञानिक डॉ.एम.एस. स्वामीनाथन ने इस मांग का समर्थन किया है और आग्रह किया है कि एस.ई.जेड. के स्थान पर एस.ए.जेड. (Special Agricultural Zones) अर्थात विशेष कृषि क्षेत्रों की स्थापना प्रदेश सरकारों की सहभागिता में की जाए। विशेषकर उन त्रसित राज्यों— महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल में — जहां सैकड़ों किसानों ने ऋण और खेतों में खराब फ़सलों के कारण आत्महत्या की है। इनमें से कोई प्रस्ताव अब तक लागू नहीं किया गया है, फलस्वरूप किसानों द्वारा आत्महत्या जारी है और नक्सलवाद अन्य क्षेत्रों में फैलता जा रहा है।

आज भारत में विश्व का सबसे बड़ा मध्यम वर्ग है, काफी संख्या में प्रशिक्षित कर्मचारी हैं, कुछ अरबपति व कई करोड़पति भी हैं और दुःख के साथ कहना पड़ता है कि शहरों में झुग्गी-झोपड़ी निवासी, निरक्षर, बेघर, बीमार और हथियार बन्द ग्रामीण और आदिवासी आतंकवादी भी हैं। जब तक, भारत अपनी आर्थिक वैश्वीकरण प्रक्रिया को गांधी के रक्षा कवच— 'सबसे गरीब और असहाय व्यक्ति' पर केन्द्रित नहीं करता यह समस्याएं गहराती जाएंगी। डॉ. अर्जुन सेनगुप्ता, प्रधानमंत्री के पूर्व आर्थिक सलाहकार तथा योजना आयोग के अपाध्यक्ष ने *डेकन क्रॉनिकल* (21 सितम्बर 2009) के लेख *नक्सल वॉयलेन्स इज ए क्राई टु बी हर्ड* (Naxal Violence is a Cry to be Heard) में लिखते हैं, "15 सितम्बर को प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने नक्सली हिंसा के विषय में सर्वाधिक गम्भीर चेतावनी दी है, जिसमें इसको देश की सबसे गम्भीर आंतरिक सुरक्षा की समस्या बताया है। नक्सल समस्या का समाधान केवल निष्कपट वार्तालाप से तथा उनकी सदियों पुरानी कठिनाइयों को सुलझाने का तरीका ढूंढने से ही हो सकता है। पर इन वार्ताओं को शुरू करने से पहले उनमें यह विश्वास जगाना पड़ेगा कि इन वार्ताओं में वे बराबर के भागीदार हैं, कि आप उनकी सम्पत्ति और भूमि हड़पने की योजना नहीं बना रहें हैं, कि आप उनके मानवीय अधिकारों का सम्मान करेंगे।" *रिडिस्कवरी ऑफ इन्डिया* (Rediscovery of India) के लेखक लॉर्ड मेघानन्द देसाई *डेकन हेरल्ड* (10 जनवरी, 2010) में लिखते हैं कि, "नक्सलवाद में मुख्य मुद्दा राष्ट्रीयकृत सम्मिलित सम्पत्ति का है जिसको प्रगति और विकास कहा जाता है..... सम्मिलित सम्पत्ति से लोगों को विहीन करना विकास का काम नहीं है, पर विकास के पूंजीवादी और समाजवादी दोनों ही ढ़ांचे सम्मिलित सम्पत्ति के विरोधी हैं।"

अपनी जरूरतों को कम करने और सादा जीवन व्यतीत करने के गांधीजी के विचार को कई व्यक्तियों द्वारा दकियानूसी ठहराया गया है। किंतु पॉल केनेडी लिखते हैं, "कुछ सुधारकों को छोड़ कर सर्व-सहमति इसी बात में है कि विश्व की जनसंख्या में होने वाली बढ़त को, वर्तमान तौर-तरीकों और बढ़ती खपत के स्तर को देखते हुए उसके अनुकूल कायम नहीं रखा जा सकता .... पशु-पक्षियों के विपरीत मनुष्य वनों को नष्ट करते हैं, जीवाश्म ईंधन को जला कर नष्ट करते हैं, जलीय क्षेत्रों को सुखा देते हैं, नदियों और समुद्रों को प्रदूषित कर देते हैं और खनिज, तेल तथा अन्य कच्चे पदार्थों की प्राप्ति के लिए धरती को रौंद डालते हैं।.... विकसित उत्तरी क्षेत्र, विकासशील देशों की अपेक्षा, पृथ्वी के संसाधनों पर प्रति व्यक्ति अधिक बोझ डालते हैं, क्योंकि वे विकासशील देशों की अपेक्षा अधिक संसाधनों का उपयोग करते हैं।.... एक गणना के अनुसार एक आम अमेरिकी बच्चा, स्वीडन के एक बच्चे की अपेक्षा दुगुना, इटली के बच्चे की अपेक्षा तिगुना, ब्राजील के बच्चे की अपेक्षा तेरह गुना, भारतीय बच्चे की अपेक्षा पैतीस गुना और शाड या हैती के बच्चे

की अपेक्षा 280 गुना या उससे भी अधिक प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग अपने जीवन काल में करता है। यह आंकड़े किसी भी विवेकशील अंतरात्मा वाले व्यक्ति के लिए अत्यंत कष्टदायी हैं।"

गांधीजी के ग्राम केन्द्रित उत्पादन और वाणिज्य प्रत्यय के ठीक विपरीत 1990 से भारत में आरम्भ हुआ वैश्वीकरण, गरीबी दूर करने और आर्थिक प्रगति को अधिक गतिशील बनाने के लिए अपनाया जा रहा है। उसके फलस्वरूप घरेलू उत्पादन का बहुराष्ट्रीयकरण या कॉर्पोरेटाइजेशन बहुत तेजी से हो रहा है और भारतीय कॉर्पोरेट अधिक वृहत होते जा रहे हैं। अन्य वैश्वीकृत देशों की तरह धनी व्यक्ति और अधिक धनी, तथा निर्धन लोग और अधिक निर्धन होते जा रहे हैं। अमेरिका में केवल 5% व्यक्ति देश की 54% सम्पत्ति के मालिक हैं। भारतीय रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर, बिमल जालान ने दिसम्बर 2009 में बताया कि देश के पांच सर्वोच्च अरबपतियों की कुल जमा पूंजी 30 करोड़ निचले स्तर के भारतीयों की कुल पूंजी के बराबर है। इनमें से एक धनी पूंजीपति आजकल मुम्बई में अपने लिए एक इमारत का निर्माण कर रहा है, जो पूरा होने के बाद विश्व का सबसे महंगा, आरामदेह और ऊंची तकनीक वाला घर होगा।

भारतीय नेता-गण अधिक आर्थिक प्रगति की दर को कुशल प्रशासन का प्रमाण बताने का दम्भ करते हैं और एक 'मानवीय चेहरे के सुधार' की चर्चा करते हैं। महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि 'किसका चेहरा?' करोड़पति कारपोरेट का या 'सर्वाधिक निर्धन और सबसे असहाय व्यक्ति' का, जिसकी चर्चा गांधी करते थे। इस संदर्भ में सबसे उपयुक्त प्रश्न है कि बहुचर्चित भारत-अमेरिकी परमाणु-संधि से किसे लाभ मिलेगाकृ भारतीय गरीब को या उन धनी लोगों को जिनके पास वातानुकूलित घर, माइक्रोवेव ओवन, सेटेलाइट डिस्क आदि हैं; या उस विदेशी निवेशक को जो अरबों डॉलर की राशि में अपना हिस्सा बांटने की घात लगाए बैठा है? क्या इन महंगे परमाणु ऊर्जा-चालित बिजली घरों से पैदा बिजली आम भारतीय इस्तेमाल करने की हैसियत रखता है? इनके लिए कथित ईंधन की आपूर्ति पूरी तरह सुनिश्चित नहीं कही जा सकती है। हस्ताक्षर-युक्त दस्तावेज में इसका स्पष्ट उत्तर नहीं मिलता है। अभी कुछ दिन पहले अमेरिकी राष्ट्रपति के वरिष्ठ अधिकारियों ने अमेरिकी कांग्रेस को लिखा है कि ईंधन आपूर्ति के आश्वासन केवल 'राजनैतिक' हैं, वैधानिक तौर पर प्रतिबंधित नहीं। क्या यह सौदा जिस पर सरकार ने प्रस्ताव की विजय हासिल की थी, और जिस पर अभी तक राष्ट्रीय सहमति नहीं हुई है, चीन से हमारे संबंधों पर बुरा प्रभाव नहीं डालेंगे? कुछ राजनीतिज्ञों और सुरक्षा विश्लेषकों का विचार है कि भारत और अमेरिका के बीच हुआ यह नया रणनीति-संबंधी गठबन्धन चीन को हमसे विमुख करने का काम करेगा। इन खतरों पर विचार करते हुए तथा आतंकी हमलों और प्राकृतिक संकटों से इन परमाणु बिजली घरों की सुरक्षा की गम्भीर चुनौती की अपेक्षा छोटे

पन-बिजली घर और वायु-ऊर्जा भारत के लिए बेहतर होगी तथा प्रकृति का संरक्षण भी होगा। इन सभी ऊर्जा स्रोतों में ऊर्जा की बहुतायत है। सराहनीय है कि कुछ भारतीय संस्थानों ने इस दिशा में उपयोगी परिणाम दर्शाए हैं।

2008 में आणविक आपूर्ति समूह या न्यूक्लियर सप्लायर्स ग्रुप से ''स्पश्ट छूट'' मिल जाने पर भारत फूला नहीं समा रहा था। 23-24 जून 2011 को हॉलैन्ड में हुई एन. एस.जी. की बैठक में संवेदनषील संवर्धन अर्थात 'एनरिचमेंट' और पुनर्सन्साधन की तकनीकों के प्रेशण के निर्देषों को सषक्त बनाने का निर्णय लिया गया।'' यद्यपि अमेरिका, फ्रान्स और रुस ने अंततः घोशणा कर दी है कि भारत के साथ किए गए आपसी करारनामों पर कोई असर नहीं पड़ेगा। यह सच है कि उन्हें नए निर्देष मान्य हैं। इसके अलावा इस बैठक में चीन द्वारा पाकिस्तान को दो नए परमाणु रिऐक्टरों की आपूर्ति को उचित ठहराया है।

द मेल के 12 जुलाई 2011 के अंक में पूर्व विदेष सचिव कंवल सिब्बल ने 'एन. एस.जी. अप्रूवल ऑफ साइनो-पाक न्यूक्लियर पैक्ट' षीर्शक से एक लेख में लिखा, ''चीन ने एन.एस.जी. को एक चुनौती दी और वह झुक गई। यह हमारी सुरक्षा के लिए गहरा आघात है। — चीन ने आरोप लगाया है कि भारत-अमेरिका परमाणु समझौता पाकिस्तान के प्रति विभेदकारी है। वह अब भारत-अमेरिकी परमाणु व्यापार से भारत को होने वाले किसी भी राजनैतिक या सामरिक लाभ को निश्कष्य करना चाहता है। चीन यह भी चाहता है कि पाकिस्तान को गैर एन.पी.टी. देषों की तरह एन.एस.जी. की तरह छूट दी जाए। अमेरिका के लिए, पाकिस्तान से सम्बन्धों की अपेक्षा, इरान व उत्तरी कोरिया के परमाणु प्रचुरता सम्बन्धी मामलों के बारे में चीन का सहयोग अधिक महत्वपूर्ण हैं।'' इसी तरह के. सी. सिंह ने डेकन हेरल्ड/एषियन एज के 26 जून 2011 के अंक में 'न्यूक्लियर रियेलिटी' नामक लेख में लिखा, ''अमेरिका और चीन की दिलचस्पी अब चार बड़ी निर्यात नियंत्रण व्यवस्थाओं में प्रवेष के मापदन्ड तय करने में ज़्यादा होगी। ये चार नियंत्रण व्यवस्थाएं हैं-न्यूक्लियर सप्लायर्स ग्रुप, मिसाइल टेक्नॉलॉजी कन्ट्रोल रेजिम तथा ऑस्ट्रेलिया व वासेनार ग्रुप। भारत के अधूरी तरह से जांचे गए, अल्पविकसित, परमाणु षस्त्रागार को तकनीकी आधार पर अषक्त सिद्ध कर देना उनका ध्येय होगा।इसके अलावा पाकिस्तान के तेज़ी से प्लूटोनियम एकत्र करने पर लगाम लगाना और इज़राइल का परमाणु अस्त्र जमा करने से रोकना भी उनका लक्ष्य होगा। उसके एवज़ में पष्चिम एषिया में अमन का वादा इज़राइल को दिया जा सकता है। पष्चिमी ताकतों को डर है कि पाकिस्तान और चीन से निकले अनियंत्रित परमाणु हथियार भारत को निष्चित रुप से कमज़ोर बना देंगे।'' इसलिए एन.

एस.जी. की सदस्यता सुनिष्चित करने के लिए ऐसा लगता है कि भारत कोएन.पी.टी. पर हस्ताक्षर करने ही पड़ेंगे, परमाणु परीक्षणों पर स्थगन जारी रखना होगा और फ़िसिल मैटिरिअल कट-ऑफ़ संधि में पूरा सहयोग देना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त हिलरी क्लिन्टन ने अपनी हाल की यात्रा के दौरान भारत से आग्रह किया कि वह आई.ए.ई.ए. के साथ कार्य करते हुए ये सुनिष्चित करे कि उसका कानून ''अन्तर्राश्ट्रीय विधि'' के अनुसार हो। इस विधि के अनुसार 2010 के न्यूक्लिअर लायबिलिटी कानून का अनुपालन करना आवष्यक है। जून 2011 की एन.एस.जी. मीटिंग में एनरिचमेन्ट और रिप्रोसेसिंग की तकनीकों को एन.पी.टी. पर हस्ताक्षर करने के लिए आवष्यक बताया गया था। इस प्रष्न पर भारत का कथन था कि ये नई षर्तें किसी भी तरह से भारत-अमेरिका परमाणु संधि की महत्ता कम नहीं करती हैं और न ही उसके नियमों का उल्लंघन करती हैं।

डेकन क्रॉनिकल के 21 मई 2011 के अंक में 'न्यूक्लिअर इनसेनिटी' नामक लेख में वन्दना षिवा ने भौतिकषास्त्र विद् सौम्या दत्त को उद्धष्त करते हुए लिखा है कि सारे विष्व में 17 टेरा वॉट आणविक उर्जा, 700 टेरा वॉट पवन उर्जा और 86,000 टेरा वॉट उेर्जा की क्षमता है। वे दावे से कहती हैं, ''आणविक अूर्जा के विकल्प हज़ार गुना अधिक उपलब्ध हैं और करोड़ों गुना कम ख़तरनाक हैं। फ़ुकुषिमा दुर्घटना के बाद परमाणु प्लान्टों को इतना महत्व देना पागलपन है।'' डेकन क्रॉनिकल/एषियन एज के 8 जुलाई 2011 के 'द न्यूक्लियर लिमिट' में पूर्व वाइस एडमिरल अरुन कुमार राय लिखते हैं, ''जापान में हुए हाल के परमाणु हादसों से प्रत्यक्ष सबक लेने और भारत के एन.एल.बी., एन.डी.एम.एस., एन.इ.आर.टी. तथा टी.डब्लू.एस. की सीमाबद्धता के बावजूद, मुझे आष्चर्य है कि आणविक उर्जा विभाग ने 2050 तक 655,000 मेगावॉट का प्लान बनाया है। इस मांग की आपूर्ति के लिए छः रिऐक्टरों वाले 'न्यूक्लिअर पार्क' बनाने होंगे, जिनमें 1000 मेगावॉट क्षमता के विदेष से आयात किए गए 655 अतिरिक्त रिऐक्टर भी लगाने की ज़रुरत होगी। भारत की 6000 किलोमीटर लम्बी सागर तटरेखा पर हर 55 कि.मी. की दूरी पर 109 परमाणु पार्कों का निर्माण करना होगा। सुनामी, भूकम्प या आतंकी हमलों के ख़तरों के विचार से ये भंयकर तबाही का सबब बन सकता हैकृकृ ये प्रस्ताव तर्कसंगत नहीं है, ये सुरक्षा के विचार से एकदम गलत है और हमारी आर्थिक सामर्थ्य के परे है।'' फ़ुकुषिमा हादसे के तुरन्त बाद जर्मन सरकार ने अपने सारे परमाणु बिजली घर 2020 तक बन्द कर देने का निर्णय ले लिया है। पर भारत सरकार 2020 तक 20,000 मेगावाट परमाणु बिजली घरों को स्थापित करने के विषाल लक्ष्य के लिए कष्तसंकल्प है। 22 अरब डॉलर की लागत, छः रिऐक्टर व 9,900 मेगावॉट क्षमता का जैतापुर परमाणु संयत्रविष्व का

विषालतम प्लांट होगा जो पांच गावों में फैले 968 हेक्टेयर खेती वाले क्षेत्र में बनेगा। ग्रामवासियों ने भारी विरोध करते हुए अधिग्रहित ज़मीन के एवज़ में मुआवज़ा लेने से मना कर दिया है। दस ग्राम पंचायतों ने विरोध करते हुए इस्तीफ़ा दे दिया है। 18 अप्रैल 2011 को महाराश्ट्र पुलिस ने विरोध कर रहे गांव वालों पर गोलीबारी की, जिसमें एक व्यक्ति मारा गया और आठ अन्य व्यक्तियों को गहरी चोटें आईं। भारत की परमाणु षक्ति का लक्ष्य विशाक्त रुप धारण करता जा रहा है।

सौभाग्य से 12 जनवरी 2010 को भारत के प्रधानमंत्री ने 19 अरब डॉलर की 'जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय सौर योजना' का अनावरण किया है जो 2013 तक 1100 मेगावाट, 2017 तक 4000 मेगावाट, और 2020 तक 20,000 मेगावाट बिजली का उत्पादन करने लगेगी। कुछ अन्य बृहत योजनाएं बनाई जा रही हैं जिसके अर्न्तगत थार मरुस्थल के 35,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को लाभ मिलेगा। आठ प्रयोगशालाओं में 100 से अधिक वैज्ञानिकों के सहयोग से वृहत अन्वेषण कार्यक्रमों के लिए 900 करोड़ रुपयों की राशि आवंटित की गई है। इन सारे प्रयत्नों के बावजूद भारत, चीन के 'स्वर्ण सूर्य' कार्यक्रम की बराबरी नहीं कर पाएगा, जिसके अन्तर्गत चीन में 2010 तक 10,000 मेगावाट बिजली पैदा करने की क्षमता हो जाएगी। यह विश्व का सबसे बड़ा सौर ऊर्जा उत्पादक होगा।

नोअम चोम्स्की ने वैश्वीकरण को "'अन्तर्राष्ट्रीय कॉर्पोरेट अत्याचार' का नाम देते हुए निन्दा की है, तथा बहुराष्ट्रीय संस्थानों को तातारी सर्व-सत्तात्मक संस्था....अति-आधिकारिक अर्थ व्यवस्था, शीर्ष से कार्यशील, उत्तरदायित्व विहीन, अनेक प्रकार से आपस में जुड़े हुए जिनका मुख्य ध्येय मुनाफ़ा कमाना ही है"— कहा है। उनकी विशाल आर्थिक शक्ति, पापिष्ठ गतिविधियां और अधिकांश देशों के बलशाली व्यक्तियों के साथ घनिष्ठता के कारण 'कॉर्पोरेट परम-भक्षी राज्य' के नाम का प्रचलन हुआ है।

वर्तमान 30 खरब अमेरिकी डालर का वैश्विक आर्थिक पतन इसका ज्वलंत प्रमाण है। नोबल पुरस्कार विजेता जोजेफ स्टिगलित्ज ने इसे 'आर्थिक संस्थानों की बेइमानी का फल' कहा है। ज्यादा से ज्यादा मुनाफे के लालच में निवेशक बैंकों और हेज फन्डों ने खतरनाक और अनुपयुक्त क्षेत्रों में पूंजी लगाकर इस खतरे को अन्य देशों के संस्थानों में भी फैला दिया है। वारेन बफेट ने इन प्रपत्रों को 'महाविनाश के आर्थिक शस्त्र' कहा है। जब इन शस्त्रों का विस्फोट हुआ और 'बेयर स्टर्न्स' तथा 'लेहमेन ब्रदर्स' जैसे धराशायी हुए तब अमेरिकी प्रशासन और कांग्रेस के पास उनको उबारने के लिए बड़ी धनराशि की सहायता देने के सिवा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा। नोबेल पुरस्कार पॉल क्रुगमेन ने इसे 'कबाड़ के लिए धनराशि' बताकर इसकी भर्त्सना की। उच्च राजकीय अधिकारियों से अच्छे सम्बन्ध रखने वाले कॉर्पोरेट संस्थानों की जेबें, ईराक और

अफगानिस्तान में लड़े जा रहे युद्धों के बहाने भरी जा रही हैं। पुर्तगाल के पूर्व प्रधानमंत्री **मारियो सोरेस** ने राजनीति और व्यापार के इस अंधाधुंध परस्पर मिश्रण की निंदा की है तथा *न्यूयॉर्क टाइम्स* में लिखा, 'पूंजीवाद पर पुनः विचार करना जरूरी है। इसे इस अटकलबाजी की स्थिति से आगे बढ़ाना आवश्यक है, इस जुआरी अर्थ-व्यवस्था से आगे निकाल कर एक ऐसा नैतिक पूंजीवाद बनाना होगा जो पर्यावरण और समाज की चिंताओं का आदर करे।" उसी समाचार पत्र में एक कार्टून था जिसके 'हरीकेन आइक ' टेक्सास पर और 'लालच का तूफान' न्यूयॉर्क और वॉशिंगटन पर गहराता जा रहा है! लालच निर्विघ्न रूप से गहराता जा रहा है। लगभग 3000 वरिष्ठ आर्थिक सेक्टर के अधिकारी 2009 के अन्त तक 140 अरब अमरीकी डॉलर बोनस के नाम पर उदरस्थ कर चुके थे।

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संकट, वैश्विक उष्मता और खाद्यान्न संकट से गांधी के कई दशकों पूर्व के कथन की अभिपुष्टि होती है कि "पृथ्वी ने हर व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त दिया है किंतु उसके लोभ या लालच के लिए नहीं ....."। कटु सत्य है कि हेरिंग, कॉड और एंचोवी शोल नामक मछलियां बहुत अधिक पकड़े जाने के कारण प्रायः लुप्त होती जा रही हैं। कूबड़-वाली और नीली व्हेल, जो पहले से ही लुप्त होने की कगार पर है जापानियों द्वारा अन्वेषण के लिए मारी जा रही हैं। हाथी दांत, त्वचा और अस्थियों के व्यापार के कारण हाथी और चीतों की संख्या तेजी से कम होती जा रही है। इसी तरह का एक और घृणित सत्य 'बफैलो' कहे जाने वाले अमेरिकी बिसन के विषय में है। रे एलेन बिलिंगटन अपनी पुस्तक *वेस्टवर्ड एक्सपैन्शन* (Westward Expansion) में लिखते हैं, "पश्चिम में करीब 1 करोड़ 30 लाख बफैलो पाए जाते थे जब पहली बार दूर तक मार करने वाली रायफलें लेकर शिकारी यहां आए थे। रेल की खिड़कियों से झांकते हुए या घोड़ों पर बैठे शिकारियों ने इन निर्दोष जानवरों को बेरहमी से 1867 से 1872 के बीच मारा केवल उनको मरता हुआ देखने का मज़ा लेने के लिए। उनमें से कुछ शायद बच गए होते यदि 1871 में पेन्सिलवेनिया टैनरी (चमड़े का कारखाना) को यह पता न चला होता कि उनकी त्वचा व्यापारिक चमड़े के लिए उपयोगी है। केवल 3 डालर प्रति बफैलो-खाल के लाभ के लिए शिकारियों ने सारा पश्चिमी प्रदेश छान मारा। 1872 से 1874 के बीच लगभग 30 लाख जानवर प्रतिवर्ष मारे गए। 1878 तक दक्षिणी भाग में और 1883 तक उत्तरी मैदानों से यह प्रजाति पूरी तरह लुप्त हो गई। 1903 तक इनकी संख्या केवल 34 रह गई थी।

जनसंख्या में वृद्धि और बेहतर जीवन स्तर ने मांस की मांग बढ़ा दी है, साथ ही उसके उत्पादन और बिक्री से होने वाला मुनाफा भी बढ़ा है। लालच का डरावना सबूत इस तथ्य के

उजागर होने से और भी चौंकाने वाला हो जाता है कि पशुओं के शरीर के न खाए जाने योग्य अंग भी बिकते हैं। इनके प्रयोग से अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस और कनाड़ा अन्य देशों में 'मैडकाउ' नामक रोग होने लगा है, यूरोप के कई युवा लोगों की 'मैड काउ' मांस खाने से मृत्यु हो चुकी है।

गैसोलिन के दामों में भारी वृद्धि, 1974 में 14 यू.एस. डालर प्रति बैरल से 2008 के मध्य तक 140 डॉलर प्रति बैरल, के कारण लाखों टन मक्का और गन्ना 'बायोफ्युएल' उत्पादन के लिए भेजा जा रहा है जिसके कारण विश्व भर में खाद्यान्न संकट बढ़ने की आशंका है।

भूमि, जल और वायु यातायात के वाहनों की संख्या में असाधारण वृद्धि तथा उनको चलाने के लिए खनिज ईंधन की बढ़ी हुई खपत के फलस्वरूप वैश्विक उष्मता अभूतपूर्व मात्रा में बढ़ रही है। नोबल पुरस्कार विजेता एल्बर्ट गोर कहते हैं, "दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, मध्यपूर्व, आस्ट्रेलिया और जापान कुल मिलाकर जितना प्रदूषण फैलाते हैं उससे अधिक केवल संयुक्त राज्य अमेरिका फैलाता है।" उनके अनुसार पिछले 25 वर्षो में से 20 वर्ष सबसे गर्म बीते हैं, इनमें से 2005 का वर्ष सबसे अधिक गर्म था, जबकि पश्चिमी देशों के 200 से अधिक नगर और कस्बे अब तक के रिकार्ड में सबसे गर्म रहे। वे वैश्विक उष्मा के परिणामों की सूची बताते हैं- सागर के पानी का गर्म होना, अधिक विनाशकारी तूफानों का आना, अकाल में बढ़ोतरी, खराब फसलें, दावानल, आर्कटिक और अन्टार्कटिक हिम और विश्व भर के ग्लेशियरों का पिघलना, अनेक द्वीपों का सागर में डूबना, इस सबका परिणाम बड़े पैमाने पर मानवीय विस्थापन, मृत्यु, पशुओं और पौधों की विविधता की हानि है।

भारत में विश्व भर की अपेक्षा सबसे ऊंची पर्वत श्रृंखलाएं होने के कारण, पहाड़ों की पिघली बर्फ़ से भरी रहने वाली सबसे ज्यादा नदियों के कारण, और 10 अरब 20 करोड़ की आबादी होने के कारण, वैश्विक उष्मा का मुकाबला करना तथा उष्मा पैदा करने वाली जीवन शैली का मुकाबला करना भारत देश की प्राथमिकता होनी चाहिए। आर्थिक प्रगति की दर में वृद्धि और समृद्धि का महत्व इस प्राथमिकता की अपेक्षा आधा भी नहीं होना चाहिए।

बाल्कन, जॉर्जिया, ईराक और अफगानिस्तान में चल रहे युद्ध के संदर्भ में खनिज तेल व गैस के नये श्रोत की तलाश और उन क्षेत्रों में तेल पाइपलाइन बिछाने की बात सोची जा सकती है, यदि लोग युद्ध समाप्त करने को राजी हों। इससे पेट्रा केली के पहले उद्धृत कथन की सार्थकता सिद्ध होती है, "एक ऐसी जीवन-शैली और उत्पादन की प्रणाली, जो कच्चे माल के खुले प्रयोग और अंतहीन आपूर्ति पर निर्भर हो, इस कच्चे माल की आपूर्ति दूसरे देशों से पूरी करने के लालच को तेजी से उभारती है, जिससे हिंसा की भावना भी बढ़ती है। ठीक उसके विपरीत कच्चे माल

का जिम्मेदारी के साथ उचित इस्तेमाल, जिससे प्रकृति का ख्याल करते हुए जीवन शैली और अर्थ-व्यवस्था अपनाई जाए, से हिंसा का खतरा कम हो जाता है।"

प्रिंस चार्ल्स ने लन्दन में 'फेसिंग द फ्यूचर 2009: रिचर्ड डम्बलबी व्याख्यान', देते समय कहा, "मैं समझता हूं कि सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि आप 'प्रगति' और 'समृद्धि' की व्याख्या कैसे करते हैं। मेरे विचार में अधिकांश लोग इस पर सहमत होंगे कि उन्नति का मुख्य परिणाम कम कष्ट और अधिक सुख होना चाहिए। पर हमारी आधुनिक परिस्थिति में 'अंतिम परिणाम' 'साधन' के साथ भयानक सीमा तक उलझ गया है। वह एक ऐसे स्थान पर पहुंच गया है, जहां समृद्धि तथा सम्पत्ति, नवीनता और प्रगति ही अंतिम लक्ष्य बन गया है। यह सब बातें गंतव्य हो गई है- जबकि पहले यही चीजें वहां पहुंचने का वाहन हुआ करती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि नैतिकता के बहक जाने से हमारे आर्थिक तंत्र की दिशा अपने आप में एक अंत बन कर रह गई है।"

उन्होंने उन विभिन्न तरीकों का वर्णन किया जिनसे मानवता ने प्रगति की तलाश करते हुए प्राकृतिक धरोहरों को नष्ट कर दिया है। इस संदर्भ में उन्होंने निम्न उदाहरणों की चर्चा की— प्राचीन यूनानी प्रत्यय 'हारमोनिया', एडम स्मिथ की 'थियरी ऑफ मॉरल सेन्टिमेन्टस', वाणिज्य ढांचा जो आपूर्तिकर्ता (माल सप्लाई करने वाला) और उपभोक्ता के बीच की दूरी बढ़ाता है, जिससे बड़े पैमाने की अर्थव्यवस्था, स्थानीय व्यवस्था को समाप्त कर सके। उस ढांचे के कुपरिणाम, जलवायु परिवर्तन की अर्थव्यवस्था पर कठोर पुनरावलोकन, संयुक्त-राष्ट्र संघ की 'मिलेनियम इकोसिस्टम एसेसमेन्ट' और उसकी तत्काल आवश्यकता पर बल, विश्व की बढ़ती आबादी तथा गहराता हुआ परिस्थितिकी और आर्थिक संकट, जिसके लिए मशीनी कार्यशैली छोड़ कर निचले स्तर से ऊपर को उठता हुआ वैश्वीकरण "क्योंकि प्रकृति भी इसी तरह काम करती है....जड़ से ऊपर को प्रगति होती है न कि आकाश से नीचे की ओर।"

अंत में उनका कथन था, "जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा था, हम क्या करते हैं और क्या करने में सक्षम हैं— इन दोनों के बीच का अन्तर ही हमारे विश्व की अधिकांश समस्याओं को हल करने के लिए काफ़ी है। हमें यह सुनिश्चित करना ज़रूरी है कि हम प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप रहें, उससे अलग होने की जगह। हम यह याद रखें कि प्रकृति विविधताओं की एक गहन सुन्दर दुनिया है तथा सामंजस्य के जैविक व्याकरण के अनुसार काम करती हैं। प्रकृति, सृष्टि की हर विद्यमान वस्तु के साथ समन्वय करते हुए परस्पर जुड़ा और परस्पर निर्भर कर्म है।"

तीन अरब-इज़राइली युद्ध, इज़राइलियों द्वारा फिलिस्तीनियों का निरंतर दमन, और उनका दृढ़तापूर्वक मुख्यतः अहिंसक विरोध, और उनकी बड़ी सैन्य शक्ति के बावजूद उनकी भ्रामक सुरक्षा तथा 350 किलोमीटर लम्बा 'अलग करने वाला अवरोधक घेरा', गांधीजी के 1938

में कहे गए कथन की पुष्टि करते हैं, "मेरी सहानुभूति मुझे न्याय की आवश्यकता की पूर्ति में बाधा नहीं बन सकती। अरब के ऊपर यहूदियों को थोपना गलत और अमानवीय काम है। आज फिलिस्तीन में जो कुछ भी हो रहा है उसे किसी प्रकार भी नीतिगत आधार पर उचित नहीं कहा जा सकता है।.... सबसे उदार और महान रास्ता होगा कि जहां यहूदी लोग जन्में और उनका पालन-पोषण हुआ है वहीं पर उन्हें न्यायोचित व्यवहार मिले। फ्रांस में जन्में यहूदी उतने ही फ्रांसीसी हैं जितने वहां जन्में ईसाई फ्रांसीसी है। हर देश उनका घर है, फिलिस्तीन भी, आक्रमण द्वारा नहीं, सप्रेम सेवा से...."

अनेक विख्यात यहूदी लेखकों ने इस बात का स्पष्ट रूप से अनुमोदन किया है कि 'फिलिस्तीन में न्याय की आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया गया है।' टॉम सेगेव, श्रमपूर्वक प्रसारित इस गलत धारणा का खंडन करते हैं कि "फिलिस्तीन बिना निवासियों का एक जमीन का टुकड़ा था, जो ऐसे देश के लिए था जिसके पास अपनी कोई भूमि नहीं थी।" वे ब्रिटिश जनरल वाल्टर कांग्रेव को उद्धरित करते हैं, "तब तो हम यह घोषणा भी कर सकते हैं कि इंग्लैंड इटली का भाग है क्योंकि एक समय में इंग्लैंड पर रोम का आधिपत्य था।" अवि श्लेम निश्चयपूर्वक कहते हैं कि, "इजराइल राज्य का इतिहास जेव जेबोतिन्स्की की 'लौह-भित्ति' (Iron Wall) की रणनीति की पुष्टि करता है। हिटलर के बीच में पड़ने के बहुत पहले से जायोनिस्ट दिलेरी के साथ संघर्ष में लगे थे.... इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि इजराइल राज्य ने फिलिस्तीन के साथ बहुत अन्याय किया है।" बेनी मॉरिस इजराइल के पहले प्रधानमंत्री डेविड बेन गुरियन को उद्धृत करते हैं, "जैसी परिस्थिति है, हमें वैसी ही देखनी चाहिए। सुरक्षा के मोर्चे पर हम पर हमले हो रहे हैं और अरब लोग अपना बचाव करते रहे हैं। पर राजनैतिक क्षेत्र में हम हमलावर हैं और हम अपना बचाव करते हैं। वे देश में रहते हैं, जमीन उनकी है, गांव उनके हैं। हम विकीर्णन या 'डायास्पोरा' में रह रहे हैं और केवल फिलिस्तीन में प्रवास करना चाहते हैं और उनसे भूमि का कब्ज़ा (लिरकोश) लेना चाहते हैं।" अमनोन रूबिन्सटीन यहूदियों के पूरे फिलिस्तीन पर 'दैविक अधिकार' के दावे पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि, "यह स्थिति आजादी के बाद पैदा की गई है।" उनके अनुसार पारम्परिक यहूदी मूल्यों के आधार पर फिलिस्तीनियों से मानवीय व्यवहार किया जाना चाहिए। वे यह भी आग्रह करते हैं कि जिस प्रकार यहूदी लोग अन्य गैर-यहूदी जनतांत्रिक देशों में बिना अपना धर्म छोड़े हुए प्रगति कर सकते हैं, ठीक उसी प्रकार इजराइल को भी अन्य जातीय लोगों को समान अधिकार और अवसर प्रदान करना चाहिए। *न्यूयार्क रिव्यू ऑफ़ बुक्स* (फरवरी 8, 2001) के एक लेख में हेनरी सीगमैन कहते हैं, "इजराइल को उन लोगों के प्रति अनुग्रहित होना चाहिए जिनके साथ घोर अन्याय हुआ है। 1967 से लेकर अब तक 'वैस्ट बैंक' और गाजा को अपने कब्जे में रख कर उस अन्याय को और अधिक बढ़ा दिया गया है।"

पूर्व ब्रिटिश श्रम-मंत्री गेराल्ड कॉफमैन ने *स्पेक्टेटर* में लिखा, "इजराइल और विस्थापित इजराइल के धार्मिक यहूदी घरों में जाप किए जाने वाले *सेड़ार सर्विस फॉर पासओवर* (Sedar Service for Passover) तथा डायास्पोरा में एक मार्मिक संस्मरण है:- *अवादिम हेइनू बमूट्जरेयिम* (Avadim hayinu b'Mtzrayim) (हम मिश्र में गुलाम थे)। मिस्र के प्राचीन राजाओं (फैरो) ने यहूदियों के साथ जो किया, वही अब यहूदियों ने फिलिस्तीनियों के साथ किया, अन्तर केवल इतना है कि फिलिस्तीनियों के पास कोई 'मोजेज' नहीं है जो उन्हें मुक्ति दिला सके तथा उनके बीच कोई 'रेड सागर' उन्हें अलग करने के लिए नहीं है।"

ईलान पापे जिन्हें इजराइल का सबसे साहसी, और सिद्धान्तवादी इतिहासकार कहा जाता है, वे लिखते हैं, "हमें 21 वीं शताब्दी में इस त्रिकोणीय विकल्प का उल्लेख सदैव और निश्चित रूप से करना चाहिए कि बहिष्कार, अधिकार-हरण और दंड— यह तीनों कहीं अधिक प्रभावशाली और कहीं कम हिंसक विकल्प हैं जिनके द्वारा फिलिस्तीन के वर्तमान समय में हो रहे विनाश का विरोध किया जा सकता है और साथ ही साथ एक शांतिपूर्ण भूगोल के सृजन पर दृढ़ता से संवाद हो सकता है। एक ऐसा भूगोल जिसमें बन्दी बनाया गया भूमि का एक छोटा सा भाग पूरी तरह से विलुप्त हो सके और उसी स्थान पर, पूर्व और पश्चिम के मिलन का सबसे अच्छा स्थल बन सके।.... इसके पूर्व कभी भी गाजा की दुखांत कथा में त्रिकोणीय विकल्प और एक राज्य का समाधान स्पष्ट रूप से उजागर नहीं हुआ था।.... जब रंग और जातिभेद की यह दीवार और विद्युत-तरंग प्रवाहित कांटेदार जाली हटा दी जाएगी, तब गाजा फिर से फर्नान्ड ब्राउडल के तटीय समुदाय का प्रतीक बन जाएगा, जो विभिन्न संस्कृतियों को परस्पर मिलाने में सक्षम होगा, पिछले साठ वर्षों से बने हुए युद्ध-क्षेत्र के स्थान पर स्वयं को एक नए जीवन का स्थान बना पाएगा।"

इजराइल की सुरक्षा संबंधी चिंताओं ने उसे सन् 1967 में मिश्र और सीरिया के विरुद्ध अचानक आक्रमण करने की ओर अग्रसर किया। उसने 1981 में ईराक का 'ओसिराक न्यूक्लियर रिएक्टर' नष्ट किया, 1982 में दक्षिणी लेबेनान पर आक्रमण कर उसे 18 वर्षों तक कब्जे में रखा और स्वयं को गुप्त रूप से परमाणु-अस्त्रों से लैस किया (जैसा कि लम्बे समय से बन्दी बनाए गए वैज्ञानिक मोर्डेचाइ वानूनू ने 1986 में जानकारी दी थी)। इजराइल ने एक 350 किलोमीटर लम्बी और 15 फुट ऊंची दीवार का निर्माण भी किया है जो 'ग्रीन लाइन' के साथ-साथ है और जिसका अधिकतर भाग 'वैस्ट बैंक' में है, जिसे वे 'संधि रेखा अवरोधक' घोषित करते हैं। किन्तु अन्य लोग प्रायः उसे 'रंगभेद की दीवार' कहते हैं। अंतर्राष्ट्रीय न्याय अदालत (International Court of Justice) ने यह घोषणा की है कि "इजराइल द्वारा फिलिस्तीन की अधिकृत भूमि और उसके संबद्ध क्षेत्र में दीवार का निर्माण करना अंतर्राष्ट्रीय नियमों के विरुद्ध है।"

प्रधानमंत्री यिट्ज़हाक राबिन एक ऐसे बुद्धिमान और दूरदृष्टि वाले नायक थे जिन्होंने अनुभव किया कि इजराइल की सुरक्षा तभी सुनिश्चित की जा सकती है जब फिलस्तीनियों के साथ 'शांति के लिए भूमि' समझौता होगा। आरम्भ में 'लौह भित्ति' (Iron Wall) प्रस्ताव के प्रबल समर्थक प्रधानमंत्री पद की अपनी दूसरी पारी के आरम्भ में उन्होंने यासर अराफात से गुप्त रूप से अपने प्रतिनिधियों येअर हिर्श फेल्ड और अहमद कुरेई के माध्यम से समझौते के लिए बातचीत का निर्णय लिया। यह बातचीत ऐतिहासिक महत्व की थी क्योंकि इन दोनों विपक्षी दलों के बीच यह पहला आमने-सामने हुआ संवाद था। नार्वे सरकार ने आतिथ्य और सुरक्षा की जिम्मेदारी ली और वार्ताओं के बाद हुए समझौते को 'डेक्लेरेशन ऑफ प्रिंसिपल्स ऑन इन्टरिम सेल्फ-गवर्नमेन्ट एग्रीमेन्ट' (Declaration of Principles on Interim Self-Government Arrangements) का नाम दिया दो मानसिक समूहों के बीच आंतरिक टकराव उतना ही साफ है उतना ही परस्पर विमुख है जितना चंद्रमा और सूर्य। इजराइलियों को अब यह तय करना है कि क्या वे दक्षिण-पंथी सरकार का अनुसरण करेंगे जिससे वाशिंगटन से टकराव निश्चित है, जैसा कई साल पहले ज़ीलॉटस के नेतृत्व में रोम के विरुद्ध 1940 वर्ष पूर्व आत्म-संहारक युद्ध किया था, या नई दुनिया की ओर ओबामा के साथ यात्रा में शामिल होंगे।"

हफिंगटन पोस्ट के 8 जनवरी 2010 के अंक में माजिदा अबू रहमह (अब्दुल्ला अबू रहमह की पत्नी, जो अब अकसर 'फिलिस्तीनी गांधी' कही जाती हैं। बहुत मर्म-स्पर्शी ढ़ंग से अपने देशवासियों के अहिंसक संघर्ष की प्रशंसा करते हुए कहती हैं, "2008 के 'अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार दिवस', पर मेरे पति अब्दुल्ला अबू रहमह बर्लिन में गया। इस संधि पर 13 सितम्बर 1993 को वॉशिंगटन में पी.एल.ओ. के चेयरमैन यासर अराफत, इज़राइल के प्रधानमंत्री यिट्ज़हाक राबिन और अमेरिका के राष्ट्रपति बिल क्लिंटन आदि की उपस्थिति में हस्ताक्षर किए।

'डिक्लेरेशन ऑफ प्रिन्सिपल्स' (Declaration of Principles) के साथ दोनों पक्षों ने 'लैटरस ऑफ़ म्यूचुअल रिकग्निशन' (Letters of Mutual Recognition) पर भी हस्ताक्षर किए — जिसके तहत इजराइल ने पी.एल.ओ. को फिलिस्तीनियों

राबिन और अराफत का ऐतिहासिक हाथ-मिलन

के आधिकारिक प्रतिनिधि की तरह मान्यता दी तथा इसी प्रकार पी.एल.ओ. ने इजराइल के अस्तित्व के अधिकार को मान्यता दी और उनके विरुद्ध हर तरह की हिंसा को समाप्त करने तथा आतंकवाद को समाप्त करने का वादा किया। इन सारे वायदों के फलस्वरूप अगले पांच वर्षों में स्थायित्व कायम हो जाना था। इसका आधार यू. एन. सिक्योरिटी काउंसिल के प्रस्ताव 242 और 338 थे जिसके तहत इजराइल और फिलिस्तीन दो अलग राष्ट्रों की तरह शांति और परस्पर सौहार्द व सम्मान के साथ रहते। उसके पश्चात् एक वर्ष के भीतर ही, जुलाई 1994 में राबिन जॉर्डन के सम्राट हुसैन के साथ एक शांति समझौता करने में सफल हुए।

खेद की बात है कि 4 नवम्बर 1995 को 'ओस्लो समझौते' के समर्थन में एक विशाल रैली में, जब उन्होंने 'शिर लाशालोम' (शांति का गीत) इजराइल के गायक मिरि अलोनी के साथ गाया, एक परम रूढ़िवादी इजराइली युवा द्वारा 'ईश्वर प्रदत्त भूमि को वापस देने की रजामंदी' के लिए उनका कत्ल कर दिया गया। उनकी अंत्येष्टि के समय जो उच्च पदाधिकारी उपस्थित थे उनमें मिश्र और जॉर्डन राज्य के प्रमुख और मोरक्को, ट्यूनिशिया और ओमान के विदेशमंत्री थे— जो इस बात का प्रमाण है कि इजराइल के अरब देशों के साथ संबंध सुधारने में उनका बड़ा हाथ था। शांति के हजारों सक्रिय कार्यकर्ता उनकी पुण्य-तिथि पर 'कीकर राबिन' (पहले 'कीकर माल्शेई यिजारायल अर्थात् इजराइल स्क्वायर के राजा') में उनकी स्मृति में श्रद्धापूर्वक एकत्र होते हैं और उनकी 'शांति के लिए भूमि' के प्रत्यय को अपनाने का आग्रह करते हैं। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि इजराइल के अनेकों निवासी फिलिस्तीनियों के साथ न्याय पर आधारित शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व से रहना चाहते हैं।

अत्यन्त कठोर मत वाले लिकुड नेता बेन्यामिन नेतान्याहू ने जिन्होंने मई 1996 को चुनाव जीता, 'ओस्लो समझौते' की पूर्ण अवमानना कर उसे निरस्त कर दिया। उनके उत्तराधिकारी मजदूर नेता एहुड बराक 1999 से 2001 तक प्रधानमंत्री रहे और तब उन्होंने कैम्प डेविड में राष्ट्रपति क्लिंटन के सहयोग से जुलाई 2000 में पुनः यासेर अराफात से समझौते के लिए बातचीत शुरू की। यह वार्ता 2001 में जनवरी 22 से 28 तक, टाबा में चली और अंततः एक संयुक्त-विज्ञप्ति से समाप्त हुई, जिसमें यह दर्शाया गया कि प्रयास में प्रगति हुई है, किन्तु और बातचीत की आवश्यकता है। उसके तुरंत बाद जॉर्ज बुश संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति और एरियल शेरॉन इज़राइल के प्रधानमंत्री बने। दोनों ने अराफत के साथ किसी भी प्रकार की बातचीत करने से इन्कार कर दिया। अराफत का, जो बीमार और पूरी तरह से एकाकी थे, 11 नवम्बर 2004 को निधन हो गया। तब से 2006 के राष्ट्रीय चुनावों में 'हमस' की शानदार जीत ने और तदुपरांत जून 2007 में गाजा से 'फाताह' नेतृत्व और अधिकारी-तंत्र के जबरदस्ती निष्कासन से इज़राइल-फिलिस्तीन समस्या और भी विषम हो गई है।

27 दिसम्बर 2008 को इजराइल ने भयंकर हवाई आक्रमण किया और 3 जनवरी 2009 को गाजा में 'हमस' के विरुद्ध और दक्षिण लेबेनॉन में हिजबुल्लाह में उनके रॉकेट प्रक्षेपण संयंत्र को नष्ट करने के लिए थल सेना से आक्रमण किया; हालांकि इन आक्रमणों में उसे केवल सीमित सफलता ही मिल पाई और इजराइल की विख्यात सैन्य श्रेष्ठता को आघात लगा। फरवरी 2009 में संसदीय चुनावों के बाद बेंजामिन नेतानयाह के नेतृत्व में इजराइल में अति दक्षिण-पंथी सरकार ने सत्ता संभाली है जिसके कारण शांति प्रयासों का पुनः आरम्भ होना अधिक कठिन हो गया है।

इजराइल बनने के 62 वर्ष बाद भी उसका लिखित संविधान आज तक उपलब्ध नहीं हो पाया है, जो एक पूर्ण तरह भिन्न राजनीति का द्योतक है, न ही उसकी सीमाएं औपचारिक तौर पर स्पष्ट अंकित हैं। अधिकांश अरब देशों से उसके सम्बन्ध कटु बने हुए हैं। जब से ईरान ने यूरेनियम की प्राप्ति और उसे परिष्कृत करना शुरू किया है और इसके राष्ट्रपति अहमदी नेजाद ने यह घोषणा की है कि इजराइल 'नक्शे से मिटा देने लायक है', इजराइल के प्रधानमंत्री यह संकेत दे रहे है कि उनके देश के पास और कोई विकल्प नहीं बचा है सिवाय इसके कि ईरान के परमाणु-संस्थानों को नष्ट कर दे। यदि ऐसा होता है तो पश्चिमी एशिया का क्षेत्र धधक उठेगा, क्योंकि ईरान जो 800 करोड़ व्यक्तियों का देश है, सैन्य-बल में शक्तिशाली है और उसके पास 'शाहाब' 3 और 'घद्र' मिसाइल हैं जिनकी प्रक्षेपण क्षमता का क्षेत्र 1500 से 1800 किलोमीटर तक है। उसने यह घोषणा कर दी है कि यदि उस पर आक्रमण किया गया, तो वह तुरन्त जवाबी हमला करेगा और अपनी पहुंच तक, इजराइली और अमेरिकी परिसम्पत्ति पर प्रहार करेगा। इसके अतिरिक्त वह हॉरमुज की खाड़ी में तेल से भरे जहाजों को नष्ट कर डालेगा। इस संदर्भ में राष्ट्रपति बुश ने तृतीय विश्व महायुद्ध की संभावना का उल्लेख किया है।

पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति जिमी कार्टर अपनी पुस्तक *पीस नॉट अपारथीड* (Peace not Apartheid) में लिखते हैं, "1979 की इजराइल और मिश्र के शांति-संधि पर हस्ताक्षर होने के पश्चात्, बहुत लहू अनावश्यक रूप से बहाया गया है और इजराइल और उसके पड़ोसी देशों में आपसी समझौता कराने के अनेकों प्रयास बार-बार विफल हुए हैं। अरब के कई स्रोतों द्वारा आलोचना के बावजूद, यह समझौता इस बात का प्रमाण है कि व्यवहार कुशलता पुराने विरोधियों के बीच भी अखंड शांति कायम करा सकती है।" वे कहते हैं कि 1978 के 'कैम्प डेविड समझौते', 1982 में रीगन द्वारा दिए गए वक्तव्य, 1993 का ओस्लो समझौता, 1994 की इजराइल जोर्डन शांति-संधि, 2002 का अरब-शांति-प्रस्ताव, 2003 की जेनेवा की पहल और *'अंतर्राष्ट्रीय चतुर्थक मार्ग दर्शक'* (International Quartet's Road Map), सभी में शांति स्थापना के अच्छे अवयव विद्यमान हैं। अतएव वे निष्कर्ष देते हैं,"सारांश यह है कि इजराइल और मध्य-पूर्व में शांति तभी स्थापित हो सकेगी जब इजराइल की सरकार अंतर्राष्ट्रीय नियमों का पालन करने को इच्छुक होगी,

शांति के मार्ग को अपनाएगी, सरकारी अमेरिकी कूट-नीति का अनुपालन करेगी, अपने देश के बहुसंख्यकों की इच्छाओं तथा अपनी ही पिछली वचनबद्धता का आदर कर अपनी वैध सीमाओं को स्वीकार करेगी। समस्त अरब देशों को इजराइल के इन परिस्थितियों में शांति से रहने के अधिकार का आदर करने की शपथ लेनी होगी। इजराइल द्वारा फिलिस्तीन के भू भाग को जब्त करने और वहां बस्ती बसाने के उपक्रम की अपरोक्ष रूप में अनदेखी कर संयुक्त राज्य अमेरिका अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और सद्भावना को गंवा रहा है और विश्व में अमेरिका-विरोधी आतंकवाद को बढ़ावा दे रहा है।"

4 जून 2009 को काहिरा में दिए गए अपने प्रभावशाली भाषण में राष्ट्रपति ओबामा ने घोषणा की है, "कई दशकों से एक गतिरोध स्थिरता व्याप्त है— वैध आकांक्षाओं के साथ दो राज्य, दोनों का कष्टमय इतिहास जो समझौते को अधिक दूर करता जा रहा है। दोषारोपण करना आसान है— फिलिस्तीनियों के लिए इजराइल द्वारा उनका विस्थापन और इजराइल पर लगातार उग्र लड़ाई और घर तथा बाहर दोनों तरफ़ से आक्रमण। इस संघर्ष को अगर एक तरफ से देखें तो हम सच से आंखें मूंद लेंगे। इसका एक ही हल है कि दोनों पक्षों की आशाओं को दो राज्यों की स्वीकृति से पूरा किया जाए जहां इजराइल और फिलिस्तीनी लोग शांति से सुरक्षित रह सकें। इसलिए इस काम के अन्तिम परिणाम के लिए मैं धैर्य से काम करना चाहता हूं। शांति होने के लिए उनके और हम सबके लिए अपनी जिम्मेदारियां निभाने का समय है।"

उनके व्याख्यान पर टिप्पणी करते हुए विख्यात सक्रिय शांति नेता **उरी एवनेरी** ने लिखा, "जिस क्षण ओबामा 21 वीं सदी का आवाहन कर रहे हैं इजराइल 19 वीं सदी में वापस जा रहा है। उस शताब्दी में एक दम्भपूर्ण और आक्रामक राष्ट्रीयता ने कई देशों में जड़ें पकड़ी थीं। एक ऐसी शताब्दी जिसमें युद्धरत देश को पाप मुक्त कर दिया जाता था जो अल्पसंख्यकों का दमन करता और पड़ोसियों को आधीन बनाता था। उस शताब्दी ने आधुनिक यहूदीवाद का विरोधी पैदा किया और उसके प्रति-उत्तर में आधुनिक जायोनिज्म को जन्म दिया।.... ओबामा का राष्ट्रवाद एक व्यापक, बहु-सांस्कृतिक और लिंग-भेद रहित राष्ट्रवाद है, जो देश के सारे नागरिकों को शामिल करता है और दूसरे देशों का सम्मान करता है। इसकी तुलना में इजराइल की मानसिक दुनिया कितनी दुख भरी है? उपनिवेशियों की धर्मान्ध दुनिया कितनी त्रस्त है। नेतनयाहू, लीबरमैन और बरक की उग्र राष्ट्रवादी यहूदी बस्ती, काहानिस्ट गुटों का जातिवादी-फासिस्ट संकुचित विश्व। दो मानसिक समूहों के बीच आंतरिक टकराव उतना ही साफ है उतना ही परस्पर विमुख है जितना चंद्रमा और सूर्य। इजराइलियों को अब यह तय करना है कि क्या वे दक्षिण-पंथी सरकार का अनुसरण करेंगे जिससे वाशिंगटन से टकराव निश्चित है, जैसा कई साल पहले ज़ीलॉटस के नेतृत्व में रोम के विरुद्ध 1940 वर्ष पूर्व आत्म-संहारक युद्ध किया था, या नई दुनिया की ओर ओबामा के साथ यात्रा में शामिल होंगे।"

हफिंगटन पोस्ट के 8 जनवरी 2010 के अंक में **माजिदा अबू रहमह** (अब्दुल्ला अबू रहमह की पत्नी, जो अब अकसर 'फिलिस्तीनी गांधी' कही जाती हैं। बहुत मर्म-स्पर्शी ढ़ंग से अपने देशवासियों के अहिंसक संघर्ष की प्रशंसा करते हुए कहती हैं, "2008 के 'अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार दिवस', पर मेरे पति अब्दुल्ला अबू रहमह बर्लिन में 'वर्ल्ड एसोसिएशन फॉर हयूम्न राइट्स' (World Association for Human Rights) से एक पदक प्राप्त कर रहे थे। पिछले साल उसी दिन 10 दिसम्बर को 2 बजे रात को वैस्ट बैंक के हमारे घर में घुस कर इजराइली सिपाही उनको पकड़ कर ले गए। उनको उन्हीं कारणों से बन्दी बनाया गया जिनके लिए उन्हें इनाम मिला था— फिलिस्तीन और इजराइल में न्याय, समानता और शांति स्थापित करने के लिए अहिंसक संघर्ष के कारण। मेरे पति एक स्कूल टीचर हैं तथा फिलिस्तीनी गांव बिलिन के एक किसान हैं। जब इजराइल में जाति-भेदी दीवार बनाई तो पूर्व मत्तियाहू की अवैध बस्ती बसाने के लिए बिलिन की आधी भूमि उससे अलग कर दी। उसके प्रति-उत्तर में अब्दुल्ला और अन्य साथी गांव वालों ने अहिंसक विरोध की मुहिम शुरू की। पिछले पांच वर्षों से हर शुक्रवार को हम इजराइली और अन्तर्राष्ट्रीय समर्थकों के साथ अपनी जमीन और जीविका की चोरी के विरोध में मार्च करते हैं।

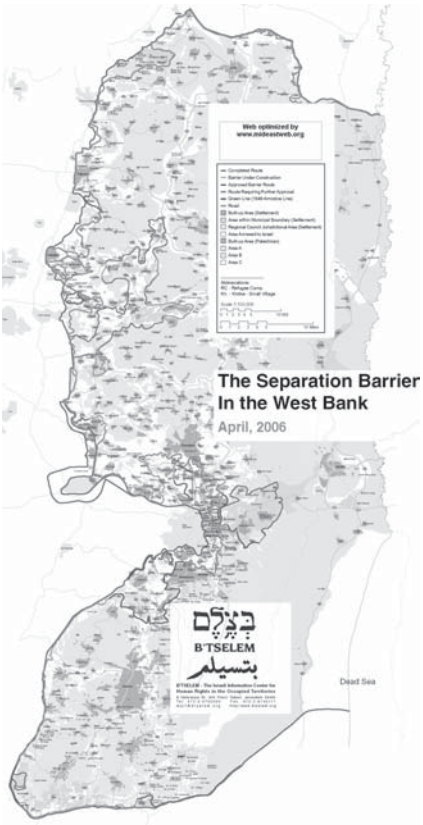

"सितम्बर 2007 में इजराइली सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय सुनाया कि बिलिन में दीवार का रास्ता अवैध है, उसे बदलना चाहिए। आज दो साल बाद भी दीवार उसी जगह कायम है। कई लोग निरुत्साहित हो गए पर अब्दुल्ला ने उनसे कहा कि हमारे आन्दोलन का दबाव और अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन दीवार गिरा सकता है।

"जैसे जैसे आधारभूत संघर्ष बढ़ रहा है, उसे समाप्त करने के प्रयत्न भी गहरे होते जा रहे हैं। आन्दोलन में भाग लेते समय हमारे प्रिय मित्र बासेम अबू रहमह ने इजराइल के सिपाहियों से बात करने की कोशिश की तो उन्होंने उनकी हत्या कर दी। 77 अन्य लोगों को रात में हिंसक आक्रमण करके गिरफ्तार कर

लिया गया। इनमें से एक अब्दुल्ला के चचरे भाई अदीब अबू रहमह हैं, जिन्होंने अब्दुल्ला की तरह एक भी आन्दोलन में नागा नहीं किया और वे कभी हिंसा पर नहीं उतरे। नौ बच्चों के पिता, अदीब पांच महीनों से कैद हैं और उनके रिहा होने की कोई आशा नहीं है।

"पूर्व राष्ट्रपति जिमी कार्टर और आर्कबिशप डेस्मन्ड टुटु जैसे नेता हमारे गांव पधारे हैं। पिछले अगस्त में वे अब्दुल्ला के साथ बासेम की कब्र पर प्रार्थना के लिए खड़े हुए थे। टुटु ने हमसे कहा, "जैसे गांधी नामक एक साधारण व्यक्ति ने भारत में सफल अहिंसक संघर्ष का नेतृत्व किया था, उसी तरह यहां बिलिन में साधारण लोग अहिंसक संघर्ष का नेतृत्व कर रहे हैं, जो उन्हें स्वतंत्रता दिलाएगा।"

"अपनी गिरफ्तारी के पहले तीसरे पहर अब्दुल्ला ने 'वर्ल्ड एसोसिएशन फॉर ह्यूमन राइट्स' (World Association for Human Rights) में पढ़ा जाने वाला भाषण तैयार किया था। उसमें लिखा, "मेरी इच्छा है कि इस इनाम को लेते समय मैं अपने साथियों की प्रसन्नता में हिस्सेदार बन कर शामिल हो सकूं और आप सब के साथ बर्लिन-वॉल के हटाए जाने की 20 वीं वर्षगांठ का जश्न मना सकूं। पर बाहरी आधिपत्य हमारे राज्य, जमीन, यहां तक कि जीवन को भी छीन लेता है और जीवन के अनेक सुमधुर, सुंदर क्षणों से भी वंचित कर देता है। इजराइल की तरह हमारे पास परमाणु हथियार नहीं हैं, न ही कोई सेना है, और न ही हमें उसकी आवश्यकता है। आपकी सहायता से हम अपने न्यायपूर्ण उद्देश्य में सफल होंगे और इजराइल की रंगभेद की दीवार गिरायेंगे।

"हमारे घर से अब्दुल्ला को जेल ले जाने के 12 घंटों बाद मैंने सुना कि राष्ट्रपति ओबामा ने 'नोबल शांति पुरस्कार' प्राप्त किया और उन लोगों की चर्चा की, 'जो आदमी और औरत न्याय की तलाश के लिए सारी दुनिया में जेल में डाले गए हैं और पीटे गए हैं।' उस समय मुझे बासेम, अदीब और अपने पति का ख्याल आया कि क्या राष्ट्रपति ओबामा हमारी आजादी की लड़ाई को समर्थन देने के लिए काम करेंगे?"

राश्ट्रपति ओबामा ने सक्रियतापूर्वक जॉर्ज मिचेल को मध्यपूर्व का अपना उप राजदूत नियुक्त किया। मिचेल 1998 उत्तरी आयरलैन्ड षांति समझौते के रचनाकार थे। काफ़ी प्रयत्नों के बाद मिचेल, इज़राइल और फ़िलिस्तीन के बीच मध्यवर्ती वार्ता षुरु करवाने में सफल हुए। इज़राइल द्वारा पूर्वी जेरुसलम में अवैधानिक रुप से निर्माण कार्य कराने की वजह से दिसम्बर 2008 की सीधी बातचीत बीच में अधूरी ख़त्म हो चुकी थी। ये वार्ता इसलिएअधूरी छोड़ दी गई क्योंकि,अमेरिका के ज़ोरदार आग्रह के बावजूद, प्रधानमंत्री नेतनयाहू ने निर्माण कार्य अगले छः महीनों तक स्थगित करना अस्वीकार कर दिया। निर्माण कार्य का आदेष उन्होंने मार्च 2010 में

ही दिया था। मई 2011 में मिचेल ने 30 महीनों के प्रयासों पर पानी फिरते देख हतोत्साहित हो कर अपना त्यागपत्र राश्ट्रपति ओबामा को सौंप दिया।

प्रधानमंत्री नेतनयाहू की अमेरिका यात्रा के ठीक पहले, राश्ट्रपति ओबामा ने षांति वार्ता दुबारा षुरु करने का सार्वजनिक तौर पर आग्रह किया तथा 1967 में तय की गई सीमाओं के आधार पर दो अलग देष बना कर समस्या का समाधान सुझाया। इस सुझाव में दोनों गुटों के बीच आपसी रज़ामन्दी से ज़मीन की अदला-बदली भी षामिल थी। प्रधानमंत्री ने अमेरिकी कॉन्ग्रेस को 24 मई के भाशण में इस सुझाव को दष्ढ़ता से अस्वीकार करते हुए कहा, ''इज़राइल 1967 की असमर्थनीय सीमाओं पर वापस नहीं जाएगा। जूडिया और समरिआ में यहूदी लोग आधिपत्य करने वाले विदेषी नहीं हैं। हम भारत में ब्रिटिष जैसे आधिपत्य करने वाले नहीं हैं। हम कॉन्गो में बेल्जियन लोगों की तरह नहीं हैं। ये इज़राइल की धरती हमारे पुरखों की धरती है जिस पर एब्राहम ने विष्व को एक ईष्वर का बोध कराया, जहां डेविड गोलिएथ का सामना करने निकल पड़ा था, जहां इसाइआह ने षाष्वत षांति का स्वप्न देखा था। यहूदियों और उनकी धरती के बीच का अटूट सम्बन्ध, इतिहास को किसी तरह भी विकष्त करके भी तोड़ा नहीं जा सकता।'' उन्होंने फ़िलिस्तीनियों को केवल एक आषा दिलाई जो एकदम निरर्थक थी, ''इसलिए मैं राश्ट्रपति अब्बास को कहता हूं कि हमस से अपना करार ख़त्म करो! बैठो और समझौता करो! यहूदी देष के साथ मिल कर षांति स्थापित करो! अगर आप ऐसा करते हैं तो मैं वादा करता हूं कि इज़राइल पहला देष होगा जो फ़िलिस्तीन को संयुक्त राश्ट्र के नए सदस्य की तरह स्वागत करेगा।''

इन्टरनेषनल हेरल्ड ट्रिब्यून के 16 मई 2011 के एक लेख में राश्ट्रपति अब्बास ने लिखा, ''हम इज़राइल के साथ 20 साल से बात कर रहे हैं पर हमारा अपना देष बनने के कोई भी आसार नज़र नहीं आते। हम अनिष्चित काल तक इंतज़ार नहीं कर सकते। कब्ज़ा किए गए वैस्ट बैंक में बसने के लिए इज़राइल और ज़्यादा तादात में विस्थापितों को भेजता जा रहा है। इसके अलावा हम फ़िल्स्तीनियों को अपनी ही धरती और पवित्र स्थानों पर, ख़ासतौर पर जेरुसलम जाने से रोक लगाता है। अमेरिका द्वारा दिए गए इनाम के वादे और सियासी दबाव भी इज़राइल के पुनर्वास के कार्यक्रम को रोक नहीं सके हैं। इसलिए 1967 की सीमारेखा के अनुसार फ़िलिस्तीन राज्य को मान्यता दी जाए और उसे संयुक्त राश्ट्र संघ का एक अलग सदस्य माना जाए।'' सुरक्षा परिशद में अमेरिका के वीटो अधिकार को ध्यान में रखते हुए, क्या फ़िलिस्तीन की अपील सफल होगी ये विवादास्पद है। वास्तविकता ये है कि संयुक्त राश्ट्र महासभा में 118 राश्ट्रों ने फ़िलिस्तीन नेषनल अथॉरिटी को मान्यता पहले ही दे दी है और 2/3 बहुमत के लिए 130 की ज़रुरत है।दिसम्बर 2008 में गाज़ा के विरुद्ध इज़राइल द्वारा 23 दिनों की सैनिक कार्रवाई पर जारी की गई जस्टिस रिचर्ड गोल्डस्टोन की आलोचनात्मक रिपोर्ट प्रकाषित हुई। उसके बाद 31 मई 2010

को गाज़ा के सहायता बेड़े पर हमले के ख़िलाफ़ वैष्विक आक्रोष के फलस्वरुप भी अन्तर्राश्ट्रीय क्षेत्रों में इज़राइल की स्थिति और उसकी मांग का औचित्य काफ़ी कमज़ोर हुआ है।

राष्ट्रपति ओबामा ने कार्यभार संभालने के तुरंत बाद पूर्व सीनेट के बहुमत नेता जॉर्ज मिचेल, जो 1995 के बोस्निया-हेरजेगोविना और 1998 उत्तरी आयरलैन्ड शांति संधियों के सृष्टा हैं, को मध्यपूर्व का राजदूत नियुक्त किया और इस तरह इजराइल और पैलेस्टीन में आन्तरिक तौर पर इस समझौते को जल्दी सुनिश्चित करने में अपनी प्राथमिकता का परिचय दिया है। इसके अलावा इजराइल और अमेरिका में आन्तरिक तौर पर इस समझौते को कार्यान्वित करने के विषय में काफी सरगर्मी है। इस प्रयत्न में संलग्न अनेक गैर सरकारी संस्थाएं जैसे 'गुश शैलोम' (जो कई शांति संस्थाओं जैसे 'मैरेत्ज', 'लेबर ड़ब्ज', 'किबुज आरजी', 'हशोमर हैत्जर', 'नैतिवोत शेलौम', 'बिरीव्ड पेरेंटस फोरम', 'ग्रीन लाइन', और 'डेमोक्रेटिक च्वाइस', का संगम है), 'तायूश', 'कौम्बेटेन्टस फौर पीस', 'कोआलिशन ऑफ विमेन फॉर जस्ट पीस', 'अमेरिकन फॉर पीस नाउ' और 'नैटवर्क ऑफ स्पिरिचुअल प्रोग्रेसिव्स' हैं। उनके अधिकांश सदस्य यहूदी हैं और फिलिस्तीनियों के लिए न्याय का समर्थन करते हैं। वे 1967 की सीमाओं के साथ दो पृथक राज्यों की स्थापना और दोनों की राजधानी जेरुसलेम को बनाना चाहते हैं। 'गुश शैलाम' उन इजराइली सिपाहियों का भी समर्थन करते हैं जो कब्जे वाले क्षेत्रों में काम करने को मना करते हैं। वे निर्माणाधीन जगहों और 'दीवार' के साथ साथ इजराइली फौजों से लगातार संघर्ष-रत रहते हैं। रेचैल कोरी नामक एक युवा अमेरिकी यहूदी लड़की ने मार्च 2003 में राफाह में एक फिलिस्तीनी घर को टूटने से बचाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी। यह बलिदान तथा अन्य शौर्यपूर्ण त्याग एवं बलिदान

जल्दी ही फिलिस्तीनियों को न्याय दिलाएंगे और इजराइलियों की सुरक्षा और दोनों पक्षों की शांति सुनिश्चित होगी।

उसी भावना से टॉमस फ्राइडमैन ने न्यूयॉर्क टाइम्स के 24 मई 2011 के अंक में "लेसन्स फ्रॉम तहरीर स्क्वायर" नामक लेख में लिखा,"मैं फिलिस्तीनियों को कहूंगा : आपकी द्विविधा ये है कि इज़राइल को इस तरह से हटाया जाए कि आपको मुंह की खानी न पड़े या आपको आत्मसमर्पण करना पड़े। आपको इज़राइल–अरब षांति के दष्ढ़ कानून से षुरु करना होगा अर्थात जिस पार्टी को इज़राइलियों का गुप्त बहुमत मिलेगा वह जीतेगा। अनवर सादात अपनी इज़राइल यात्रा के दौरान इज़राइल का बहुमत प्राप्त कर सके और उन्हें वो सब मिल गया जो वह चाहते थे —"। दुख की बात है कि इज़राइलियो ने तहरीर स्क्वायर से कुछ नहीं सीखा। जुलाई के मध्य से वे सड़कों पर उतर आए, पहले सैकड़ों, फिर अगस्त के षुरु में हज़ारों की तादात में। ६ अगस्त, षनिवार को देष भर में तीन लाख लोगों ने विरोध प्रदर्षन रैली षुरु कर दी, 250,000 तेल अवीव में, 30,000 जेरुसलम में और अष्केलॉन, हैफ़ा, तूज़ेमाक, पेटाच तिकवा, राननना, दिमोना, हदेरा, रोषपिना, किरयत षोमना और एइलत में तीन तीन हज़ार की संख्या में लोग सड़कों पर निकल पड़े। गिल सेसान नामक एक नेता का कथन था, "यहां हम में एक अद्वितीय सामूहिक चेतना जागी है। ये लड़ाई, जो कम कीमत वाले घरों के लिए षुरु हुई थी वह आन्दोलन बढ़ता जा रहा है और अब हमारा लक्ष्य पूरे तंत्र में बदलाव लाना है।" कीमती रिहाइषी घरों की षिकायत को नाटक का रुप देते हुए रॉथ्सचाइल्ड बोलिवार्ड, तेल अवीव में हज़ारों टैन्टों की एक कॉलनी बसाई गई हैं, जिसमें बारी बांध के लोग रह रहे हैं।" एक आन्दोलनकारी ने गर्व से कहा कि मिदन तहरीर किकर रबिन के पास आ गई है। —

राष्ट्रपति अनवर सादात गांधी से प्रेरित हुए हों या न हुए हों, किंतु उन्होंने सन् 1977 में इस सत्य का सामना किया कि मिश्र के 1948, 1967 और 1973 के इजराइल के साथ हुए युद्ध (जिसमें अंतिम युद्ध में, प्रारम्भ में उन्हें उल्लेखनीय सफलता मिली), उसके लिए अनर्थकारी थे। उन्होंने युद्ध का परित्याग कर अहिंसात्मक

राष्ट्रपति सादात इजराइली क्नसैट को संबोधित करते हुए, नवम्बर 20, 1977

संघर्ष-समाधान का मार्ग अपनाया। उन्होंने नवम्बर 1977 में जेरूसलेम की ऐतिहासिक यात्रा की जिससे प्रधानमंत्री मैनाकेम बेगिन के साथ बातचीत का रास्ता खुल गया और उसके फलस्वरूप राष्ट्रपति कार्टर के तत्वावधान में सितम्बर 1978 में ऐतिहासिक 'कैम्प डेविड समझौता' हुआ। मार्च 1979 में मिश्र और इजराइल के बीच एक शांति समझौते पर हस्ताक्षर हुए जिसने औपचारिक रूप से उनके बीच चले आ रहे तीस वर्षों के युद्ध को समाप्त कर दिया। उसके तुरंत बाद दोनों देशों के बीच आपसी राजनयिक संबंध स्थापित हुए। जून 1982 तक मिश्र ने बिना एक भी गोली चलाए इजराइल से अपने वे सभी क्षेत्र वापस प्राप्त कर लिए जो वह 1967 के युद्ध के पश्चात् हारा था।

अगस्त 1994 में उत्तरी आयरलैंड में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध चले आ रहे कई दशकों के सशस्त्र प्रतिरोध के पश्चात् 'सिनफिन' तथा राष्ट्रपति **गैरी एडम्स** ने (जिसने आइ.आर.ए. के कैदियों द्वारा 1981 में भूख हड़ताल आयोजित कराई और उत्तरी आयरलैंड के कैथोलिक समुदाय को संगठित किया था) 18 महीनों का एक-तरफ़ा युद्ध-विराम घोषित किया और तदुपरांत् उसकी अवधि बढ़ाई और अप्रैल 1998 में ऐतिहासिक 'गुड फ्राइडे समझौते' पर हस्ताक्षर किए। उन्होंने इस सत्य को स्वीकार किया कि हिंसा द्वारा उनके उद्देश्य की पूर्ति नहीं हुई और अहिंसावादी उपक्रम ऐसा करने में अधिक सक्षम था। जून 1998 के चुनावों में एडम्स ने उत्तरी आयरलैंड की विधान-सभा क्षेत्र की एक सीट जीती और तदुपरान्त् ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य बन गए। इस प्रकार से उत्तरी आयरलैण्ड के एक लम्बे और कष्टकारी संघर्ष की समाप्ति से राष्ट्रीय पुर्न-एकीकरण के रास्ते खुल गए हैं।

गांधी का निश्चित मत था कि अहिंसात्मक संघर्ष सर्वाधिक दमनकारी के विरुद्ध भी संगठित किया जा सकता है तथा महिलाओं, अनपढ़ किसानों और बच्चों आदि सभी के द्वारा किया जा सकता है।

लास मद्रेस दि प्लाज़ा दि मेयो, अर्जेन्टाइना

महिलाओं के एक दल ने, जिसमें षुरुआत में सिर्फ़ 14 महिलाएं थीं, 30 अप्रैल 1977 को अर्जेन्टाइना के अत्याचारी सैनिक प्रषासक गुट के ख़िलाफ़ निडरता से विरोध षुरु किया। 1976 से 1983 तक के सात वर्श के इस अत्याचारी प्रषासन काल के आरम्भ में 14 महिलाएं अचानक गायब हो गईं। विरोध करने वाली महिलाएं उन गायब हुई औरतों की माताएं थीं। राश्ट्रपति निवास कासा रोसाडा के सामने प्लाज़ा दि मेयो में वे सभी अपने सिर पर सफ़ेद स्कार्फ़ ओढ़ कर एकत्र हुईं। उनके दुषालों पर उनके बच्चों के नाम कढ़े

हुए थे। उसके बाद वे हर गुरुवार को वहां इकट्ठी होती रहीं। 1977 के अंत तक उनकी संख्या बढ़ कर 150 हो गई। अपने को 'लास मद्रेस दि प्लाज़ा दि मेयो' या 'एम.पी.एम' का नाम देते हुए उन्होंने अपने बच्चों के बारे में ख़बर दिए जाने की अपील पेष की तथा इस बारे में समाचारपत्रों में विज्ञापन भी दिए। जब फ़रवरी 1978 में एम.पी.एम. के तीन संस्थापक सदस्य, अजुसेना विलाफ़्लोर, ऐस्टर करिआगा और मारिया यूजेनिआ बिआंको भी 'ग़ायब' हो गईं, तब प्रषासन के विरुद्ध घोर देषव्यापी और अन्तर्राश्ट्रीय प्रतिक्रिया उभरी तथा अन्य विरोधी संस्थाएं भी एम.पी.एम. के साथ षामिल हो गए। जल्दी ही ऐसी संस्थाओं का एक राश्ट्रव्यापी नेटवर्क बन गया औरप्रषासन की ख़िलाफ़त सारे देष में लगातार बढ़ती गई। कुछ राजनैतिक विष्लेशकों की राय है कि अप्रैल 1982 में फ़ॉकलैन्ड द्वीप के मलविनस पर आक्रमण और फिर कब्ज़ा करने का प्रषासन का फ़ैसला इस इरादे से लिया गया था कि उसके कारणइस बड़े विरोध ा को कमज़ोर बना कर आम जनता का समर्थन दुबारा हासिल किया जा सकता है। ब्रिटेन के हाथों बुरी तरह हार जाने के बाद उसे राजनैतिक पार्टियों पर से प्रतिबन्ध हटाने और नागरिक आज़ादी फिर से बहाल करने पर मजबूर होना पड़ा। 10 दिसम्बर 1983 को राउल अलफ़ान्सिन की अध्यक्षता में एक असैनिक सरकार ने सत्ता सम्भाली, जिसने सेना पर नागरिक नियंत्रण रखने, प्रजातंत्र को सषक्तकरने और 'गायब' हुए लोगों के मामलों की छानबीन का काम षुरु किया। ये काम उनके उत्तराधिकारी नेस्टर किर्चनर ने आगे बढ़ाते हुएइन जुर्मों के ज़िम्मेदार सैनिक अधिकारियों पर मुकदमा चला कर उन्हें आजीवन कारावास की सज़ा दिलाई।

'सर्चिंग फ़ॉर लाइफ़' नामक पुस्तक में **रिटा अर्दिति** ने लिखा, ''इन माताओं ने एक नई राजनैतिक भागीदारी का निर्माण किया है जो पार्टी के ढांचे से बिलकुल अलग है और प्यार एवं परवाह करने के मूल्यों पर आधारित है। मातष्त्व के कारण ही, वे पुरुशों के सहयोग के बिनो, एक गठबंधन का सष्जन और इस आन्दोलन को साकार कर सकीं।'' मार्क कुर्लैन्स्की ने दष्ढ़ता से कहा कि, ''1982 में अर्जेन्टीना के पतन के कई कारण थे। पर बदलाव लाने में इन महिलाओं की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका थी।''

1999 में एम.पी.एम. को संयुक्त राश्ट्र संघ के षांति षिक्षा पुरस्कार से अलंकष्त किया गया।

चिली में 11 सितम्बर 1973 को **जनरल अगस्टो पिनोचेट** के नेतृत्व में एक सैनिक दल ने जनतांत्रिक विधि से निर्वाचित **सेलवेडोर एलेन्डे** सरकार को सत्ता से अपदस्थ कर दिया। प्रिसिला हेनर ने अपनी पुस्तक अनस्पीकेबल ट्रुथ्स (Unspeakable Truth) में उन वीभत्स घटनाओं का वर्णन किया है जो उसके बाद घटित हुईं। एक लाख से अधिक लोगों को प्रताड़ित किया गया और नृशंस यातनाएं दी गईं, उनमें से अनेक सदा के लिए लुप्त हो गए, फिर कभी नहीं दिखे। साथ में उन्होंने उस अहिंसक संघर्ष का भी वर्णन किया है जो इस नृशंसता के विरोध में आयोजित हुआ। "हम में से कुछ यह सोच कर हैरान थे कि क्या अहिंसा की शक्ति में गांधी जी की अर्न्तदृष्टि हमारे संघर्ष के द्वारा इस आतंक का सामना कर पाएगी। हम में से कुछ ने निश्चय किया कि इस तानाशाही के विरूद्ध सच का पर्दाफ़ाश करने के लिए आम लोगों को प्रेरित किया जाए। गुप्त रूप से परचे और पैम्फलैट छापे गए। बहुत जोखिम उठा कर रातों को दीवारों पर नारे लिखे गए। इन सब कार्यों के पीछे अहिंसा का सिद्धान्त था। क्योंकि जहां अन्याय हो रहा है, वहां पहली जरूरत है दूसरों को उसकी सूचना देना, अन्यथा हम उस अन्याय के एक भागीदार बन जाते। इन गुप्त कार्यों से सच बताने और उस पर आचरण करने के सिद्धान्त का प्रचार करने में सहायता मिली। खतरे के बावजूद हमें इन गुप्त प्रयासों से आगे बढ़ कर जनता तक पहुंचना था।"

जोसे अल्डुनेट नामक एक यहूदी पादरी ने जो चिली के 'सेबस्चियन एसवेदो मूवमेंट अगेन्स्ट टार्चर इन चिली (Sebastian Acevedo Movement against Torture in Chile) के नेता थे, लिखा है, "हमने अहिंसा के 'कष्ट' और गतिशीलता के विषय में अपने को शिक्षित और अभ्यस्त किया। हमने महात्मा गांधी पर बनी एक फिल्म देखी। हमने आपस में विचार-विनिमय करके अत्याचार की भर्त्सना करने के लिए एक अहिंसक प्रदर्शन करने का निर्णय लिया। सर्व-साधारण के सामने अत्याचार की निन्दा करना हमारा कर्तव्य था। हमें जन-साधारण की अन्तरात्मा को झकझोरने की जरूरत थी।"

14 सितम्बर 1983 को सैन्टियागो में नेशनल इन्वेस्टिगेशन सेन्टर के सामने अत्याचार के विरुद्ध आन्दोलन चालू हुआ। 70 व्यक्तियों ने ट्रैफिक अवरुद्ध किया, 'यहां अत्याचार हुआ है' का बैनर लहराते हुए और आजादी का गीत गाते हुए इसका आरम्भ हुआ। मानवता के विरुद्ध शासन के जुल्मों की निन्दा करते हुए वह समूह हर महीने वहां वापस आया। इस आन्दोलन का कोई सभागार नहीं था। भागीदार व्यक्तिगत निमंत्रण पर आते थे, क्योंकि गुप्तचर पुलिस तथा अन्य दमनकारी शक्तियों के हस्तक्षेप से आन्दोलन को बचाना था। व्यक्ति से व्यक्ति को मौखिक निर्देश दिए जाते थे। कार्यकर्ताओं को प्रदर्शन के दौरान ही प्रशिक्षण दिया जाता था, हर काम का मूल्यांकन कार्यस्थल पर ही होता था। 1988 में जब पिनोचेट ने अपने शासन की पुनरावृत्ति के लिए मतगणना

की घोषणा की, तो राष्ट्रव्यापी 'चिली ज़ी, पिनोचेट नो' का आवाहन जारी किया गया। पिनोचेट को गहरा आघात लगा जब उसे अपदस्थ कर दिया गया।

1973 में हुए सैनिक विद्रोह के समय, **मिचले बैचेलेट** के पिता, जो एक जनरल थे, एलेन्डे सरकार में खाद्य वितरण अधिकारी थे। उन पर देशद्रोह का आरोप लगाकर उन्हें सताया गया जिसके कारण उन्हें दिल का दौरा पड़ा और 12 मार्च 1974 को उनका देहान्त हो गया। जनवरी 1975 में उनकी पत्नी और बेटी मिचेल को बंदी बनाया गया क्योंकि वह निषिद्ध सोशलिस्ट पार्टी के गुप्त संगठन के हरकारे की तरह काम करती थीं और विरोध आन्दोलन के संगठन में सहायक थीं। उन्हें बन्दी बनाकर विला ग्रिमालडी बन्दी-ग्रह ले जाकर उनसे पूछताछ की गई फिर उन्हें सताया गया और कुआद्रों अलामॉस जेल में डाल दिया गया। जून 1975 में कुछ सैनिक मित्रों की सहायता से वे रिहा हुईं। उन्हें देश से निष्कासित करके आस्ट्रेलिया भेज दिया गया। उसी साल मई में मिचेल अपनी मेडिकल की शिक्षा पूरी करने के लिए पूर्वी जर्मनी चली गईं। उन्हें चिली लौटने की अनुमति 1979 में मिली। वापस आकर उन्होंने **'पिडी'** (PIDEE) संस्था में काम करना शुरू किया। यह संस्था, पिनोचेट शासन द्वारा प्रताड़ित और मारे गए लोगों के बच्चों के लिए कार्य करने वाली गैर-सरकारी संस्था है। साथ ही वे अत्याचार के विरुद्ध और जनतंत्र की पुनर्स्थापना के लिए आन्दोलन का समर्थन भी करती रहीं। उस समय में राष्ट्रीय परिदृश्य में पूरी तरह नए व्यक्तित्व होने के बावजूद 11 मार्च 2000 को उन्हें स्वास्थ्य मंत्री नियुक्त किया गया और 7 जनवरी 2002 को रक्षा मंत्री बनाया गया। रक्षा मंत्री पद पर रहते हुए ही उन्होंने सेना प्रमुख जनरल **जुआन एमिलियो चेयरे** से 2003 की ऐतिहासिक 'नेवर अगेन' (अर्थात् अब फिर कभी नहीं) घोषणा चिली में जनतंत्र की पुनः स्थापना के लिए करवाई। इसके कारण उन्हें बहुत प्रशंसा और सम्मान मिला।

जनवरी 2005 में उन्हें राष्ट्रपति पद के लिए सोशलिस्ट पार्टी का उम्मीदवार चुना गया। एक साल बाद वे 53.5% वोटों से जीतकर चिली की पहली महिला राष्ट्रपति बनीं। वे पहली ऐसी महिला थीं, जो किसी भी पूर्व राष्ट्र-प्रमुख या राजनीतिज्ञ की पत्नी नहीं थीं, जो एक लैटिन अमेरिकी देश के राष्ट्रपति-पद पर पहुंचीं।

अपनी विजय के उपलक्ष्य में दिए गए भाषण में उन्होंने महात्मा गांधी के शब्द दोहराए, "हिंसा मेरे जीवन में आई और जिसे मैं प्रेम करती थी उसे मिटा गई, क्योंकि तब मैं घृणा की

शिकार थी। मैंने अपना जीवन उस घृणा को विपरीत दिशा में मोड़ने और उसको समझदारी, सहिष्णुता और प्रेम में परिणत करने का निश्चय किया है।" इसके अनुसार उन्होंने अपने मंत्रीमंडल में आधी महिलाएं नियुक्त की हैं।

एवो मोरालेस नामक आयमारा (बोलिविया का देशज) के एक कोका उगाने वाले किसान और 'मूवमेंट टुवर्ड्स सोशिलिज्म' (एम.ए.एस.) के नेता ने चिली में 'लोकशक्ति' आन्दोलन को देखा था और उससे शिक्षा ग्रहण की थी। सन् 2003 में उसने हजारों कोका उगाने वाले किसानों और अन्य खेतिहरों की अगुवाई कर, 120 मील की कोचाबाम्बा से ला-पाज तक की पैदल यात्रा की और यह मांग की कि विदेशी कंपनियों द्वारा बोलिविया को 50 प्रतिशत राज-शुल्क दिया जाए— उस प्राकृतिक गैस के मुआवजे के रूप में जो वे जमीन से निकालते हैं। इस विद्रोह ने राष्ट्रपति गोन्ज़ालो सेन्चेज डी लोजाडा को अपनी सत्ता छोड़ने पर मजबूर कर दिया। उसके बाद आने वाले कार्लोस मेसा के समक्ष भी बार-बार इसी मांग को उठाया गया और शिक्षक तथा सड़क पर बैठे छोटे विक्रेता भी इस विद्रोह में शामिल हो गए। मार्च 2005 के अंत में बोलिवियन कांग्रेस ने एक अधिनियम पारित किया जिसके अनुसार विदेशी कम्पनियों को, 18 प्रतिशत राजस्व-कर जो वे पहले से दे रहे थे, के अतिरिक्त 32 प्रतिशत अतिरिक्त कर देना निश्चित किया। बोलिविया की प्राकृतिक गैस के भंडार वेनेज़ुएला के पश्चात् दूसरे स्थान पर हैं, किन्तु उन्हें इसका बहुत कम लाभ प्राप्त हो रहा था। जनवरी 2006 के आरंभ में एवो मोरालेस को बोलिविया का राष्ट्रपति चुना गया। वह पहले आयमारा व्यक्ति थे जो देश के सर्वोच्च नेता के पद पर आसीन हुए। इस प्रकार से स्पेनवासियों तथा उनके वंशजों द्वारा लगभग 500 वर्षों से चला आ रहा प्रभुत्व समाप्त हुआ। बोलिवियन शैली के सत्याग्रह ने यह अभूतपूर्व चमत्कार कर दिखाया।

टॉमस हिर्श अपनी पुस्तक *द एन्ड ऑफ प्रिहिस्टरी* (The End of Pre-History) में उस क्षण का वर्णन करते हैं जब एवो मोरालेस ने पहले स्वदेशी शासक का कार्यभार सम्भाला। "बोलिविया में एवो मोरालेस ने किसानों और देशी लोगों को अपने नेतृत्व के बल पर सरकार तक पहुंचा दिया। उन्होंने 'उन्क' कोट पहनकर 'गेटवे ऑफ द सन' पर राष्ट्रपति पद ग्रहण किया। 'उन्क' कोट 1000 वर्ष पहले टिवानाक के

"मौलिक आदेश की शक्ति"

प्राचीन पुजारियों द्वारा इस्तेमाल किया जाता था। साथ में उन्होंने 'चुकु' भी पहना। चुकु चार नोकों वाली एक टोपी थी जो चार मुख्य दिशाएं दर्शाती है तथा 1975 में आधिकारिक रूप से स्थापित इंद्रधनुषी रंगों से सजा 'विपाला' तावान्तिनसुयों का झंडा फहराया। एक ऐसा नेता जो लोगों के दिल से विकसित हुआ, उसके हाथ में दो गिद्धों का सिर लगा हुआ समारोह दंड, जो पूर्वजों के पुरोहित कालावायस शामान्यस द्वारा प्रदान किया गया था।"

नवम्बर 2007 में एवो मोरालेस ने दूसरा 'पैन-अमेरिकन ह्यूमेनिस्ट फोरम' स्थापित किया जिसके उद्घाटन भाषण में उन्होंने घोषणा की, "मैं बोलिविया के सारे निवासियों के लिए शांति की कामना करता हूं, आज हमारे देश में जो शान्ति कायम है वह बनी रहे। मैं अपने उस मार्ग-दर्शक से, जो सबसे महान कवि है, यह वरदान मांगता हूं कि वह उस पथ को हमेशा प्रकाशमान करता रहे जिस पर चलकर बोलिविया के निवासी सदा सम्मान से रह सकें। मैं अहिंसा के पथ पर चलने का आशीष मांगता हूं।"

महात्मा गांधी का दृढ़ कथन था, "अहिंसा ही एक ऐसी चीज है जिसे एटम बम भी नष्ट नहीं कर सकता।" उनके अनुसार अहिंसा का सार, अपने शत्रु तक के लिए बिना शर्त प्रेम था। इस अभिवचन का अदभुत और प्रेरणात्मक प्रति समर्थन, 'फोकोलेयर' की संस्थापक **चियारा लूबिच** हैं। ट्रेन्ट, इटली में 1920 में जन्मी सिल्विया लूबिच, अत्यन्त गरीबी में पली-बढ़ी थीं, उन्होंने विश्वविद्यालय तक की शिक्षा ट्यूशन दे कर पूरी की। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान, जब उनके शहर पर बम गिराए जा रहे थे, उन्हें प्रेम का ज्ञान हुआ, ईश्वर का वह वरदान "जो ट्रेन्ट पर गिरने वाले बमों से कहीं अधिक शक्तिशाली है।" उन्होंने अपना जीवन ईश्वर को समर्पित करने और मानवीय एकता तथा विश्व शांति के लिए प्रयत्न करने का निश्चय किया। 7 दिसम्बर 1943 को यह प्रण लेते समय वे केवल 23 वर्ष की थीं।

उन्होंने असीसी के सेन्ट क्लेयर के सम्मान में अपना नाम बदल कर 'चियारा' रख लिया। सेन्ट क्लेयर असीसी के सेन्ट फ्रांसिस के प्रथम अनुयायियों में से एक थे, जिन्होंने 'आर्डर ऑफ पुअर-लेडीज' की स्थापना की थी। अब इस संस्था को 'आर्डर ऑफ़ सेन्ट क्लेयर' नाम से जाना जाता है। यह महिलाओं के लिए एक मठवादी धार्मिक संस्था है। हालांकि उनका घर बम गिराए जाने के कारण टूट चुका था और उनका परिवार ट्रेन्ट शहर छोड़ कर अन्यत्र रहने चला गया था पर वे बेघर और घायलों की सेवा के लिए वहीं रुकी रहीं। उनका यह 'दैवी साहसिक अभियान' उस समय शुरू हुआ जब उन्हें पता चला कि एक महिला अपने चार बच्चों के मारे जाने से

विक्षिप्तता की स्थिति में पहुंच गई है। उनके 12 मित्र उनके साथ आ मिले, सब साथ मिल कर एक छोटे से घर में रहने लगे, जिसे उन्होंने 'लिटिल हाउस ऑफ नाज़रथ' का नाम दिया। उस घर की सीमित जगह और साधन वे सब आपस में बांटते थे, जिन्हें उसकी जरूरत थी। उन्होंने यह घोषणा कर दी थी कि यदि वे बम के कारण मारे जाते है तो उनकी कब्र पर लिखा हो कि हमने प्रेम में विश्वास किया है।"

'फोकोलेयर' (साधारण स्वयं-सेवकों का छोटा समुदाय) जन साधारण का आध्यात्मिक आन्दोलन है, जो शुरू में सिर्फ अविवाहित महिलाओं के लिए था, पर बाद में अविवाहित और विवाहित जोड़ों और उनके बच्चों के द्वारा मानवीय एकता तथा विश्व शांति के उत्थान के लिए कार्य करता है। यह लक्ष्य आध्यात्मिक और जरूरतमन्दों की प्रेमपूर्वक सेवा करके प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है। इसका विस्तार धीमी गति से पर निश्चित रूप से हो रहा है। 1948 में चियारा ने इगिनो गिओर्दानी, कर्मठ लेखक और पत्रकार, सार्वभौमिकता और शांति के लिए कर्मठ व्यक्ति तथा इटैलियन संसद सदस्य का सम्पूर्ण समर्थन पाकर कैथोलिक चर्च, इटली की सरकार, संसद और मीडिया तक अपनी पहुंच बना ली। 1949 में पास्क्वेल फोरेजी पहले फोकोलेयरी पादरी की पदवी से अलंकृत हुए। उन्होंने आन्दोलन की धार्मिक शिक्षा की और सिटा नूवा, फोकोलेयर के प्रकाशन गृह की शुरूआत की। उसी साल, पुनरावलोकन और सामुदायिक एकता को सशक्त बनाने के लिए डोलोमाइट पर्वतमाला पर एक सप्ताह के प्रवास का चलन शुरू किया। वर्जिन मेरी के सम्मान में इन आध्यात्मिक स्थलों का नाम 'मेरिपोलिस' रखा गया। प्रतिवर्ष अधिक से अधिक लोग इस ओर आकर्षित होने लगे। 1959 के मेरिपोलिस में 27 देशों से 10,000 से अधिक लोगों ने भाग लिया। चियारा ने फोकोलेयर के शांति प्रयासों में एक नया महत्वपूर्ण आयाम जोड़ा है जिसमें 'दूसरों के देश को उतना ही प्यार करें, जैसे अपने देश को करते हैं' का नारा दिया गया। उसके बाद से आध्यात्मिक अन्तर्राष्ट्रीयता इस आन्दोलन की विशेषता बन गई है।

1962 में फ़ोकोलेयर को पोप से कैथोलिक चर्च के सार्वभौमिक जन-साधारण धर्म समुदाय के स्तर की औपचारिक मान्यता मिल गई। 1967 में उसके द्वारा 'न्यू फैमिलीज एन्ड न्यू ह्यूमैनिटी मूवमेन्टस फ़ॉर ए यूनाइटेड वर्ल्ड' (New Families and New Humanity Movements for a United World) आन्दोलन शुरू किया गया। 1970 में 'जेन 3' अर्थात् तीसरी पीढ़ी के युवाओं का आन्दोलन 'यंग पीपल फॉर ए युनाइटेड वर्ल्ड' (Young People for a United World) के नारे से चालू हुआ। आध्यात्मिक विचारों को तथा साथी विशेषगण की एकता को बचाने के विचार से जर्मनी में आचेन के बिशप क्लॉस हेमर्ले द्वारा 1976 में 'बिशप फ्रेन्डस ऑफ फोकोलेयर' का सूत्रपात हुआ।

1984 में पोप जॉन पॉल II ने इटली के 'रोका दि पापा' में स्थित फोकोलेयर के अन्तर्राष्ट्रीय मुख्यालय की यात्रा की और उसके 'रेडिकलिज्म ऑफ लव' की सराहना की।

1991 में अपनी ब्राजील यात्रा के दौरान चियारा को साओ पाओलो की झुग्गी-झोपड़ी निवासियों की अमानवीय परिस्थिति देख कर बहुत दया आई। उन्होंने 'इकॉनामी ऑफ कम्यूनियन इन लिबर्टी' का प्रतिपादन किया तथा उद्योगपतियों और फोकोलेयर के ढ़ाई लाख सदस्यों के बीच उद्योगपतियों और व्यापारीगण से अनुरोध किया कि गरीबी से त्रस्त गावों और कस्बों में पूंजी लगाएं और अपने मुनाफे की रकम का कुछ भाग उनके लिए स्कूल, अस्पताल आदि बनाने और संसाधन जुटाने में लगाएं। चियारा ने उन्हें ऐसे समझाया, "हासिल करने की संस्कृति पर आधारित ग्राहक की अर्थ-व्यवस्था के ठीक विपरीत, समुदाय की अर्थ-व्यवस्था दान देने की अर्थ-व्यवस्था है। यह कठिन जरूर लगता है और शायद काल्पनिक भी। पर वास्तव में ऐसा नहीं है। क्योंकि मानव को जो ईश्वर का बनाया हुआ है और जिसे प्रेम में ही पूर्णता और संतुष्टि मिलती है, देने में ही खुशी प्राप्त होती है। इसी सोच के कारण, अपने अनुभव से, हमें आशा है कि यह सामुदायिक अर्थ-नीति सारे ब्रह्माण्ड में फैलेगी।"

सितम्बर 2001 तक पूरे विश्व के 761 व्यापारिक संस्थान 'इकॉनामी ऑफ कम्यूनियन' में शामिल हो चुके थे, जिसमें से सबसे अधिक इटली में 246, पश्चिमी यूरोप में 172, ब्राजील में 82, और पूर्वी यूरोप में 60 । अनुमान है कि विश्व भर में करीब 1000 ई. सी. व्यापारिक संस्थान हैं। इनमें से कुछ व्यवसायों में स्लम निवासी केवल 5 डॉलर के निवेश के साथ भागीदार बन गए हैं। कपड़े, खाद्य पदार्थ, घरेलू सामान, इमारती सामान और खेती के उपकरण आदि इसके मुख्य उत्पाद हैं। कपड़े, परचूनी की चीज़ें, घरेलू सामान और स्वास्थ्य परिचर्या की वस्तुएं बेची भी जाती हैं। ई. सी. के एक व्यापारी ने बताया कि "यह नई आर्थिक गतिविधि एक ऐसा विजन है जिसमें हावी होने के लिए संघर्ष पर आधारित न होकर संयुक्त रूप से प्रगति के लिए वचनबद्धता है, आर्थिक-संसाधनों का खतरा मोल लेते हुए सृजनात्मकता और हुनर तथा लाभ का उनके साथ बांटना, जो आजकल के आर्थिक तंत्र से कटे हुए है, क्योंकि वे उत्पादन योग्य नहीं है।" पोलैंड की लुबलिन कैथोलिक युनिवर्सिटी के प्रोफेसर एडम बिएला ने इसे 'कॉपरनिकन रिवोल्यूशन इन सोशल-साइन्सेज' का नाम देते हुए सराहना की है।

1996 में चियारा को पेरिस में 'शांति के लिए शिक्षा' का युनेस्को पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्होंने फोकोलेयर की प्रशंसा करते हुए कहा, "ऐसे युग में जब जातीय और धार्मिक विभिन्नता अधिकतर हिंसक विरोध में बदल जाती है, फोकोलेयर आन्दोलन के प्रसार ने लोगों, पीढ़ियों, सामाजिक वर्गों और राज्यों के बीच सृजनात्मक संवाद का महा योगदान दिया है।"

दिसम्बर 2002 में कैटालन संसद में भाईचारे के विषय पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि, "यह कोई नई पार्टी नहीं है। बल्कि एक नई राजनैतिक संस्कृति और प्रथा का योगदान है, जिसे महात्मा गांधी, मार्टिन लूथर किंग और दलाई लामा ने जोर देकर हमें बताया था, और ईसा मसीह ने सर्वप्रथम मानवता को एक विशेष भेंट अपनी इस प्रार्थना के साथ प्रदान की थी, "हे पिता, वे सब एक हो जाएं।"

हर साल, गर्मी के मौसम में फ़ोकोलेयर विश्व भर में 100 से अधिक 'मेरिया पोलिस'–विश्राम स्थल अर्थात् रिट्रीट आयोजित करता है, जहां पुराने सदस्य और नए लोग एकत्रित होकर आन्दोलन और उसकी आध्यात्मिकता पर चर्चा करते हैं और उन पर आचरण करते हैं। विश्व भर में दो लाख से अधिक लोग हर साल इसका लाभ उठाते हैं।

इस समय फोकोलेयर 180 देशों में 2 लाख से अधिक सदस्यों के साथ कार्यरत है। विश्व के विभिन्न भागों में इसकी 23 क्षेत्रीय शाखाएं हैं। यह संस्था व्यक्तिगत आध्यात्मिकता पर बल देती है। "यद्यपि धर्म शास्त्र के अनुसार फोकोलेयर रोमन कैथोलिक है, पर इसने अन्य सभी ईसाई चर्चों तथा धर्मों विशेषकर जुडाइज्म, बौद्ध और हिन्दू धर्म से सशक्त सम्बन्ध बनाए हैं। अन्य धर्मों के साथ संवाद और 'कैरिज्मा ऑफ यूनिटी एन्ड पॉलिटिक्स' के संदर्भ में चियारा, महात्मा गांधी को उद्धृत करती हैं, जिन्हें वे 'आत्मा के विरल महान व्यक्तियों में से एक' मानती हैं। "सबसे सुनहरा नियम है कि हम सारी दुनिया के मित्र बन कर रहें और पूरे मानवीय परिवार को एक समझें। जो भी व्यक्ति अपने धर्म के अनुयायी को दूसरे धर्म के व्यक्ति से अलग समझता है, वह अपने धर्मानुयाई को गुमराह करता है और अस्वीकृति तथा नास्तिकता का रास्ता बताता है।"

चियारा का 'रोका दि पापा', इटली में 14 मार्च 2008 को 88 वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। उनके अन्त्येष्टि संस्कार में 25,000 लोग, 17 कार्डिनल, 49 बिशप, 1200 पादरी तथा विश्व के सब प्रमुख धर्मों के प्रतिनिधि शामिल हुए। एक ऐसी महान महिला को जिसने 65 वर्ष पूर्व अकेले अपना 'दैविक साहसिक अभियान' शुरू किया था, यथायोग्य सम्मान दिया गया।

सुनेसाबुरो माकीगुची और सोका गाकाई

सुनेसाबुरो माकीगुची (1871–1944), लेखक और षिक्षाविद्, का व्यक्तित्व, गांधीजी के विष्वास को पूर्णतया प्रमाणित करता है। ''अगर दुनिया में वास्तविक षांति प्राप्त करनी है और यदि हमें युद्ध की विभीशिका के विरुद्ध असली युद्ध छेड़ना है तो बच्चों से षुरु करना होगा।'' निचिरेन के बौद्ध धर्म से प्रभावित माकीगुची ने जापान की दकियानूसी षिक्षा प्रणाली को सुधारने के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया। उनका 'मूल्य सष्जन के षिक्षाषास्त्र' का सिद्धांत 'सोका कियोइकुगाकु ताइपेइ' के नाम से 1930 में प्रकाषित हुआ।

इस पुस्तक में हर इन्सान में छिपी असीम क्षमता पर बल दिया गया है। उनके अनुसार षिक्षा का अर्थ आत्म-बोध, विवेक एवं प्रगति का आजीवन अनुसरण करना है। 1930 में उन्होंने सोका कियोइकु गाकाई अर्थात मूल्यों के सष्जन की समिति का गठन किया, जो सुधारक षिक्षाविदों का एक अध्ययन दल था। उनका ध्येय एक ऐसी षिक्षा प्रणाली का निर्माण करना था जो स्कूल, घर और समुदाय की भागीदारी से षिक्षा देगा और हर व्यक्ति एक ख़ास भाग की ज़िम्मेदारी निभाएगा। इस प्रणाली में बालक आधा दिन स्कूल में बिताए और बाकी आधे दिन में वह षिल्प षिक्षा या अन्य किसी प्रकार का काम, घर या समुदाय में करे। यह षिल्प षिक्षा या काम हर बालक के स्वभाव एवं आवष्यकता के अनुसार हो; साथ ही उसके काम से सर्वोच्च व्यक्तिगत और सामाजिक मूल्य का सष्जन हो। इस तरीके से उदासीन, रुढ़िगत षिक्षार्थी बनने के बजाए बच्चे जिज्ञासु, उत्सुक और आत्म-प्रेरित बनेंगे। यह विचार जापान के एकतंत्रीय, फ़ासिस्ट अधिकारियों की सोच के बिलकुल ख़िलाफ़ था, जिसमें षिक्षा पद्धति का ध्येय पक्के राश्ट्रवादी, सदा आज्ञाकारी नागरिक तैयार करना था।

1930 के आरम्भ में जापान में परम-राश्ट्रवाद पूरी तरह पनप चुका था। उसकी सैनिक सरकार ने षिन्टो मत को दुबारा लागू कर दिया था, जिसमें सम्राट की अवज्ञा और हर तरह के विरोध का दमन करना तय माना जाता है। माकीगुची और उनके विष्वसनीय सहकर्मी, **जोसइ तोदा** के अपनी नई षिक्षा पद्धति को छोड़ने या बदलने से मना करने पर, दोनों को 'वैचारिक अपराधी' होने का दोशी कह कर, 1930 में जेल में डाल दिया गया। 73 साल की आयु में माकीगुची का जेल में देहान्त हो गया। जोसइ तोदा जेल की

यातनाओं से बच गए और युद्ध समाप्त होने पर उन्हें रिहा किया गया। उसके तुरन्त बाद वे सोका गाकाई के पुनर्गठन में जुट गए। उन्होंने सोका गाकाई के लिए युवा षिक्षा के अलावा और अधिक विस्तष्त कर, समाज के उत्थान के लिए षिक्षा का लक्ष्य रखा। युद्ध के बाद की निराषा के माहौल से उबरने और आत्म-सषक्तिकरण के लिए उन्होंने बौद्ध मत का उपयोग करते हुए सामाजिक सामंजस्य और एकता पर ख़ास ध्यान दिया। हिरोषिमा और नागासाकी के पूरी तरह ध्वस्त हो जाने के कारण आतंकित जनता पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा और सोका गाकाई धीरे धीरे लोकप्रिय होने लगा।

1957 में तोदा ने अपने अनुयाइयों को परमाणु अस्त्रों के बहिश्कार के लिए प्रयास करने का आवाह्न दिया। उसके बाद से ये आवाह्न सोका गाकाई की षांति स्थापना के प्रयत्नों का प्रतीक-चिन्ह बन गया। 1958 में तोदा की मष्त्यु के समय तक सोका गाकाई के लगभग 10 लाख सदस्य बन चुके थे।

तोदा के उत्तराधिकारी, **दाइसाकु इकेदा** युवावस्था में ही युद्ध की विभीशिका सहन कर चुके थे। उन्होंने निष्चय किया कि वे अपना जीवन सामाजिक समन्वय और विष्व षांति के सष्जन के लिए समर्पित करेंगे। 1960 में उन्होंने केवल 32 साल की आयु में सोका गाकाई का अध्यक्ष पद सम्भाला। उनके सक्रिय नेतष्त्व में विष्व भर में इस संस्था का विस्तार हुआ है।सोका गाकाई आज 82 विभिन्न क्षेत्रीय संस्थाओं का वैष्विक नेटवर्क है जो 192 देषों और क्षेत्रों में सक्रिय रुप से कार्यरत है।

गांधीजी के प्रति दाइसाकु इकेदा के गहरे सम्मान की भावना, उनके 'गांधीज़्म ऐन्ड द 21स्ट सेन्चुरी' नामक लेख से प्रकट होती है। ये लेख 'जरनल ऑफ़ पीस ऐन्ड गांधि यन स्टडीज़' के अप्रैल-सितम्बर 1997 अंक में छपा था। उस लेख में वे दष्ढ़ निष्चय से कहते हैं, ''बौद्ध धर्म ने इस सत्य को उजागर किया कि व्यक्ति और सांसारिक आकर्शण की परस्पर दासता ही 'अज्ञानता' है। महात्मा गांधी ने इसी आंतरिक अंधकार पर विजय पाने का अथक प्रयास किया। गांधी का अपने अहिंसक प्रतिरोध के लिए 'सत्याग्रह' षब्द प्रयोग करना अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य है। उनका आन्दोलन समाजको प्रेरित करने के अलावा

उन नकारात्मक आंतरिक षक्तियों पर विजय पाने का आध्यात्मिक संघर्श भी सिखाता है जिसे बौद्ध मत में 'अज्ञानता' कहा गया है। हम गांधीजी के जीवन में कर्म और दर्षन, आत्मा एवं षरीर में सम्पूर्ण तादात्म अनुभव करते हैं।''

ब्राज़ील के राश्ट्रपति लुइज़ इनासिओ लुला दा सिल्वा

ब्राज़ील के राश्ट्रपति लुइज़ इनासिओ लुला को उनको लाखों देषवासी प्यार से 'लुला पपाई' या पापा लुला के नाम से सम्बोधित करते हैं। उन्होंने अपने कार्यों द्वारा गांधी के इस महामंत्र को सत्य सिद्ध कर दिखाया है - नीतियां निर्धारित करते समय यदि नीति निर्माता निर्धन व्यक्ति का चेहरा ध्यान में रखें तो वह असलियत में कारगर हो सकता है और सफल भी होता है।

लुला की माता, ब्राज़ील के निर्धन, सूखे से पीड़ित उत्तर-पूर्वी सेरताओ क्षेत्र में घोर कठिनाइयों से गुज़र-बसर करती थीं। वे अपने बच्चों को साथ ले कर 2000 किलोमीटर दूर दक्षिण में, घरेलू नौकर, वेटर या मज़दूर का काम खोजने के लिए साओ पाओलो की यात्रा पर गईं। लुला का सत्ता के षिखर पर पहुंचने का मार्ग,वहां के औद्योगिक उपनगर से ब्राज़ील की कामगार पार्टी के सहारे प्रषस्त हुआ।

ब्राज़ील एक समय में 'बेलिन्डिया' कहलाता था। ये नाम एक व्यापारी का दिया हुआ था, क्योंकि उसे लगता था कि वो विषाल देष बेल्जियम और भारत के बीच का सा है, जिसमें योरप जैसी अमीरी और एषिया के जैसी गरीबी है, जहां अमीर और गरीब के बीच की खाई कभी भर नहीं सकती। राश्ट्रपति लुला उस खाई को पाटने का प्रयत्न करने वाले पहले इन्सान थे।

दिसम्बर 2002 में राश्ट्रपति चुने जाने के समय से ही वे आम आदमी की तरह बात करते थे। वे अपनी युवाकाल की घटनाएं बयान करते हुए बताते थे कि किस तरह 5 साल की उम्र में उन्हें सिर पर भारी बाल्टी में पानी ढोना पड़ता था। राश्ट्रपति का पद सम्भालने के बाद उन्होंने सेरताओ क्षेत्र में पानी की आपूर्ति का प्रबन्ध करने का निष्चय किया, जिसके लिए एक महा परियोजना की ज़रुरत थी। 2700 किलोमीटर लम्बी साओ फ्रांसिसको नदी, पांच राज्यों को पानी देती है पर सेरताओ क्षेत्र को बचाते हुए निकल जाती है। उनकी पहल से एक महा परियोजना षुरु की गई, जिसे कुछ लोगों ने ''फ़ेरोनिक'' की संज्ञा दी। उसमें 400 कि.मी. और 220 कि.मी. लम्बी दो नहरों का निर्माण किया जा रहा है जिसके ज़रिए 26.3 घन मीटर प्रति सेकन्ड की गति से, नदी का पानी सेरताओ क्षेत्र में पहुंचाया जाएगा। उत्तरी नहर में 165 मीटर तक और पूर्वी नहर में 364 मीटर तक

9 पम्पिंग स्टेषनों के ज़रिए पानी पम्प किया जाएगा। 70 प्रतिषत पानी गन्ने की खेती, बाग़बानी और ष्रिम्प के फ़ार्म, 26 प्रतिषत नगरवासियों और बाकी 4 प्रतिषत ग्रामवासियों के लिए नियोजित किया गया है। प्रोजेक्ट की अनुमानित लागत को नियमित रखने के उद्येष्य से भारी मषीनों के अलावा, सेना की कई बटालियनेंनहर की खुदाई के काम में लगी हैं। आठ हज़ार मज़दूर मेहनत से प्रोजेक्ट पूरा करने में व्यस्त हैं। सब कुछ ठीक चलता रहा तो इससे 1 करोड़ 20 लाख व्यक्ति लाभ उठा सकेंगे। 2025 तक काम पूरा हो जाएगा। लुला के समर्थक उन्हें फ़्रैन्कलिन रुज़वेल्ट की तरह मानते हैं जिन्होंनेटेनेसी नदी घाटी परियोजना षुरु की थी। उनके आलोचक उन्हें 'महा पागल' कह कर मज़ाक भी बनाते हैं।

'मज़दूर-राश्ट्रपति' के रुप में लुला विदेषी निवेषकों और गरीबों के बीच समान रुप से लोकप्रिय बन गए। उनसे पहले के राश्ट्रपति फ़र्नान्डो हेनरिक कार्डोसा के कार्यकाल में ब्राज़ील में प्रगति के लिए ठोस आधार बना जिसमें महंगाई पर लगाम लगाई गई, आर्थिक अनुषासन लागू हुआ, अनेक अर्ध-सरकारी उपक्रमों को गैर-सरकारी उद्योगों में परिवर्तन किया गया और विदेषी निवेषकों को बढ़ावा देने के विचार से लाभकारी सुविधाएं दी गईं। लुला ने इन लाभकारी योजनाओं का पूरा फ़ायदा नए रोज़गार और उद्योग उपलब्ध कराने में लगाया, जिसकी वजह से गरीब और मध्यम वर्ग की आर्थिक दषा में बहुत सुधार हुआ। एक पूर्व मज़दूर यूनियन के नेता, गरीबी में पैदा हुए, पले-बढ़े, आज राश्ट्रपति का पद सम्भालते हुए लुइज़ इनासिओ लुला दा सिल्वाकी सरकार उन असमानताओं एवं बाधाओं

को समाप्त करने में व्यस्त है जिनसे देष लम्बे समय तक ग्रसित रहा है। वास्तव में, कुषल सामाजिक नीति और घरेलू उत्पादकता व खपत की वर्षद्धि करना, प्रगतिषील देषों को चीन के बजाए ब्राज़ील से सीखना चाहिए।''

अपने देष के औद्योगिक आधार को सुदष्ढ़ बनाने के विचार से लुला ने राश्ट्रीय तेल कम्पनी 'पेट्रोब्रास', खनिज की सबसे बड़ी कम्पनी 'वाले' और निजी क्षेत्र के इस्पात उद्योगपति 'गेराडू' को तेल, खनिज पदार्थ, पाइप और जहाज आदि की आपूर्ति के लिए आमंत्रित किया। इसकी वजह से विदेषी निवेषक बड़ी संख्या में आकष्ट हुए और हज़ारों नई नौकरियों के अवसर पैदा हुए। कॉफ़ी, सोयाबीन,चीनी, बीफ़, लौह खनिज, सेल्यूलोज़, कार और वायुयान के निर्यात किए जाने के कारण अर्थ व्यवस्था में 5 प्रतिषत की दर से प्रगति होने लगी। 2009 केषुरु से, अमेरिका के बजाए, चीन से ब्राज़ील का व्यापार सबसे अधिक होने लगा। इसी वजह से 2008 के अमेरिकी आर्थिक मन्दी से ब्राज़ील पर बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा।

1 जनवरी 2003 को राश्ट्रपति लुला के पद भार सम्भालने के बाद से ब्राज़ील का मध्यम वर्ग बढ़ कर 2 करोड़ 90 लाख तक पहुंच गया है जिसकी वजह से घरेलू उपभोक्ता बाज़ार बहुत ज़्यादा बढ़ा है। इसके अलावा 2 करोड़ लोगों को गरीबी की हालत से उबारा जा सका है। 10 प्रतिषत धनाढ्य लोगों के बनिस्बत देष के 10 प्रतिषत निर्धन पहले से पांच गुना अधिक खुषहाल हुए हैं। बेरोज़गारी और निरक्षरता में भी भारी कमी आई है।

ब्राज़ील अपने सारे विदेषी ऋणों का भुगतान कर चुका है। 2002 के आरम्भ में उसे 30 बिलियन अमेरिकी डॉलर की राषि, आई एम एफ़ से आपातकाल में उधार लेनी पड़ी थी। 2009 में ब्राज़ील ने प्रगतिषील देषों की सहायतार्थ 5 बिलियन डॉलर आई एम एफ़ को दिए। उसकी विदेषी मुद्रा राषि का भंडार 200 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अधि ाक हो गया है और रिआल की गणना अब एक ठोस मुद्रा में की जाती है। 2008 से रिआल, डॉलर की अपेक्षा 50 प्रतिषत बढ़ा है। यह सारी उपलब्धियां राश्ट्रपति लुला के सौभाग्य और सज्जनता के फलस्वरुप मिल सकी हैं। उनके कार्यकाल में ब्राज़ील ने व्यापार वर्षद्धि से बहुत लाभ उठाया है।

इन सब उपलब्धियों के बारे में नवम्बर 2009 के अंक में द इकॉनॉमिस्ट पत्रिका ने 'ब्राज़ील टेक्स ऑफ़' नामक लेख में लिखा, ''जब 2001 में गोल्डमैन साच के अर्थषास्त्रियों ने ब्राज़ील को रुस, भारत और चीन के साथ ऐसी अर्थ व्यवस्था के वर्ग में गिना था जो आगे चल कर विष्व में प्रभावषाली होंगी, तो ब्राज़ील के नाम पर बहुतों ने नाक-भौंह सिकोड़ी थी। ब्राज़ील? ऐसा देष, जहां प्रगति दर बहुत कम है, जहां किसी भी

समय आर्थिक संकट आ सकता है, सदैव राजनैतिक अस्थिरता से ग्रस्त, अपने स्वाभाविक षक्ति स्रोत को बरबाद करने वाले देष को ऐसे उभरते हुए दिग्गजों के साथ नहीं गिना जाना चाहिए। अब वो संषय एकदम ग़लत लगता हैकृआगे कुछ भी हो सकता है पर 2014 के दषक के बाद ब्राज़ील विष्व की पांचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन सकती है, ब्रिटेन और फ़्रान्स से भी आगे निकल सकती है। कुछ अर्थों में उपर्युक्त चार देषों से वह अब भी आगे पहुंच गया है। वहां प्रजातंत्र है, चीन की तरह साम्यवाद नहीं। भारत की तरह वहां विदेषी घुसपैठ नहीं है, किसी तरह के जातिवादी व धार्मिक विवाद और उग्र पड़ोसी नहीं हैं। रूस के विपरीत, वह तेल और हथियार अधिक निर्यात करता है और विदेषी निवेषकों का सम्मान करता है।

नवम्बर 2010 में राश्ट्रपति लुला को षांति, निरस्त्रीकरण और प्रगति के लिए इन्दिरा गांधी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।''वैष्विक दक्षिणी क्षेत्र के उत्थान और प्रगतिषील देषों के बीच परस्पर सम्बन्धों को प्रगाढ़ करने का प्रयास करने'' तथा ''सामाजिक हित के विस्तार और सामूहिक प्रगति को वरीयता देने'' के लिए उन्हें पुरस्कष्त किया गया।

विश्व आतंक वाद INTERNATIONAL TERRISM

महात्मा गांधी ने घोषणा की थी, "विश्व सत्य की आधारशिला पर टिका हुआ है। और शांति तभी स्थापित होगी जब सत्य का आचरण होगा और सत्य में न्याय निहित होगा।" एनरोन, वर्ल्डकॉम, बियर स्टर्नस, लेहमेन ब्रदर्स और अन्य विशाल फर्मों के सामूहिक निन्दनीय घोटालों के परिणामस्वरूप उन्हीं के अपने भागीदार दिवालियापन और दरिद्रता की स्थिति में पहुंचे हैं जो उनके प्रमुख कार्यकारी अधिकारीगणों (सी.ई.ओ.) द्वारा अपने निजी हितों के लिए सच्चाई से हटने या शेयर धारकों के हितों को अनदेखा करने का दुःखद परिणाम है। यही तथ्य उन राजनैतिक नेताओं के लिए भी सच है जो भ्रष्टाचार में प्रवृत्त होते हैं, पूजा के स्थानों की तोड़फोड़ की अनुमति देते हैं (जैसे बाबरी मस्जिद) और नितांत मिथ्या आरोपों के आधार पर देशों पर आक्रमण करते हैं

(जिसका ईराक सबसे ज्वलंत उदाहरण है।), घात लगा कर हत्याएं करते हैं, पूर्व नियोजित हमले करते हैं, और अपने विरोधी देशों पर अपना शासन थोपते हैं। न्यूयार्क, वाशिंगटन, तेल अवीव, जेद्दाह, बाली, मुंबई, नई दिल्ली, श्रीनगर, इस्तांबुल, राबात, बगदाद, जकार्ता, मैड्रिड, लंदन, शर्म-अल-शेक, अमान, कराची, लाहौर, रावलपिंडी, पेशावर, काबुल, कंदहार में आतंकवादियों द्वारा नई सहस्त्राब्दि के प्रथम दशक के भीतर आतंकवादी हमले, मक्कार, अन्यायी और अदूरदर्शी नीतियों का दुखः परिणाम है।

9/11 के तुरंत बाद पॉल केनेडी ने लिखा, "अमेरिका ने वर्ष 2,000 के पहले दिन इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश नहीं किया, बल्कि इसने सितम्बर 11, 2001, मंगलवार की सुबह 8:45 पर पूरी तरह से इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश किया। न्यूयार्क के टाइम्स स्क्वायर के सहस्त्राब्दिक समारोह अल्पकालिक थे। इसके विपरीत उस स्थान से मात्र एक किलोमीटर दक्षिण में 'वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर' का सर्वनाश एक दीर्घकालिक प्रभाव वाली घटना थी। अमेरिका आज आधुनिक काल का विशाल प्रतिमान है, अपने वायुयान वाहक जलपोतों, सम्प्रेषण प्रणालियों, वृहत संगठनों और सांस्कृतिक महत्व के फलस्वरूप यह पूरे विश्व में छाया है। किन्तु फिर भी इसकी विशालता अत्यन्त नाजुक है और यह उन हथियारों द्वारा भेद्य है, जो यामामोटो के हवाई जहाजों और हिटलर के पैंजर डिवीजनों से कहीं भिन्न है। 'एचिल्स हील' की तरह यही इसकी सबसे बड़ी दुर्बलता है जो उसकी स्वयं की बनाई हुई है। इसकी सांस्कृतिक और व्यापारिक वरिष्ठता और ताल ठोंक कर निष्ठुरता से उल्लेखित मुक्त बाजार की नीति को, कई धार्मिक समुदायों और विशेष वर्गों द्वारा विशेषतः पारम्परिक समाज द्वारा, एक खतरे के रूप में देखा जा रहा है। इसके सशक्त संगठनों को अमेरिका के आलोचकों द्वारा अनपेक्षित शक्तिशाली प्रभाव के कारक के रूप में देखा जा रहा है जैसे जलवायु नियंत्रण के अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों में बाधा डालने, नियंत्रित बाजारों में परिवर्तन लाने को बलपूर्वक बाध्य करने में, और कमजोर तीसरी दुनिया की सरकारों पर हावी होने के कारक के रूप में।

कैरेन आर्मस्ट्रॉंग उसी मनोभाव को प्रतिध्वनित करते हैं, "सितम्बर 11 को दुनिया बदल गई। हमें अब अहसास हो रहा है कि सौभाग्यशाली पश्चिमी देशों में रहने वाले हम, यह नहीं मान सकते कि बाकी दुनिया में होने वाली घटनाओं से हमें कोई सरोकार नहीं है। आज गाजा, ईराक या अफगानिस्तान में जो हो रहा है, उसकी प्रतिक्रिया कल न्यूयॉर्क, वाशिंगटन या लंदन में हो सकती है और अब शीघ्र ही छोटे समुदायों के पास भी सामूहिक विनाश कर सकने की क्षमता होगी जो अब तक केवल शक्तिशाली राष्ट्रों के पास ही उपलब्ध मानी जाती थी।"

आतंक वाद की गंभीर समस्या, केवल अन्यायपूर्ण घरेलू और विदेशी नीतियों की घृणायुक्त विचारधारा का परिणाम नहीं है, बल्कि उतना ही दुष्ट मानसिक दृष्टिकोण का परिणाम भी है। आधुनिक काल में अधिकतम आतंक मुस्लिम देशों से शुरू हुआ है। सैम्युअल हटिंगटन इसका कारण बताते हैं, "पश्चिम द्वारा अपने मूल्यों और अपने संस्थानों को सर्वव्यापक बनाने, अपनी सेना और आर्थिक श्रेष्ठता को बनाए रखने तथा मुस्लिम देशों के संघर्ष में दखलन्दाजी करने के प्रयासों ने, मुसलमानों के मन में गहरी नाराजगी पैदा कर दी है। 1980 से 1995 के पंद्रह वर्षों में अमेरिका ने मध्य-पूर्व में सत्रह सैनिक-कार्यवाहियां की हैं जिनमें से सभी मुस्लिम देशों की ओर निर्देशित रही हैं। किसी भी अन्य सभ्यता के विरुद्ध इस प्रकार की अमेरिकी सैन्य कार्यवाहियों के तुलनात्मक प्रतिमान दृष्टिगोचर नहीं होते।"

रिचर्ड क्लार्क, जो राष्ट्रपति क्लिंटन और जॉर्ज बुश के शासन काल में मार्च 2003 तक, जब तक उन्होंने त्याग पत्र नहीं दिया था, काउन्टर टेरेरिज्म के डाइरेक्टर थे, लिखते हैं, "9/11 की घटना के पश्चात् हम अलकायदा की धमकी पर आवश्यक ध्यान देने के बजाय, विपरीत दिशा में चले गए— ईराक की ओर, उस राह पर जिसने हमें कमजोर और अलकायदा की अगली पीढ़ियों को मजबूत बनाया। यहां तक कि, जब हम अलकायदा के मूल को कमजोर कर रहे थे वह स्थानान्तरित होता गया। एक हाइड्रा की तरह इसके नए सिर उगते गए। अलकायदा और उसके क्षेत्रीय सहधर्मियों द्वारा 9/11 की अविस्मरणीय घटना के बाद के तीस महीनों में कई स्थानों पर अधिक गंभीर आतंकवादी आक्रमण हुए हैं, जबकि उस अविस्मरणीय तिथि के पहले अपेक्षाकृत कम।"

इस असीमित युद्ध और 'वेपन्स ऑफ मास डेस्ट्रक्शन' (W M D S) सहित, हथियारों के अनैतिक व्यापार के इस युग में, सच्चाई, न्याय और संघर्ष-निवारण का अहिंसात्मक मार्ग का अनुसरण करना सभी राजनैतिक नेताओं तथा देशों के लिए सबसे सुरक्षित है। 7/7 की लंदन की बमबारी ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि वे व्यक्ति, जिनके हृदय में क्रोध और घृणा भरी है, कितनी सरलता से बम बना सकते हैं और उनका सबवे और बसों में, उच्चतम खुफिया सुरक्षा और अधिकतम सतर्कता के बावजूद, विस्फोट कर सकते हैं। 9/11 की घटना हमारे लिए और भी सख्त चेतावनी है क्योंकि इसमें हमलावरों के पास हथियार के रूप में केवल अमेरिकी वायुयान थे, उनकी कार्यवाही का स्थान अमेरिकी हवाई अड्डा था और उन्होंने दिन-दहाड़े अमेरिका की अत्यन्त बहुमूल्य सम्पत्ति को नष्ट कर दिया। कई शातिर 'हैकर', जिनमें से एक किशोर अवस्था में ही था, अमेरिकी सेना विभाग के उच्चतम गोपनीय कम्प्यूटरों तक पहुंचने में सफल हो गए थे। 'साइबर पर्ल हारबर' अब एक स्पष्ट संभावना है। सुरक्षा विश्लेषकों ने अत्यन्त विनाशकारी

अल्ट्रासोनिक हथियारों और सूक्ष्म चालक-विहीन हवाई वाहनों के सम्बन्ध में चेतावनी दी है जिसमें अत्यन्त छोटे पक्षी के आकार के नेटवर्क, बड़े-बड़े मॉल, रेलवे स्टेशनों और यहां तक कि हवाई जहाजों को भी धरती से नियंत्रित करके सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर सकते हैं। मिशेल ब्राउन ने अपनी पुस्तक *ग्रेव न्यू वर्ल्ड: सिक्योरिटी चैलेंजेज इन 21 सैन्चुरी* (Grave New World: Security Challenges in 21st Century) में इस प्रकार के अनेक भयानक खतरों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इनके परिहार के लिए उच्चतम सुरक्षा और पूर्व अनुमानित आघात की अपेक्षा, अधिक आवश्यक और प्रभावी होगा यदि हम लोगों के अंतःकरण से भय और घृणा को हटा कर उसमें सत्य और न्याय भरी आशा का बीजारोपण कर सकें। आतंकवाद की गहरी समस्या अन्यायपूर्ण घरेलू और विदेशी नीतियों के गर्भ में जन्मे घृणा भरे उन्माद की उतनी ही निशानी है, जितनी की कुटिल मनःस्थिति की। जैसा कि राष्ट्रपति केनेडी ने कहा था, "वे जो शांति-पूर्ण बदलाव को असंभव बनाते हैं, उग्र विरोध को अवश्यंभावी बना देंगे।"

जोनाथन शैल लिखते हैं, "नई शताब्दी के प्रारंभ से ही कोई भी अन्य प्रश्न इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना यह कि क्या अब विश्व में हिंसा का नया चक्र प्रारंभ हो रहा है?" बीसवीं सदी में हुए खून खराबे के दोहराए जाने या पहले के कृत्य से भी अधिक हिंसक खून खराबे के लिए, इक्कीसवीं सदी की भर्त्सना करते हुए वे कहते हैं "आज के खतरे पहले की भांति नहीं हैं। आज परम्परागत सेनाओं का विशाल समूह और बड़ी विरोधी शक्तियों की वर्गीकृत घृणा नहीं है बल्कि आज के संदर्भ में खतरा है— परमाणु हथियारों और सामूहिक संहार के अन्य अस्त्रों के दुराग्रह और उनके नियमित विस्तार का तथा राष्ट्रीय, सजाति-विषयक, धार्मिक तथा वर्ग संबंधी तीव्र आक्रोश के असंतुष्ट पिशाचों का।" वे तर्क करते हैं और उल्लेख करते हैं कि "11 सितम्बर के झटके के बाद वैश्विक आतंकवाद के खतरे से बचने के लिए दृढ़ कार्यवाही करने की आवश्यकता से एक नई आशा भरी राह दृष्टिगोचर हुई है। बीसवीं शताब्दी के इतिहास से एक और अच्छी सीख उभर कर आ रही है, जो हालांकि पहली से कम उत्कृष्ट है पर उतनी ही महत्वपूर्ण है, वह यह है कि राजनैतिक कार्यों के प्रत्येक स्तर में, हिंसा के स्थान पर अहिंसात्मक कार्यवाही अधिक प्रभावशाली है। यह वह प्रतिज्ञा है जो भारत में, अंग्रेजी शासन के विरोध के लिए मोहनदास करमचंद गांधी ने की, संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकार आन्दोलन के लिए मार्टिन लूथर किंग ने की और जिससे पूर्वी यूरोप एवं रूस के अहिंसात्मक आंदोलनों द्वारा साम्यवाद और सोवियत यूनियन का पतन हुआ।"

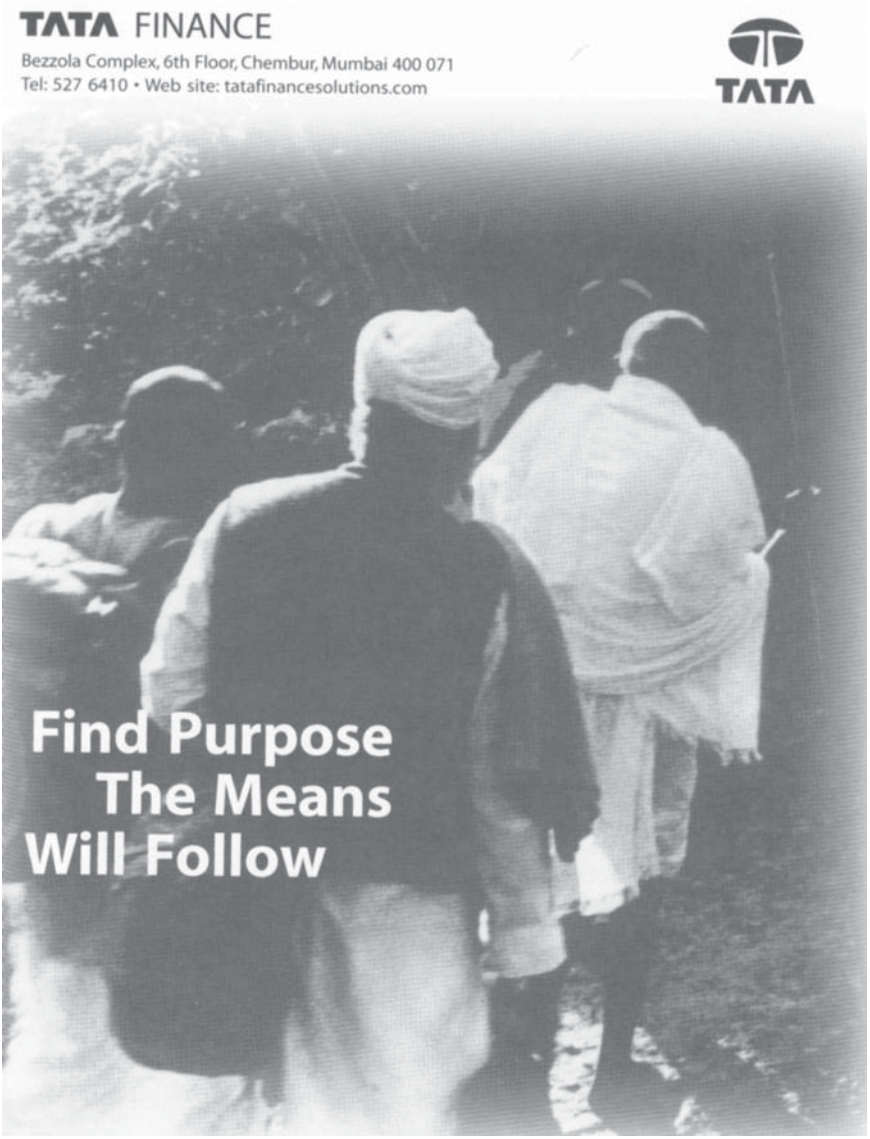

'दांडी मार्च' हम सभी के लिए अब भी प्रेरणा स्रोत है। वर्ष 1997 में, भारतवर्ष की स्वतंत्रता की 50वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में, हमने 'दांडी मार्च' का एक चित्र प्रकाशित किया था। उस अभियान को, गांधीजी के समाज-सेवा के संदेश की वसीयत के सबसे सशक्त आवाहन के रूप में सराहा गया था। उस आवाहन की प्रतिक्रिया इतनी अधिक हुई कि वह हमारे निकाय की विषय-वस्तु अर्थात् कॉर्पोरेट-थीम बन गई। हमारा विश्वास है कि यह उस तथ्य को प्रतिबिम्बित करता है कि टाटा के उत्पादों में बापू की विश्वास प्रणाली समाहित है।

गांधी–एक आदर्श नायक

दीपक चोपड़ा का स्पष्ट मत है कि "महात्मा गांधी ने एक गहन सत्य की अभिव्यक्ति की थी जब उन्होंने यह कहा था कि 'शांति प्राप्ति का कोई पथ नहीं है, शांति ही वह पथ है"। वे स्पष्ट करते हैं कि इस कथन से गांधी का यह तात्पर्य था कि शांति की प्राप्ति हिंसा और युद्ध से नहीं हो सकती बल्कि जीवन जीने के उन तौर-तरीकों और उन नीतियों को अपनाकर हो सकती है जो शांति को बढ़ावा देती हैं। वह बताते हैं कि मानव जीवन ने अनेक उपलब्धियां हासिल की हैं— जैसे विवेकपूर्ण आचरण, मन का अन्वेषण, अंधविश्वासों और बीमारियों पर विजय आदि। वे आगे कहते हैं कि मानव जाति का अगला क्रांतिकारी कदम युद्ध और हिंसा का पूर्णरूप से परित्याग होना चाहिए। "जिस प्रकार न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के नियमों के परिणामस्वरूप अंततः मानव जाति हमेशा के लिए नये विज्ञान की राह पर अग्रसर हुई— वह राह, जिसने सम्पूर्ण रूप से दुनिया को बदल देने का रास्ता दिखलाया। उसी प्रकार आप और हम मिलकर एक नए मोड़ की रचना कर सकते हैं।"

गांधी का नेतृत्व पूर्णतया स्वनिर्मित था, जो स्वतः अंकुरित हुआ और 'सत्य के साथ प्रयोग' और 'शाश्वत सत्य' के अनुप्रयोग के साथ-साथ दिन प्रतिदिन की चुनौतियों का सामना करते हुए अपने चरम विकास तक पहुंचा। उनके पास न तो व्यक्तित्व विकास, सम्प्रेषण, संगठन, प्रबन्धन अथवा नायकत्व की धरोहर थी, न ही भव्य, आकर्षक, रूपवान व्यक्तित्व था और न ही विलक्षण वाक्-पटुता थी। उनका एकमात्र मार्गदर्शक उनकी 'अन्तरात्मा की आवाज' थी। आत्मा की इस आवाज ने उन्हें अनेक अनिवार्य सत्यों को जानने समझने के साथ-साथ यह भी सिखाया कि एक अकेला व्यक्ति भी बदलाव ला सकता है शक्ति या ताकत— शारीरिक क्षमता से नहीं, वरन अदम्य संकल्प शक्ति से। एक उचित कारण, स्वयं पीड़ा सहन करने की क्षमता तथा हिंसा का परिहार करने का संकल्प हो तो विजय सुनिश्चित है। जो डरता है वह असफल रहता है। नायकत्व का उदाहरण प्रस्तुत करना सबसे अधिक प्रभावी होता है । सभी सत्यों से आगे सबसे बड़े सत्य 'ईश्वर' तक पहुंचने के संघर्ष ने उन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में निहित सत्यों को जानने का अवसर दिया जिनमें नेतृत्व, राजनीति, अर्थशास्त्र, विज्ञान, पारिस्थितिकी, प्रबंधन के साथ सबसे प्रमुख तथ्य यह था कि मानव के अस्तित्व का मूलभूत सिद्धांत 'प्रेम' है। वे स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं "सत्य की खान की जितनी गहरी खोज होगी वहां गड़े हुए उतने ही बहुमूल्य नगीनों की खोज हो पाएगी।" एक शताब्दी पूर्व एमरसन ने कहा था "हमारे पीछे क्या था और आगे क्या है, ये बहुत छोटी बातें हैं, जब हम उनकी तुलना अपने भीतर क्या निहित है इससे करते हैं।" कार्ल जंग ने इसी सत्य को और अधिक दृढ़ता व सारगर्भिता के साथ यह कह कर अभिव्यक्त किया है कि "जो सपनों के परे देखता है और जो अपने भीतर देखता है— जागृत होता है।"

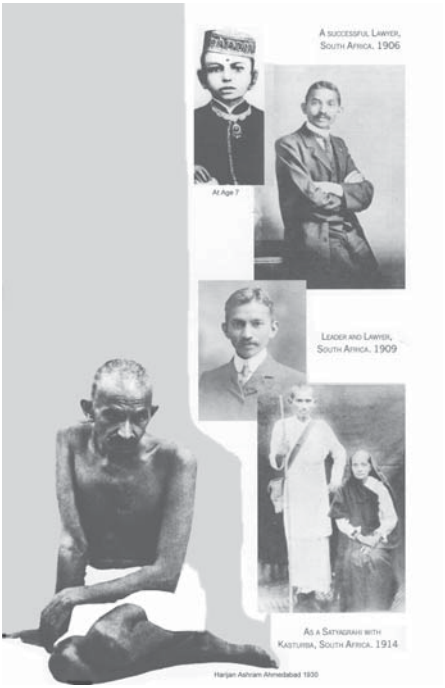

अपनी युवावस्था में अत्यन्त भीरु गांधी, एक निडर व साहसी व्यक्ति तब बने जब उन्होंने सत्य की तलवार और अहिंसा की ढाल को अपनाया। एक 'अर्द्ध-नग्न फकीर' की तरह वस्त्र धारण करने वाले गांधी, सम्पूर्ण विश्व के जन-नायक के रूप में अवतरित हुए। सूचना युग के मानक प्रतीक, एपल कम्प्यूटर्स ने 1998 में अपने भूमंडलीय विज्ञापन अभियान में दो बार, गांधी के बैठे हुये चित्र के नीचे केवल दो शब्दों का शीर्षक दिया 'अलग सोचो'। टाटा फाइनेंस एडवरटाइजमेंट ने उनके एक छाया चित्र के साथ ये शब्द लिखे 'उद्देश्य खोजो, राह स्वयं निकलेगी।'

गांधी ने बल देकर कहा "हम दुनिया में जो बदलाव देखना चाहते हैं, हममें से प्रत्येक वह बदलाव बने।" अनेक लोग, विशेषकर युवा अज्ञानतावश यह समझते हैं कि गांधी जन्म से एक संत थे, जो एक संत की तरह जीये तथा एक शहीद की तरह मरे। यह कदापि सत्य नहीं है। अपनी 'आत्मकथा' में उन्होंने स्पष्ट रूप में यह लिखा कि उनमें भी युवाओं की सी स्वाभाविक कमजोरियां थीं। एक बार उन्होंने अपने परिवार का एक आभूषण चुरा कर अपने भाई को उधार चुकाने के लिए धन दिया था। एक दूसरे मौके पर उन्होंने अपने मुसलमान मित्र के साथ मांसाहार खाने की शरारत की, यद्यपि उनका लालन-पालन शुद्ध शाकाहारी परिवार में हुआ था।

एक युवा के रूप में उनमें प्रबल काम-प्रवृत्ति थी, उनका स्वभाव उग्र था तथा वे एक अज्ञेयवादी अवस्था से भी गुजरे। उनमें परिवर्तन तब आया जब लगभग 35 वर्ष की अवस्था में उन्होने 'सत्य के साथ प्रयोग' का अपना अभियान शुरू किया और ब्रह्मचर्य व्रत की शपथ लेकर दृढ़तापूर्वक तपस्वी मार्ग को विभिन्न चरणों में अपनाया। उनका 'अर्द्ध-नग्न फकीर' वाला रूप 1922 में प्रारम्भ हुआ, जब वे 53 वर्ष के थे। हालांकि उनकी सोच और दृष्टि हमेशा इसी ओर केन्द्रित रहती थी कि विभिन्न समस्याओं का व्यवहारिक हल कैसे ढूंढा जाए तथा उन देशवासियों को स्वतंत्रता प्राप्ति और सामाजिक पुनरुत्थान के लिए कैसे प्रेरित कर उनका मार्गदर्शन करें, जिनमें से कोई भी उनकी तरह सन्यासी और अहिंसावादी नहीं था।

गांधी ने नेतृत्व की जो राह अपनाई वह उन सभी के लिए उपलब्ध है जो उनके सिद्धांतों और उनकी समर्पण-भावना को अपनाने की इच्छा रखते हैं। विश्व के अधिकतर व्यक्तियों में विशेषतः भारतीयों में ईश्वर के प्रति गहरी आस्था है और ईश्वर के विश्व-रूप, विशेष रूप से 'सत्' में उनकी अथाह निष्ठा है। 'अहिंसा परमोधर्म' भारत की आध्यात्मिक परम्परा का एक अभिन्न अवयव है जो स्वामी महावीर तथा महात्मा बुद्ध के समय से ही लगभग पांच सौ वर्ष ईसा पूर्व से भारत में विद्यमान है। सत्य, न्याय, प्रेम और शांति ये सभी धार्मिक परम्पराओं के आधारभूत तत्व हैं, जैसा कि निम्न पवित्र अभिलेखों द्वारा दृष्टिगत होता है:-

सत्य विजयी है, असत्य कदापि नहीं, सत्य ही सही राह है,
सत्य ही जीवन का उद्देश्य है,
(यह) उन मनीषियों को प्राप्त होता है जो स्वार्थ से परे हैं।
मुंडक उपनिषद् (3.1.6)

वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है जो दुर्भावना रहित है,
जो सबके प्रति मैत्रीभाव रखता है, करुणावान है,
'स्व' के परे है और अहंकार रहित है,
दुःख सुख में समान है, धैर्यवान है, संतुष्ट है,
आत्म-नियंत्रित है, दृढ़ आस्थावान है,
और जिसका मन व बुद्धि मुझमें समर्पित है।
गीता (बारहवां अध्याय, तेरहवां श्लोक)

हथियारों की फौज वह नहीं कर सकती जो शांति करती है।
यदि तुम अपना उद्देश्य मिठास से पा सकते हो तो विष का प्रयोग क्यों?
एक बुद्धिमान व्यक्ति क्या अपने रूई के गट्ठर को इस भय से त्याग देगा
कि उस पर मार्ग-शुल्क देना पड़ेगा?
नीतिवाक्यामृत (344–50)

अतएव, हे आनंद, अपना दीपक स्वयं बनो। अपनी शरण में तुम स्वयं जाओ। सत्य को एक दीपक की तरह मजबूती से पकड़ो। किसी अन्य की शरण में जाने के बदले अपनी शरण में जाओ.. .. और आनन्द, जो कोई भी अभी या मेरी मृत्यु के पश्चात्, अपना दीपक स्वयं बनेगा, स्वयं

अपनी शरण में जाएगा, और जो सत्य को मजबूती से पकड़ कर रखेगा, आनन्द, वही मेरे उन भिक्षुओं में से होगा, जो उच्चतम ऊंचाई तक पहुंचेंगे। पर उनमें ज्ञान अर्जित करने के लिए व्यग्रता होनी चाहिए।

बुद्ध के अंतिम धर्मोपदेश से

दस शक्तिवान वस्तुएं होती हैं-
लौह शक्तिशाली है पर अग्नि उसे गला देती है।
अग्नि शक्तिशाली है किंतु जल उसे शमन कर देता है।
जल शक्तिवान हैं किन्तु बादल उसे वाष्पीकृत कर लेता है।
बादल शक्तिशाली है किन्तु वायु उसे उड़ा ले जाती है।
मनुष्य शक्तिवान है पर भय उसके पतन का कारण बनता है।
भय शक्तिवान है पर नींद उस पर विजय पा लेती है।
नींद शक्तिवान है किंतु मृत्यु उससे अधिक शक्तिवान है।
किंतु प्रेम से परिपूर्ण दयालुता, मृत्यु के बाद भी जीवित रहती है।

ताल्मुड

शांति, मतभेद पर विजय प्राप्त करे।
दयालुता, कृपणता पर विजय प्राप्त करे।
प्यार, तिरस्कार पर विजय प्राप्त करे।
सत्य वचन, असत्य वचनों पर विजय प्राप्त करे।
सच्चाई, झूठ पर विजय प्राप्त करे।

ज़ोरोस्त्रियन यास्ना 60.5

"तब तुम्हें सत्य का ज्ञान होगा, और सत्य तुम्हें आजाद कर देगा।"

बाइबिल; जान 8:32

तुमने यह कहते हुए सुना है, 'अपने पड़ोसी से प्यार करो और अपने शत्रुओं से घृणा' पर मैं तुमसे कहता हूं कि तुम अपने शत्रुओं से प्यार करो और उनके लिए प्रार्थना करो जो तुम्हें दंडित करते हैं, ताकि तुम स्वर्ग में विराजे उस परम पिता की सन्तान बन सको।

बाइबिल; मैथ्यू 5:43—45

ईश्वर ने सूर्य को उजाला दिया और चांद को चमक दी,
और चांद की सुंदरता के साथ घटने बढ़ने की मंजिलें तय कर दीं ताकि तुम उसकी मदद से साल और दिन का हिसाब रख सको। अल्लाह ने इन सबको संयम और सत्य की वृद्धि के एक मकसद से बनाया है।
वो अपनी निधियों को समझदार लोगों को इन इशारों से समझा रहा है।
कुरान सुरा 10:5

ऐ शागिर्दो, इन्साफ के आकांक्षी और खुदा के गवाह बनो, चाहे वह तुम्हारे माता-पिता या सगे सम्बन्धियों के खिलाफ हों तब भी।
कुरान सुरा 4:133

वे जो अपने धन को अल्लाह की राह में खर्च करते हैं उन्हें अल्लाह उचित रूप में उसका इनाम देगा। उस एक दाने की तरह, जो जब बोया जाए तो उसकी सात बालें उगें और उसके हर बाल में सैकड़ों बीज हों क्योंकि वह जिसे चाहता है, कई गुना बढ़ा कर उसे बहुतायत से देता है।
कुरान सुरा 2:261

पानी बिच मीन पियासी, मोहे सुन सुन आवत हांसी।
आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी।
कबीर

वे जो सत्य को खोजते हैं और सत्य का पालन करते हैं,
उनके तन और मन सच्चे हो जाते हैं।
और वे जिन्होंने सत्य को भुला दिया है, यंत्रणा से रोते रह जाते हैं,
और जब जाते हैं तब भी आंसू बहाते जाते हैं।
आदि ग्रंथ, श्री राग
"वह हृदय, स्थान, घर और नगर, पर्वत, गुफा, घाटी और हरियाला मैदान, सागर और द्वीप धन्य है जहां ईश्वर की चर्चा की गई है और उसके यश का गुणगान हुआ है।"
बहाउल्लाह

अतः सच्चाई, न्याय, प्रेम, अहिंसा और दान का समर्थन करना और आचरण करना उतना कठिन नहीं है जितना उन्हें दिखाई देता है जो इस पथ की तुलना गांधी के यतीत्ववाद से करते हैं। इस मार्ग को अपनाने पर हममें से प्रत्येक व्यक्ति, गांधी की ही तरह एक थरथराते, कायर व्यक्ति के स्थान पर एक निर्भीक, प्रेरित और विश्वसनीय नेता के रूप में उभर सकेगा, जैसा कि मार्टिन लूथर किंग और अनेक अहिंसा के समर्थक नेता बिना यतीत्ववादी बने भी, बन सके।

"हम दुनिया में जो बदलाव देखना चाहते हैं, हममें से प्रत्येक वह बदलाव बने," यह अभिपुष्टि करते हुए गांधी हम सबका— राजनेताओं, शासकीय अधिकारियों, वकीलों, सामूहिक अथवा व्यापारिक प्रबन्धकों, वैज्ञानिकों, सेना के पदाधिकारियों और जवानों, शांति के सक्रिय उत्प्रेरकों, ज्ञान के कार्यकर्ताओं, आचार्यों, शिक्षकों, विद्यार्थियों और हर साधारण स्त्री-पुरुष का आह्वान कर रहे थे।

हममें से हर व्यक्ति प्रतिदिन किसी न किसी प्रकार के असत्य, अन्याय, घृणा, क्रोध, हताशा या हिंसा का सामना करता है, तथा उसके पास विकल्प है कि वह इसकी उपेक्षा करे, इसमें सहभागी बने अथवा साहस के साथ उसका सामना कर संघर्ष करे। इन सबमें अंतिम राह ही नेतृत्व की राह है। गांधी नेतृत्व के इस प्रारूप का आदर्श उदाहरण हैं।

हममें से प्रत्येक के भीतर नेतृत्व की क्षमता विद्यमान है किंतु उसे अंतर्निरीक्षण द्वारा ढूंढ़ कर उसका अनुशासित एवं समर्पित रूप से यत्न द्वारा पोषण किया जाना आवश्यक है। उस व्यक्ति की तरह जिसने कृत्रिम पैरों द्वारा एवरेस्ट जैसे ऊंचे पर्वत की चढ़ाई कर ली, या पहियेदार कुर्सी पर चलने वाले एक पूर्णतः विकलांग उस व्यक्ति की तरह जिसने विश्व के सर्वोत्तम तारा-भौतिकी वैज्ञानिक के रूप में अपनी पहचान बनाई। इनकी तरह हममें से प्रत्येक व्यक्ति ऊंचाइयों को पा सकते हैं यदि हम समर्पित हृदय से उनके लिए प्रयास करें। डेमोस्थीन्स ने, जो युवा अवस्था में हकलाने जैसी अक्षमता से प्रभावित था, एक एकांत टापू में अपने मुंह में कंकड़ रख कर निरंतर भाषण देने का अभ्यास कर के उस अक्षमता पर विजय पाई और अतंतः उन्होंने ग्रीस के सर्वोत्तम वक्ता के रूप में प्रसिद्धि पाई।

हम सब में न केवल नेतृत्व की क्षमता है बल्कि यह हमारा कर्तव्य भी है कि हम इस क्षमता का प्रयोग अपने घर-परिवार, कार्य-क्षेत्र, आश्रितों, समुदायों और राष्ट्रों को उन्नत करने के लिए करें। आइन्स्टाइन के ये शब्द "यह दुनिया रहने के लिए एक असुरक्षित स्थान है, उन लोगों के कारण नहीं, जो दुष्ट प्रवृत्ति के हैं, वरन् उनके कारण जो इस संबंध में कुछ नहीं करते", सच हैं और हममें से प्रत्येक के लिए प्रासंगिक हैं।

हम जो परिवर्तन विश्व में लाना चाहते हैं, उसके लिए हमें अपने जीवन में प्रबल परिवर्तन लाने की आवश्यकता नहीं है। हमें दृढ़ता पूर्वक यह निश्चय लेना है कि हम अपने प्रत्येक कार्य में सत्यनिष्ठ होंगे, किसी को भी शारीरिक, भावनात्मक और मानसिक क्षति नहीं पहुंचाएंगे और अपने हृदय के समस्त क्रोध और घृणा के स्थान पर प्यार और संवेदनशीलता को स्थापित करेंगे। सदैव सच बोलने के एक साधारण से संकल्प को लेने का असाधारण परिणाम तुरंत दृष्टिगोचर हो जाता है। उसके पश्चात् कोई भी पाप करना अत्यन्त कठिन हो जाता है क्योंकि हर पाप-कर्म में न जाने कितने झूठ छिपे होते हैं।

'रोटरी इनटरनेशनल', फ़रवरी 1905 में शिकागो के एक एटॉर्नी पॉल हैरिस द्वारा स्थापित किया गया था। टाइम पत्रिका ने महात्मा गांधी को 'मैन ऑफ़ द इयर' घोषित किया और 4 जनवरी 1931 के अपने अंक में मुखपृष्ट पर उनका चित्र छापा, उसके कुछ महीनों बाद 1932 में हर्बर्ट टेलर नामक शिकागो के एक रोटेरियन ने 'फोर वे टैस्ट' (Four Way Test) नामक एक सरल नैतिक प्रश्नावली सूत्र लिपिबद्ध किया। 1943 में रोटरी इन्टरनेशनल ने इसे इस प्रकार विधिवत अपनाया, 'फोरवे टैस्ट ऑफ द थिंग्स वी थिंक, से ऑर डू' अर्थात् हम जो सोचते कहते या करते हैं उसकी चौतरफा परीक्षा। उस समय से इस सूत्र का एक सौ से अधिक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

क्या यह सत्य है?
क्या यह प्रभावित होने वाले हर एक के लिए न्याय-संगत है?
क्या इससे सद्भावना और बेहतर मित्रता होगी?
क्या यह प्रभावित होने वाले हर-एक के लिए लाभकारी होगा?

विश्व के हजारों रोटेरियनों ने कई वर्षों से सत्य को अपने जीवन का स्पर्श-मणि बनाया हुआ है। इस परीक्षण को हममें से प्रत्येक अपना सकता है।

वे सभी व्यक्ति जो सत्य, न्याय, प्रेम और अहिंसा का मार्ग अपनाते हैं वे झूठ, अन्याय, घृणा और हिंसा से आवृत अंधकार के लिए प्रकाश का केन्द्र और सकारात्मक ऊर्जा के उत्सर्जक बन जाते हैं। चूंकि प्रकाश के ये केन्द्र और ऊर्जा के उत्सर्जक, प्रचुर मात्रा में ऊर्जा और प्रकाश प्रसारित करते हैं, उनके परिणामस्वरूप आई दीप्ति परिवारों, पड़ोसियों, समुदायों, राष्ट्रों और विश्व के रूपान्तरण के लिए नये रास्ते खोलती है, जिसे वैज्ञानिकों और पारिस्थितिकी शास्त्रियों ने ऊर्जा की भाषा में एक बहुत बड़े जीव समुदाय के रूप में माना है।

जब वे लोग जो शीर्षस्थ स्थानों पर हैं सत्य, न्याय, प्रेम और अहिंसा की राह अपना लेते हैं, तब वे दूसरों के अनुसरण के लिए एक आदर्श प्रतिमान बन जाते हैं। संस्कृत की यह पुरातन उक्ति 'यथा राजा तथा प्रजा' वस्तुतः यही बताती है। प्रेरणादायी, विश्वसनीय, न्यायप्रिय और

शांतिप्रिय नेताओं के होने से उनकी सरकारें राष्ट्र, निगम और अन्य संस्थाएं अच्छे प्रशासन और सुरक्षा, प्रगति और समृद्धि की दृष्टि से अपने नागरिकों और भागीदारों के लिए सर्वोत्तम रूप में समर्थ होती है।

प्रत्येक स्तर पर राजनीतिज्ञों के पास प्रेरणादायी और विश्वसनीय नेतृत्व को व्यवहार में लाने के सर्वोत्तम अवसर उपलब्ध होते हैं। वे कई व्यक्तियों के हित में कार्य करते हैं जैसा किसी भी प्रकार के अन्य नेता नहीं कर सकते। उन्हें आज न्यूनतम सम्मान मिलता है। अनेक सांसदों पर गम्भीर अपराधों के आरोप हैं, कुछ सांसद निरंतर संसद से अनुपस्थित रहने के बावजूद अपने वेतन को बढ़वाते रहे हैं। संसद में मंत्रियों द्वारा प्रश्न उठाए जाने के लिए, संसद सदस्यों द्वारा विकासात्मक कार्य के लिए नियत धनराशि से धन आवंटन करने के लिए धन तथा कमीशन की मांग तथा एक 85 वर्ष के पूर्व विदेश-मंत्री जिनकी नियुक्ति आन्ध्र प्रवेश के राज्यपाल की तरह हुई थी, का राजभवन में व्याभिचार में रत कैमरे में पकड़े जाने की घटना के रहस्योद्घाटन ने सारे राष्ट्र को स्तब्ध कर दिया है और इसकी घोर प्रतिक्रिया हुई है। वे जो पूरे निकाय को व्यवस्थित करना चाहते हैं और प्रभावी नेतृत्व प्रदान करना चाहते हैं, उनके ऐसा करने के विषय में टॉयन्बी द्वारा गांधी के संबंध में कहे गये शब्द कि 'गांधी दृढ़ता पूर्वक गंदगी के दलदल में से अपनी राह बनाते हुए यह प्रदर्शित करते गए कि कैसे इसे शुद्ध किया जा सकता है, उसमें पूरी तरह सने होने के बावजूद निर्मल रहा जा सकता है, नेतृत्व किया जा सकता है और भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, जातिवाद और हिंसा से अछूते रह कर राजनीति को लोगों की निस्वार्थ सेवा-कार्य करने के लिए रूपान्तरित किया जा सकता है।' दूरदृष्टि, विजन, सत्यनिष्ठ और समर्पित नेतागण जैसे जवाहरलाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री, स्वतंत्रता के बाद के पहले तीन दशकों में तथा वर्तमान समय में सोनिया और राहुल गांधी जैसे नेता, जिन्होंने धर्मनिरपेक्ष, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय एकता के प्रयास में इस सीमा तक कि वे दलितों के घर पर नंगे पैरों प्रवेश करते हैं, जिन्होंने सत्ता शक्ति और धन-दौलत, ऐश्वर्य को ठुकरा दिया है, ऐसे नेताओं का सम्मान होता है और सब तरफ प्रशंसा होती है। जनता की स्वार्थ रहित सेवा करने के लिए सत्यनिष्ठ और समर्पित राजनेता आदरणीय हैं और सदैव याद रखे जाते हैं। वे, जो बिना सिद्धांतों की राजनीति में आसक्त हो जाते हैं और संकीर्ण, आत्मपरक, दलीय और सिद्धान्तकारी हितों का परिपालन करते हैं, जिन्हें 'प्रजातंत्र के मंदिरों' को कलुषित और दिग्भ्रमित करने में जरा भी संकोच नहीं होता और इतना ही नहीं वे मात्र झूठे दिखावों के लिए अपने देश को युद्ध में झोंक देने में संकोच तक नहीं करते, अपने लोगों के अविश्वास और उपहास का पात्र बनते हैं। यही बात उन सरकारी कर्मचारियों पर भी लागू होती है जो अपने राजनेताओं के साथ मिल कर भ्रष्ट आचरण में पूर्णरूपेण सह-भागी हैं और अपनी संवैधानिक शपथ का उल्लंघन करते है।

2002 में गुजरात हत्याकांड और 2009 में कर्नाटक में चर्च पर हमलों में कुछ वरिष्ठ प्रशासनिक और पुलिस अधिकारी उग्र साम्प्रदायिक गुटों के साथ सक्रिय रूप से सांठ गांठ करते पाए गए हैं। उनको भड़काने वाले एक राजनैतिक नेता के इन घृणित और जघन्य राजनैतिक दबाव के विरोध में दृढ़ता करने वाले गुजरात केडर के आई.ए.एस. अधिकारी हर्ष मंदर द्वारा 2002 में दिया गया त्यागपत्र एक अनुकरणीय उदाहरण है। उन्होंने राजनीति से प्रेरित इस जातीय हत्याकांड के विरोध में यह महान कदम उठाया।

उसी प्रकार आई.पी.एस. अधिकारी आर.बी. श्रीकुमार, संजीव भट्ट और राहुल षर्मा का उदाहरण प्रषंसनीय है जिन्हें 2002 के गुजरात दंगों के राजनैतिक शड़यंत्र के बारे में गुप्त रखे जा रहे तथ्यों पर प्रकाष में लाने के लिए बेरहमी से परेषान किया जा रहा है। श्रीकुमार ने 'द डायरी ऑफ़ अ हेल्पलेस मैन' नामक पुस्तक में इनका रहस्योदघाट्न बड़े मार्मिक ढंग से किया है।

अभी हाल के कुछ साल के दौरान, पुलिसकर्मियों को निहत्थे विरोध प्रदर्षनकारियों पर लाठियां बरसाते और गोली चलाते हुए कैमरा में भी कैद किया गया है। नन्दीग्राम, सिंगूर और जैथापुर में हुई ऐसी घटनाएंइस पुस्तक में पहले बयान की गई हैं। पुणे में पुलिसकर्मियों के 9 अगस्त को भागते हुए प्रदर्षनकारियों पर गोलियां चलाते हुए टेलिविजन पर दिखाया गया था। इस गोलीबारी में तीन लोग मारे गए। इस प्रकार के अत्याचार के ठीक विपरीत, ब्रिटिष पुलिस ने लंदन में हाल में हुए दंगों और लूटपाट के दौरान कमाल का संयम बरता। इसके बारे में काफ़ी चर्चा हुई। हमारी पुलिस को यह सदैव याद रखना चाहिए कि कानून और व्यवस्था बनाए रखते समय जनता के षांतिपूर्ण प्रदर्षन का अधिकार भी बनाए रखना उनका कर्तव्य है। उन्हें याद रखना होगा कि 1992 में लॉस एंजिलिस और 2011 में ब्रिटेन में दंगों ओर लूटपाट का आरम्भ एक पुलिसकर्मी की बेरहमी से ही हुआ था, जिसे दूरदर्षन पर भी दिखाया गया था।

भारतीय राजनयिकों को सदा याद रखना चाहिए कि भारत के सबसे पहले राजदूत वे बौद्ध भिक्षुगण थे जिन्हें सम्राट अशोक ने 2000 साल पहले श्रीलंका, बर्मा, खोतन, बैक्ट्रिया, दमिश्क, एथेन्स और अलेक्जैन्ड्रिया भेजा था। वे सभी अहिंसा, सार्वभौम भाईचारे और शांति का सन्देश लेकर गए थे। राजनयिक लोग अनिवार्यतः शांति-दूत होते हैं। उनके द्वारा दी गई रिपोर्टों और परामर्श पर विदेश नीति निर्धारित की जाती है। इसलिए उन्हें देश के वर्तमान की अपेक्षा दूरगामी हितों के बारे में अधिक ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए क्योंकि दूर बैठे मित्र से पड़ोसी कहीं अधिक

महत्वपूर्ण होता है। पड़ोसी राष्ट्र पर सैनिक कब्जा कर लेने वालों के साथ सांठ-गांठ, उनकी सेना के लिए सड़कें बनाना या उनके विमानों के उतरने के लिए हवाई अड्डे बनाना, दूरगामी हितों के लिए कभी भी उचित नहीं है, भले ही अभी के लिए लाभकारी लगे। देश-प्रेम व राष्ट्रीयता, अपने देश के प्रति अखंड प्रेम, आक्रमणकारियों के लिए घोर घृणा तथा जब तक उनका आधिपत्य समाप्त न हो जाए, तब तक दृढ़ निश्चय से प्रेरित वीरता से युद्ध करना इतिहास का सबसे शाश्वत तत्व रहा है। उन्हें हमेशा याद रखना है कि भारत की सबसे बड़ी शक्ति वह 'कोमल बल' (सॉफ्ट पावर) है जिसके गांधी अब सबसे प्रमुख अवयव है।

गांधी का नेतृत्व वकीलों के लिए भी प्रासंगिक है क्योंकि उन्होंने स्वयं भी कानून की डिग्री हासिल की थी और यह दिखा दिया कि किस प्रकार कानून के अच्छे ज्ञान का उपयोग अन्याय व दबाव के खिलाफ प्रभावकारी रूप से किया जा सकता है। वे सभी लोग जो लोक कल्याणार्थ कानूनी सलाह देते हैं तथा लोक-हित हेतु मुकदमा करते हैं, उन्होंने अपने देशवासियों से खूब इज्जत और आभार पाया है। ठीक उसी प्रकार विख्यात सुप्रीम कोर्ट जज के.आर. कृष्णा अय्यर और एम.एन. वेंकाटाचलैया महत्वपूर्ण विषयों पर अपने प्रजनात्मक निर्णयों से तथा अभी हाल में जस्टिस जी.एस. सिंहवी और ए.के. गांगुली ने स्पष्ट रूप से बताया है कि विश्व के सबसे विशाल जनतंत्र के सर्वोच्च न्यायालय समेत सभी न्यायालयों में आम आदमी के लिए सहानुभूति बिल्कुल खत्म नहीं हो गई है। उन्होंने इस तथ्य पर ध्यान आकर्षित किया कि यदि सुप्रीम कोर्ट और अन्य न्यायालय संवैधानिक आदेशों को 'तथाकथित वैश्वीकरण की प्रवृत्ति' से समझौते करने के लिए क्षीण कर देंगे तो उसके कितने भयंकर परिणाम हो सकते हैं। दुख की बात है कि पिछले दो दशकों के दौरान, सुप्रीम कोर्ट के दो जजों और हाई कोर्ट के तीन जजों द्वारा न केवल संवैधानिक आदेशों का उल्लंघन किया गया है बल्कि आर्थिक व अन्य कुलषित आचरण भी हुआ है। वास्तव में यह अत्यन्त चिंताजनक व दुखद घटना है जिसका प्रभावपूर्ण तरीके से तुरंत सुधार किया जाना नितांत आवश्यक है। सौभाग्य-वश, वर्तमान विधि-मंत्री ने इस दिशा में सकारात्मक शुरूआत की है। इसके अलावा 'जुडिशल अकान्टेबिलिटी' और 'जुडिशल रिफार्म' के लिए एक नागरिक आन्दोलन भी शुरु हुआ। जिसके अंतर्गत 'जज एन्ड जजमेन्ट वॉच' का प्रावधान हुआ है।

गांधी के 'पांच स्तरीय' नेतृत्व और न्यासिता की संकल्पना, सामूहिक औद्योगिक व्यवसाय, बैकिंग तथा आर्थिक क्षेत्र आदि के नेताओं के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। पीटर ड्रकर का भी यही मत है कि "अच्छा प्रबंधन बहुत गहराई से आध्यात्मिक पहलुओं से जुड़ा है— अर्थात् मनुष्य की अच्छी या बुरी प्रकृति से।" 'बिना नैतिकता के व्यापार' कुछ समय के लिए लाभकारी हो सकता है किंतु अंततः घोर विपत्ति तक पहुंचाता है जिसकी अमेरिकी और यूरोपीय देशों के अनेक उदाहरणों द्वारा पुष्टि हुई है। यह उनके लिए भी लागू है जो काम करने की सही नीति

का परित्याग कर 'बिना मेहनत के धन-लाभ', के मजे लूटते हैं, बिना यह सोचे समझे कि उनके इस आचरण से उन्हीं के साथी नागरिकों को कितनी हानि उठानी पड़ रही है।

राश्ट्र और प्रदेष के स्तर के भारत के आयोजकों के लिए, गांधी जी, द्वारा सुझाई युक्ति एकदम उपयुक्त है। निर्धन व्यक्ति को दान नहीं, बल्कि रोज़गार चाहिए। इसके बारे में भारत के योजना आयोग के सदस्य, अरुन मैरा ने 9 अगस्त 2011 के इकॉनॉमिक टाइम्स में 'कीज़ टु इनक्लूसिव ग्रोथ' नामक लेख में लिखा है कि ''अधिक उत्पादन योग्य नौकरियों का तेज़ी से उपलब्ध कराना, देष के योजनाकारों के लिए नितांत आवष्यक है।'' ये और भी ज़रुरी है क्योंकि 2030 तक 25 करोड़ अधिक लोग काम की तलाष को तैयार हो चुके होंगे। कर्षि, उत्पादन या आई टी क्षेत्र इस मात्रा में नौकरियां उपलब्ध कराने में असमर्थ हैं। इसलिए ये बहुत ज़रुरी है कि ऐसे रोज़गारों के मौके खोजे जाएं जिनमें अनेक तरह के हुनर और उनके विभिन्न स्तर हों, साथ ही रोज़गार विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में फैले हों।'' अति लघु व लघु उद्योग और पर्यटन, समावेषक प्रगति के ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें रोज़गार और धनोपार्जन के अवसर अधिक उपलब्ध हो सकते हैं। भारत में दर्षनीय स्थानों की भरमार होने के कारण पर्यटन क्षेत्र ऐसी सम्भावाना से लबरेज़ है, जिसमें प्रति दस लाख रुपयों के निवेष से 78 नौकरियां उपलब्ध हो सकती हैं जब कि उत्पादन क्षेत्र में इतने ही निवेष से केवल 45 नौकरियों के अवसर पैदा होंगे। इस क्षेत्र में निवेष से एक और लाभ ये है कि इसमे साधारण श्रमिक से लेकर निपुण और ख़ास हुनर वाले लोगों तथा महिलाओं तक को दूर दराज़ क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर मिल सकेंगे।

परमाणु उर्जा के दष्ढ़ समर्थकों को, आई.ए.ई.ए. में भारत के पूर्व राजदूत टी.पी. श्रीनिवासन के कथन पर कुछ मनन करना चाहिए। 2011 नागासाकी षांति दिवस व्याख्यान के अवसर पर आई.डी.एस.ए. नई दिल्ली में उन्होंने कहा, ''आणविक प्रेत से पैदा होने वाले भयंकर ख़तरे के दो पहलू,हिरोषिमा और फुकुषिमा हमारे सामने पेष करते हैं। मानव ने परमाणु अस्त्र अपनी सुरक्षा के लिए बनाए और उसके बाद उसे ये पता चला कि उसने एक

दूसरे को निष्चित रुप से बरबाद करनेका सामान जुटाया है। सुरक्षित उर्जा की खोज से प्रेरित होकर परमाणु बिजली बनाई गई, जो एटम का एक सौम्य रुप है। अब उसको रोकने का समय आ गया है और हमें ये सुनिष्चित करना होगा कि इस तरह की दूसरी कोई खोज इतने भयानक परिणामों वाली न हो।''

यह तथ्य कि आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति ने मानव और पर्यावरण के विनाश को बढ़ाया है न कि उसे सुरक्षित रखा है, गांधी के उन शब्दों की वैधता को सिद्ध करता है जहां उन्होंने कहा कि 'मानवीयता के बिना विज्ञान' घोर पाप है। लुई पॉश्चर, थॉमस एडीसन, एलेक्जेंडर फ्लेमिंग, लिनस पॉलिंग, नॉरमैन बोरलॉग, एम. एस. स्वामीनाथन तथा अन्य वैज्ञानिकों, जिनके वैज्ञानिक कार्यों और अन्वेषणों ने मानवता की भलाई के लिए असाधारण योगदान दिया है, उनका सदैव आभार सहित स्मरण किया जाएगा और सम्मानित किया जाएगा।

हैनरी ऐडम्स के प्रेरणादायी शब्द "एक शिक्षक शाश्वतता को प्रभावित करता है। वह यह नहीं बता सकता कि कब उसका प्रभाव समाप्त होगा," तथा अब्राहम लिंकन के अपने पुत्र के शिक्षक को संबोधित किए शब्द— "उसे सिखाओ कि सब व्यक्तियों की बात सुने, पर साथ में यह भी सिखाओ कि सुने हुए शब्दों को सत्य की छलनी से छान ले और फिर जो बात निकल कर आए, केवल उसे ग्रहण करे," और गांधी के शब्द कि "संसार में वास्तविक शांति सुनिश्चित करने के लिए व्यक्ति को बच्चों के साथ शुरूआत करनी होगी" उन सबके लिए जो शिक्षा या ज्ञार्नाजन के क्षेत्र से जुड़े हैं, विलक्षण नेतृत्व का आदर्श उदाहरण है। वे सभी लोग सर्वोत्तम स्थिति में हैं क्योंकि वे उन असंख्य युवाओं को जो उनकी कक्षा या व्याख्यान-कक्ष में आते हैं, उनके मन, मस्तिष्क और चरित्र को ढ़ाल कर उन्हें सुविज्ञ, ईमानदार और विश्वसनीय नेता के रूप में परिवर्तित करते हैं।

सत्य के प्रति दृढ़ आस्था, सभी मुख्य धर्मों के महान् ग्रंथों का अध्ययन और विश्व के महान विचारकों की पुस्तकों का मनन ही गांधी के कमजोर, भयभीत व्यक्तित्व को निर्भीक नायक के रूप में रूपान्तरित करने का कारक था। उन सभी महत्वाकांक्षी विद्यार्थियों को जो नायक बनने की आकांक्षा रखते हैं, गांधी के उसी रास्ते का अनुसरण करना चाहिए।

सन् 1930 और 40 के दशक की महिला स्वतंत्रता सेनानीः सरोजिनी नायडू, उषा मेहता, अरुणा आसफ अली तथा आज की मेधा पाटेकर, वन्दना शिवा और अरुंधती रॉय, निर्भीक महिला नायकों की प्रेरक उदाहरण हैं। ऐसा ही एक उदाहरण है, अमेरिकी नीग्रो महिला रोजा पार्क्स का, जिन्होंने 1 दिसम्बर 1955 को मोंटगमरी सिटी बस में एक श्वेत अमेरिकी को अपनी सीट देने से निर्भीकता से इन्कार किया और इस प्रकार अमेरिका के नागरिक अधिकार आन्दोलन को

गति प्रदान की। सक्रिय नेता मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व में यह आन्दोलन पूरे अमेरिका में फैल गया और अंततः 1970 में 'अमेरिकी नागरिक अधिकार अधिनियम' के अन्तर्गत नियम पारित हुआ जिसमें सभी प्रकार के वर्ग-भेदों का बहिष्कार किया गया। ऐसा ही एक ताजा उदाहरण है सिंडी शीहन का, जो एक युवा अमेरिकी सैनिक की मां हैं, जिसकी मृत्यु ईराक युद्ध के समय हो गई थी। उन्होंने बड़ी निर्भीकता से अमेरिकी राष्ट्रपति बुश के निवास, क्रॉफर्ड रेंज, के बाहर धरना दे दिया और अनेकों अमेरिकी साथियों को 'हमारी फौजें वापस लाओ' की मांग का समर्थन करने को प्रेरित किया।

ईराक के युद्ध, वैश्वीकरण और इंटरनेट ने एक संगठित वैश्विक, युद्ध-विरोधी, न्याय और शांति के जन-आन्दोलन को जन्म दिया है। 'विश्व सामाजिक मंच' (World Social Forum) इसका सबसे प्रभावकारी साकार रूप है। अब वे सब व्यक्ति तथा सरकारी संस्थाएं जो सब के लिए आर्थिक और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना चाहते हैं और जो विश्व शांति आंदोलन के सहभागी होना चाहते हैं, अत्यन्त सुगमता से यह कर सकते हैं।

हमारी सेनाएं धर्म-निरपेक्ष स्त्री और पुरुषों का एक ऐसा निकाय हैं जो आज विश्व में सबसे विशाल और सबसे अधिक अनुशासित है। ऐसी सेना के नेतृत्व की मुख्य अपेक्षित आवश्यकता है कि अपनी इस परम्परा का निर्वहन हो तथा यह सुनिश्चित हो कि अधिकारियों और प्रत्येक स्तर की सैन्य टुकड़ियों में उच्च आदर्श स्थापित होगा। परम शक्तिशाली सेनाएं, कम और घटिया अस्त्र-शस्त्रों से लैस होने के बावजूद भी अच्छे नेतृत्व के द्वारा अत्यन्त प्रेरित व निर्भीक वियतनाम और अफगानिस्तान के योद्धाओं से हारी हैं। कुछ अत्यन्त औद्योगीकृत यूरोपीय देशों ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा योजना में 'नागरिक और सामाजिक सुरक्षा' को सम्मिलित कर लिया है। हमारे देश सहित, सभी सैन्य नेता, इस प्रकार की सुरक्षा के संबंध में उचित विचार करना चाहेंगे। यद्यपि उनका सैन्य प्रशिक्षण अत्यन्त परिष्कृत हथियारों (डब्लू. एम. डी. एस. सहित) के बारे में जानने, उनके परिनियोजन और उनके उपयोग पर केन्द्रित होता है, वे इस बात पर ध्यान देना चाहेंगे कि 9/11 के हादसे के बाद से युद्ध की अवधारणा और संदर्भ तथा आज के असंयमित परिदृश्य में जिस प्रकार से लड़ाईयां हो रही है उन विचारों में आमूल परिवर्तन आया है। जैसा कि क्लॉजविट्ज ने कहा है, "प्रत्येक काल में युद्ध करने का अपना एक विशेष तरीका होता है। वे लोग जो युद्ध से जुड़े हैं उन्हें प्रत्येक काल-खंड में तरीकों के मुख्य अभिलक्षणों की विवेक पूर्ण विवेचना करनी चाहिए।"

योहन गाल्टुंग लिखते हैं, ''गांधी बहुत महान व्यक्तित्व हैं, आज भी हम उनकी आलोचना नहीं कर सकते। उनको आलोचनात्मक दर्षिट से न देखें तो हम सदैव उनसे बहुत षिक्षा ले सकते हैं।''

उसी स्वर में राल्फ़ बुल्टजेन पुश्टि करते हैं कि, ''सन्तचरित लेखन में गांधी का व्यक्तित्व एवं कार्य उनकी अपनी प्रसिद्धि में ही पूर्णतया समाहित है।'' सुभाश चन्द्र बोस के प्रति गांधी के व्यवहार की आलोचना करते हुए वे कहते हैं, ''बोस के कॉन्ग्रेस अध्यक्ष पद पर एक बार नहीं, बल्कि दो बार चुनेजाने के बाद भी गांधी ने उनका काम करना असम्भव बना दिया था। अन्ततः उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा।कृकृ इस तरह उन्होंने अपने सबसे प्रबल प्रतिद्वन्दी को रास्ते से हटा दिया।'' वे गांधी के इस दष्ढ़ कथन की भी आलोचना करते हैं किवे परमाणु बमों का सामना करने के लिएपाइलट को विष्वास दिलाएंगे कि उनके मन में उसके लिए कटुता नहीं है। वे आगे कहते हैं, ''आज के समय में यह सम्भव नहीं है कि धरती पर बैठा कोई व्यक्ति अन्तरिक्ष में उड़ रहे पाइलट में सदभाव पैदा कर सके। आज कम्प्यूटर निर्देषित मिसाइलों के ज़रिए दूर के लक्ष्यों पर घातक प्रहार सरलता से सम्भव हैं।'' वे आगे ये भी कहते हैं, ''पर इसे नैतिकता का अन्त नहीं समझा जाना चाहिए।कृ कृ सम्भवतः हमें गांधी के तरीकों को निरोधक के स्थान पर उपचार की तरह अपनाना होगा। परमाणु अस्त्रों द्वारा किए जाने वाले आक्रमणों को रोकने के स्थान पर उन अस्त्रों का बहिश्कार और उन्मूलन के लिए अहिंसा की रणनीति अपनाना अधिक तर्कसंगत है। विवेक इसी में है कि गांधी के निर्देषों की प्रासंगिकता कायम रखते हुए हम उनका आध ुनिकीकरण करें और पुनः प्रयोग में लाएं।''

जोसेफ़ लेलीवेल्ड के अनुसार ''गांधी के जीवन की त्रासदी, उनकी 'हत्या' या हत्यारे के दिल में उनके सदगुणों के कारण जागी नफ़रत नहीं थी, बल्कि विष्व के पुर्ननिर्माण की आकांक्षा पूरी न कर सकने का उनका अहसास था।''

हमारे राजनयिकों को वह पुरानी उक्ति सदैव याद रख्नी चाहिए कि ''राजनयिकों की असफलता पर ही जनरल को बुलाना ज़रुरी होता है।'' वे वास्तविक तौर पर षांति निर्माता हैं। दो हज़ार साल पहले सम्राट अषोक द्वारा श्रीलंका, बर्मा, खोतन, बैक्ट्रिया, दमिष्क, एथेन्स और ऐलेक्ज़ेन्ड्रिया को भेजे गए बौद्ध भिक्षु भारत के सबसे पहले राजदूत थे। वे सब षांति, अहिंसा, भाईचारे का संदेष ले कर गए थे। विदेष में राजदूत अपने देष की आंख और कान का काम करता है। देष की विदेष नीतियों का निर्धारण उसकी रिपोर्ट और सुझाव पर किया जाता है। उसे भारत के वर्तमान के हितों की अपेक्षा, दीर्घकालीन हितों को ध्यान में रखना अधिक आवष्यक है। हमारा पड़ोसी देष कहीं अधिक महत्व रखता है। इतिहास में स्थाई तत्व सदैव, देषवासियों की राश्ट्रीयता, अपने देष के लिए असीम प्रेम, आक्रमणकारियों के प्रति असीम घष्णा और उनसे अंत तक संघर्शकरने की भावना ही प्रध ाान होती है। उन्हें यह भी हमेषा याद रखना चाहिए कि भारत की सबसे बड़ी ताकत वह ''कोमल बल'' है जिसके मुख्यतम अवयव गांधीजी हैं।

पिछले तीन दशक भारत के लिए दुःखद और शर्मनाक रहे हैं— दिसम्बर 1992 में बाबरी मस्जिद के विध्वंस के कारण, 1984 और 1991 के सिख विरोधी और मुस्लिम विरोधी हत्याकांडों के कारण, अक्षरधाम मंदिर और ईसाइयों के गिरिजाघरों पर आक्रमणों के कारण, पुजारियों, पादरियों, सन्यासिनों पर प्रहार के कारण। भारत, जो धार्मिक सहिष्णुता की जन्म-भूमि कहलाता था और जहां की पुरानी सूक्ति के अनुसार 'एकम् सत विप्रः बहुधा वदन्ति' (सत्य केवल एक है किंतु उसके नाम अनेक हैं) की अर्जित प्रतिष्ठा पर बहुत बड़ा धब्बा लगा है। प्रत्येक धर्म के धार्मिक और धर्म-निरपेक्ष, प्रबुद्ध नेताओं द्वारा इस प्रकार के जघन्य कृत्यों को भविष्य में रोका जाना अत्यन्त अत्यावश्यक और अपरिहार्य है। गांधी के शब्द, "मैं ऐसे किसी भी धार्मिक मत या सिद्धांत को अस्वीकार करता हूं जो विवेक रहित है और नैतिकता के विरुद्ध है। मेरी संकल्पना के स्वतंत्र भारत में विभिन्न धर्मों के रहने वाले पूर्णतः मित्रवत रहेंगे," उन नेताओं के लिये अच्छे नेतृत्व के प्रकाश-स्तम्भ स्वरूप हैं। विख्यात सितारवादक उस्ताद अमजद अली खान ने अभी हाल में इन्हीं विचारों को संगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया हैः "एक संगीतकार के लिए स्वर ईश्वर है। मैं संगीत के जरिए ईश्वर तक पंहुचना चाहता हूं। जब विभिन्न स्वर इकट्ठे होते हैं तो एक सुन्दर राग की रचना होती है। उसी प्रकार अलग अलग धर्मों, जो राग में विभिन्न स्वर की तरह हैं, ने मिल कर भारत का निर्माण किया है। ईश्वर और राष्ट्र का प्रतीक मेरे लिए यह है।"

अंततः प्रत्येक स्त्री और पुरुष के लिए, चाहे वह किसी भी मत, समाज, राष्ट्रीयता या जीवन के किसी भी मुकाम से संबंधित हो, गांधी के शब्द, "वास्तविक स्वराज्य चन्द व्यक्तियों द्वारा सत्ता या प्रभुत्व पाने से नहीं आयेगा, बल्कि सभी के द्वारा उस क्षमता को अर्जित करने से आयेगा जिसके द्वारा वे सत्ता का दुरुपयोग किए जाने पर उसका विरोध करने में समर्थ हों। दूसरे शब्दों में स्वराज्य जन-साधारण को इस प्रकार से शिक्षित करके प्राप्त किया जाना है जिसके द्वारा वे सत्ताधारियों को संचालित और नियंत्रित करने की अपनी क्षमता को पहचान सकें", उत्कृष्ठ नेतृत्व का सुस्पष्ट संकेत हैं। जब भी और जहां भी सत्ता का दुरुपयोग स्थानीय, राजकीय, राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होता है और असत्य जनता की नीति और आचरण का आधार बन जाता है, प्रत्येक नागरिक का अत्यावश्यक कर्त्तव्य है कि वह इसका विरोध करे और दूसरों को भी ऐसा ही करने को प्रेरित करे। इस प्रकार से नेताओं की शासकीय प्राथमिकता और उत्तरदायित्व को सुनिश्चित किया जा सकता है। तृणमूल स्तर पर नेतृत्व को आत्मसात करना और नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा करना इस प्रकार से सर्वोत्तम तरीके से प्राप्त किया जा सकता है। देश के विभिन्न भागों में सत्ता का दुरुपयोग करने के कई दृष्टांत सामने आए हैं— कुछ प्रमुख सांसदों के व्यक्तिगत लाभ के कार्यालयों को पूर्व प्रभावी समय से लागू नियम के अन्तर्गत छूट देने

के विषय में संसद द्वारा कानून बनाना, एक मुख्य मंत्री द्वारा अपने राजनैतिक गुरु और अपनी मूर्तियां स्थापित करवाने के लिए जनता का करोड़ों रुपया खर्च करना, उनके इर्द-गिर्द पार्कों का निर्माण, भारतीय किसानों के दिए जाने वाले मूल्य के दुगनी कीमत का गेहूं और चीनी आयात करना, सिंगूर और नन्दीग्राम में अपनी भूमि बचाने के समय 25 किसानों पर पुलिस द्वारा गोली चला कर उनकी हत्या करना, अपने अधिकार और सत्ता के दुरुपयोग का भयंकर उदाहरण है। इस दुखपूर्ण कहानी में केवल एक आशा की किरण दिखती है कि कोलकता के अग्रणी लेखक, कलाकार, फिल्म-निर्माता तथा अन्य ने सार्वजनिक रूप से मानवता के प्रति इस नृशंसता का घोर विरोध किया है। इसके अलावा देश के विभिन्न भागों में आदिवासियों ने अपनी विस्थापना के विरोध में अहिंसक मार्च आयोजित किए है, जिन से तथाकथित राष्ट्रीय प्रगति को बढ़ावा देने के नाम पर नए बांध, होटल, विशेष आर्थिक क्षेत्र, नई खदान प्रक्रिया तथा वन्यजीवन-सुरक्षित वनों के निर्माण के लिए उनकी जमीन ली गई है। 1947 से अब तक करीब 2 करोड़ लोग, जिनमें 40% आदिवासी है, अपनी पारम्परिक भूमि से विस्थापित किए जा चुके हैं। इस प्रकार की सारी विरोधी गतिविधियों को प्रोत्साहन और समर्थन दिया जाना चाहिए।

राजमोहन गांधी अपने प्रसिद्ध दादा को अत्यन्त विनम्र भाव से 'एक अच्छे नाव-चालक' की संज्ञा से परिभाषित करते हैं। अत्यन्त शिष्टोक्ति के बावजूद भी यह एक अच्छी परिभाषा है। जीवन रूपी नदी की उग्र धारा को पार करने में, जिसमें अनेक चक्रवात और भंवर हैं, धारा के प्रवाह से पूर्णतया अवगत एक अच्छे नाव-चालक के होने से बड़ा और कोई आश्वासन नहीं है। जीवन रूपी नदी, निचले स्थानों में गंगा की तरह, व्यापक और विशाल जल राशि के रूप में ही नहीं बहती, बल्कि ऊंचे स्थानों में प्रपातों और छोटी धाराओं के रूप में भी बहती है। इसके लिए भी आवश्यकता है एक अच्छे नाव-चालक की जो सहमे हुए व्यक्तियों की नैया को पार करा सके। हमसे से प्रत्येक को उस आवश्यकता की पूर्ति का सुअवसर मिला है और उसे पूरा करना हमारा कर्त्तव्य है।

शब्दावली

अहिंसा : चोट न पहुंचाना, हत्या न करना

आश्रम : एक दार्शनिक आश्रय-स्थल, गांधी के सत्याग्रह और सृजनात्मक कार्यों का प्रशिक्षण केन्द्र

बनिया : व्यापारी वर्ग का एक सदस्य

भक्ति : समर्पण, आराधना

भूदान : भूमिहीनों को भूमि का स्वैच्छिक दान

ब्रह्मचर्य : कौमार्य व्रत, हिन्दू धर्म के अनुसार जीवन के चार चरणों में से एक

ब्राह्मण : पुरोहित जाति का एक सदस्य, हिन्दू समाज में सर्वोच्च

धर्म : कर्त्तव्य, प्रथागत सामाजिक दायित्व, हिन्दू नैतिकता

धोती : कमर पर बांधने वाला, टखनों तक लम्बा सूती कपड़े का टुकड़ा, भारतीय किसान का पारम्परिक परिधान

हड़ताल : काम का स्थगन, औद्योगिक उत्पादन बन्द करना

जैनिज्म : ईसा पूर्व 6वीं शताब्दी में महावीर द्वारा प्रारम्भ किया गया शुद्ध अहिंसक धर्म

जैन : जैन धर्म का अनुयायी

जाति : वंश, कुल, वर्ग

कलियुग : हिन्दू मान्यता के अनुसार चार युगों में से अंतिम और सबसे निकृष्ट युग, कष्टकारी काल

खादी : हाथ से बुना हुआ कपड़ा, गांधी की भारत की आजादी की लड़ाई के प्रथम चरण का मुख्य तत्व

खिलाफत : प्रथम विश्व युद्ध के बाद चलाया गया मुस्लिम आंदोलन, जिसका मुख्य ध्येय तुर्की के शाही सुलतान, इस्लाम के खलीफा, के परम्परागत विशेषाधिकारों की रक्षा करना था।

क्षत्रिय : योद्धा या राजकीय वर्ग का सदस्य

महात्मा : शाब्दिक अर्थ : महान व्यक्ति, नोबेल पुरस्कार विजेता कवि रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा गांधीजी को दी गई सम्मानपूर्ण उपाधि

मंत्र : एक धार्मिक सूत्र

मौलाना : मुस्लिम विद्वान के लिए आदरसूचक उपाधि

मारवाड़ी : पश्चिमी भारत के राजस्थान प्रदेश की एक व्यापारिक जाति

पंचायत : वरिष्ठ ग्रामीण व्यक्तियों की परिषद, जो सर्व सम्मति से समुदाय की नीतियां निश्चित करती है और झगड़ों की मध्यस्थता करती है।

पंचायत राजः ग्रामीण प्रजातंत्र, गांव पर आधारित राज्य-व्यवस्था

रामायण : भारत के दो महान धार्मिक ग्रन्थों में से एक, दूसरा ग्रन्थ 'महाभारत' है।

सभा : संगठन, सम्मेलन

शैवाइट : हिन्दू त्रिमूर्ति के तीसरे देवता, शिवजी के उपासक। पहले दो देवता ब्रह्मा और विष्णु हैं।

सनातनिस्ट : रूढ़िवादी हिन्दू

सन्यासी : एक धार्मिक व्यक्ति, विचरण करने वाला भिक्षु

सत्य : सच, चरम वास्तविकता

सत्याग्रह : शाब्दिक अर्थ : सत्य का दृढ़ता से पालन, सत्य-बल; गांधी की सक्रिय, अहिंसक प्रतिरोध की रणनीति

सर्वोदय : शाब्दिक अर्थ : सब का सम्पूर्ण उत्थान, रस्किन के *अन टू दिस लास्ट* (Unto This Last) सिद्धान्त पर आधारित गांधी का सामाजिक दर्शन

शुद्धि : 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आर्यसमाज आंदोलन के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा शुरू किया गया हिन्दू धर्म पुनर्परिवर्तन कार्यक्रम

शूद्र : हिन्दू समाज की निम्नतम, चौथी जाति के सदस्य, आमतौर पर एक किसान या मज़दूर

स्वदेशी : शाब्दिक अर्थः देश में पैदा किया हुआ, गांधी जी का आत्म-निर्भरता कार्यक्रम

स्वराज्य : अपना राज्य, जिसे गांधी जी ने 'स्वयं शासन' कह कर पुनः परिभाषित किया

ताल्लुक : एक जिले का छोटा भाग

ताल्लुकदार : उत्तर-पूर्वी भारत में एक बड़े जमींदार की उपाधि

तपस : तप या सन्यास सम्बन्धी अभ्यास

उलेमा : मुस्लिम पुरोहित

वैश्नवाइट : हिन्दू त्रिमूर्ति के दूसरे देवता— विष्णु का उपासक हिन्दू सम्प्रदाय

वर्ण : शाब्दिक अर्थ : रंग, हिन्दू जाति-प्रथा

वेद : हिन्दू धर्म की प्राचीन पवित्र पुस्तकें

वेदांतिन : वैदिक विद्वान, वेदों पर आधारित दार्शनिक परम्परा

जमींदार : उत्तर-पश्चिमी भारत में जमीन के बड़े भाग का स्वामी

ग्रन्थ-सूची

•एन्ड्रयूज, चार्ल्स एफ.: महात्मा गांधी-हिज लाइफ एन्ड आइडियाज (मुम्बई, जैको पब्लिशिंग हाउस, 2005)

•आर्मस्ट्रॉन्ग, करेनः इस्लाम-ए शॉर्ट हिस्ट्री (लंदन, फीनिक्स प्रेस, 2000)

•आर्मस्ट्रॉन्ग, करेनः बैटल फॉर गॉड (न्यूयॉर्क, अल्फ्रेड ए. नॉफ, 2002)

•अरैन्ट हन्नाः आइकमैन इन जेरूसलम- ए रिपोर्ट ऑन दि बेनेलिटी ऑफ ईविल (न्यूयॉर्क, वाइकिंग प्रेस, 1963)

•आर्ने, नायसः गांधी एंड ग्रुप कॉन्फ्लिक्टः एन एक्सप्लोरेशन ऑफ सत्याग्रह (ओस्लो, युनिवर्सिटेटस्फोरलागेट, 1974)

•अरियारत्ने, ए. टी.: रिलीजस पाथ टु पीस एंड बिल्ड़िंग ए जस्ट वर्ल्ड (कोलम्बो, सर्वोदय प्रकाशन 1984)

•बेकर लॉरीः लॉरी बेकरस मड़ (त्रिवेन्द्रम, सेंटर फार साइंस एंड़ टैक्नालाजी फार रूरल ड़ेवलपमैंट)

•भाटिया, गौतमः लॉरी बेकरः लाइफ, वर्क्स, राइटिंगस (न्यू देहली, वाइकिंग, 1991)

•बिलिंगटन, रे ऐलनः वैस्टवर्ड़ एक्सपैंशन (न्यूयॉर्क, मैकमिलन, 1967)

•बोडे, कार्लः दि पोर्टेबल थोरो (न्यूयॉर्क, वाइकिंग प्रेस, 1947)

•बॉन्डुरान्ट, जोनः कॉन्क्वेस्ट ऑफ वायोलेंसः गांधियन फिलॉसफी ऑफ कॉन्फ्लिक्ट (प्रिन्सटन, युनिवर्सिटी प्रेस, 1988)

•ब्राउन, जूडिथ एम.: गांधी एंड सिविल डिसओबिडिएंसः दि महात्मा इन इन्डियन पॉलिटिक्स, 1928–34 (केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1989)

•ब्राउन, जूडिथ एम.: गांधीः प्रिजनर ऑफ होप (न्यू हैवेन, येल युनिवर्सिटी प्रेस, 1989)

•ब्राउन, माइकलः ग्रेव न्यू वर्ल्ड-सिक्योरिटी चैलेन्जेस इन दि ट्वेन्टि-फर्स्ट सेन्चुरी (वॉशिंगटन, जॉर्ज टाउन युनिवर्सिटी, 2003)

•ब्रूनी, लुईगिनो, सं.: द इकानामी ऑफ कम्यूनियनः टुवर्ड्स ए मल्टी-डाइमैंशनल इकानामिक कल्चर (न्यूयार्क, न्यू सिटी प्रेस, 2002)

•चैटर्जी, मार्गरेटः गांधी एंड दि चैलेन्ज ऑफ रिलीजस डाइवर्सिटी (न्यू देहली, प्रोमिला एंड कं., 2005)

•चट्टोपाध्याय, कमलादेवीः दि अवेकनिंग ऑफ इन्डियन विमेन (मद्रास, एवरीमैन्स प्रेस, 1939)

•चोपड़ा, दीपकः पीस इज दि वे— ब्रिंगिंग वार एंड वायोलेंस टु एन एंड (लंदन, रैन्डम हाउस, 2005)
•क्लार्क, रिचर्डः अगेंस्ट ऑल एनिमीज—इनसाइड अमेरिकाज वार ऑन टेरर (न्यूयॉर्क, फ्री प्रेस, 2004)
•क्लॉजविट्ज, कार्ल वॉनः ऑन वार (न्यूयॉर्क, वाइकिंग, 1988)
•कोपले, एन्टनीः गांधी अगेंस्ट दि टाइड (ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1987)
•डाल्टन, डेनिसः गांधीः नॉन-वायलेन्ट पॉवर इन एक्शन (न्यूयॉर्क, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, 1993)
•देसाई, महादेवः दि गीता अकॉर्डिंग टु गांधी (अहमदाबाद, नवजीवन, 1946)
•डोक, जे. जे. : एम. के. गांधीः एन इन्डियन पेट्रिऑट इन साउथ अफ्रीका (लंदन, 1909)
•ड्रकर, पीटरः दि न्यू रिएलिटीज (न्यू देहली, एशियन बुक्स, 1991)
•डफी, जेम्स एंड मैनर्स,राबर्ट, सं.ः अफ्रीका स्पीक्स (प्रिंसटन, वान नास्ट्रांड कं., 1961)
•डूरॉन्ट, विलः दि स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन (वॉल्यूम वन), (न्यूयॉर्क, साइमन एंड शुस्टर, 1957)
•ईश्वरन, एकनाथः बादशाह खान-ए मैन टु मैच हिज माउन्टेन्स (न्यू देहली, पेन्गुइन बुक्स, 2001)
•आइन्सटाइन, अलबर्टः सेलेक्टेड राइटिंग्स (न्यूयॉर्क, ओशन प्रेस, 2003)
•एरिक्सन, एरिकः गांधीज ट्रुथः ऑन दि ओरिजिन्स ऑफ मिलिटेंट नॉनवायलेंस (न्यूयॉर्क, नॉर्टन, 1969)
•फाहमी, इस्माइलः निगोशिएटिंग फॉर पीस इन दि मिडिल ईस्ट (लंदन, क्रूम हेल्म,1983)
•फाइन्सटाइन, एलनः अफ्रीकन रिवोल्यूशनरीः दि लाइफ एंड टाइम्स ऑफ़ नाइजीरियास अमीनो कानो (विल्टशायर, डेवीसन पब्लिशिंग हाउस, 1973)
•फिशर, लुईः दि लाइफ ऑफ महात्मा गांधी (हार्पर एंड रो, 1950)
•फ्रेंच, पैट्रिकः लिबर्टी ऑर डेथ (न्यू देहली, हार्पर कॉलिन्स, 1997)
•गाल्टुंग, जोहानः दि वे इज दि गोलः गांधी टुडे (अहमदाबाद, गुजरात विद्यापीठ, 1992)
•गांधी, एम. के.ः ऑटोबायोग्राफीः दि स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरिमेन्ट्स विद ट्रुथ (अहमदाबाद, नवजीवन, 1927)
•गांधी, एम. के.ः हिन्द स्वराज ऑर इन्डियन होम रूल (अहमदाबाद, नवजीवन, 1927)
•गांधी, एम. के.ः सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका (अहमदाबाद, नवजीवन, 1947)
•गांधी, एम. के.ः इन्डिया ऑफ माई ड्रीम्स (अहमदाबाद, नवजीवन, 1947)

•गांधी, एम. के.: ट्रस्टीशिप (अहमदाबाद, नवजीवन, 1927)
•गांधी, एम. के.: कलेक्टेड वर्क्स (न्यू देहली, पब्लिकेशन्स डिवीजन, 1958–94) (100 खंड)
•गांधी, राजमोहन: दि गुड बोटमैन: पोट्रेट ऑफ गांधी (न्यू देहली, वाइकिंग, 1995)
•गांधी, राजमोहन: गांधी: दि मैन: हिज पीपिल एंड दि एम्पायर (न्यू देहली, वाइकिंग, 2007)
•गोर, अलबर्ट: एन इनकन्वीनियन्ट ट्रुथ-दि प्लेनेटरी एमर्जेन्सी ऑफ ग्लोबल वार्मिंग एंड व्हाट वी कैन डू अबाउट इट (न्यूयॉर्क, ब्लूम्सबरी, 2006)
•ग्रीन, मार्टिन: ओरिजिन्स ऑफ नॉन-वायलेंस: टॉलस्टॉय एंड गांधी इन देयर हिस्टॉरिकल सेटिंग्स (न्यू देहली, हार्पर कॉलिन्स, 1998)
•ग्रीन, मार्टिन: गांधी: वॉएस ऑफ ए न्यू एज रिवोल्यूशन (न्यूयॉर्क, हार्पर कालिन्स,1993)
•ग्रेग, रिचर्ड: दि पॉवर ऑफ नॉन-वायलेंस (अहमदाबाद, नवजीवन,1960)
•गुहा, रामचन्द्र: दि अनक्वायट वुड्स: इकोलॉजिकल चेंज एंड पीजेंट रेजिसटेन्स इन द हिमालयाज (न्यू देहली, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1987)
•गुहा, रामचन्द्र: इंडिया आफ्टर गांधी...(न्यू देहली, पैन मैकमिलन, 2007)
•हार्डिमैन, डेविड: गांधी इन हिज टाइम एंड अवर्स (न्यू देहली, पर्मानेन्ट ब्लैक, 2003)
•हेयनर प्रिसिला: अनस्पीकेबल ट्रुथस- कन्फ्रन्टिंग स्टेट टैरर एंड एट्रासिटी (रूटलेज, 2002)
•हैन्डरसन, आर्किबाल्ड: जार्ज बर्नार्ड शॉ: मैन ऑफ दि सेन्चुरी (न्यूयॉर्क, ऐप्लेटन-सेन्चुरी-क्रोफ्टस, 1956)
•हरमन आर्थर: दि एपिक राइवेलरी दैट डेस्ट्रायड एन एम्पायर एंड फोरज्ड अवर एज (न्यूयॉर्क, बैंटम बुक्स, 2009)
•हिर्ष, टामस: दि एन्ड ऑफ प्रीहिस्टरी- ए पाथ टु फ्रीडम (सेन्टीआगो, ताबला रासा, 2007)
•होए, रसैल वॉरेन: ब्लैक अफ्रीका: फ्राम कालोनियल इरा टु मॉडर्न टाइम्स (लंदन, न्यू अफ्रीका लाइब्रेरी, 1967)
•हंट, जेम्स: गांधी एंड दि नॉन कॉनफॉर्मिस्ट्स: एनकाउन्टर्स इन साउथ अफ्रीका (न्यू देहली, प्रोमिला एंड कं., 1986)
•हंटर, डोरिस: नॉन-वायलेंस-एथिक्स इन ऐक्शन (न्यू देहली, गांधी पीस फाउन्डेशन, 1971)

•हंटिंगटन, सैमुअलः दि क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन्स एंड दि रिमेकिंग आफ वर्ल्ड आर्डर (न्यूयॉर्क, साइमन एंड शुस्टर, 1997)
•हक्सले, आल्डसः एंडस एंड मीन्सः एन एनक्वायरी इन्टू दि नेचर ऑफ़ आइडियल्स एंड मेथड्स एम्प्लाएड फार देअर रिअलाइजेशन (एडिनबरा, चैटो एंड विन्डस, 1938)
•इनग्राम, कैथेरिनः इन दि फुटस्टेप्स ऑफ गांधी (कोलकत्ता, रूपा पब्लिकेशन, 1997)
•अय्यर, एन. राघवनः मॉरल एंड पोलिटिकल थॉट ऑफ महात्मा गांधी (न्यूयॉर्क, ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1973)
•झा, डी. सी.ः महात्मा गांधी, कांग्रेस एंड पार्टिशन ऑफ इंडिया (न्यू देहली, संचार पब्लिशिंग हाउस, 1995)
•जुर्गेन्समेयर, मार्कः गांधीज वेः ए हैंडबुक ऑफ कॉनफ्लिक्ट रिजोल्यूशन (बर्कले, युनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस, 2003)
•कीर, धनन्जयः डॉ.अम्बेडकरः हिज लाइफ एंड मिशन (मुंबई, पॉपुलर प्रकाशन, 1954)
•केली, पेट्राः नॉन-वायलेंस स्पीक्स टु पॉवर (होनोलूलू, सेन्टर फॉर ग्लोबल नॉन-वायलेंस, 1992)
•केनेडी, पॉलः प्रिपेअरिंग फॉर दि 21 सेंचुरी (न्यूयॉर्क, रैन्डम हाउस, 1993)
•कीन्स, जॉन मेनार्डः ट्रीटाइज ऑन मनी (लंदन, पालग्रेव, 1930)
•किंग, मार्टिन लूथर, जूनियरः स्ट्रेन्थ टु लव (लंदन, हॉडर एंड स्टाउटन, 1964)
•किंग, मार्टिन लूथरः स्ट्राइड़ टु फ्रीडमः दि मान्टगोमेरी स्टोरी (न्यूयॉर्क, हार्पर, 1958)
•किंग, मेरी एलिजाबेथः महात्मा गांधी एंड मार्टिन लूथर किंग जूनियर - दि पॉवर ऑफ नॉन-वायलेंट ऐक्शन (पेरिस, यूनेस्को, 1999)
•किसिंगर, हेनरीः फॉर दि रिकॉर्डः सेलेक्टेड स्टेटमैन्ट्स, 1977–80 (बोस्टन, लिटल ब्राउन एंड को, 1980)
•कोमिसर, लूसीः कोराजोन एक्विनो- दि स्टोरी ऑफ ए रिवोल्यूशन (न्यूयॉर्क, जार्ज ब्रेजिलर, 1987)
•क्रैमर, माइकलः अरब अवेकनिंग एंड इस्लामिक रिवाइवल (लंदन, ट्रान्जैक्शन पब्लिशर्स, 1996)
•क्रॉलिक, सैनफोर्ड एंड कैनन, बेटी, स.ः गांधी इन दि पोस्ट मॉडर्न एज (गोल्डेन, कोलोरैडो स्कूल ऑफ माइन्स प्रेस, 1984)
•कुमारप्पा, जे. सी.ः इकोनॉमी ऑफ पर्मानेन्स (वाराणसी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 1997)
•लाहिरी, प्रतीप केः डिकोड़िंग इन्टालरेन्स...(न्यू देहली, रोली, 2009)

•लांजा डेल वास्तो, जे. जे.: वॉरियर्स ऑफ पीसः राइटिंग्स ऑन दि टेकनीक ऑफ नॉन-वायलेंस (न्यूयॉर्क, अलफ्रेड ए. नॉफ, 1974)
•लियांगे, गुंडासाः रिवोल्यूशन अंडर दि ब्रेडफ्रूट ट्री...(कलकता, सिन्हा पब्लिशिंग हाउस, 1988)
•लर्नर, रबी माइकेलः हीलिंग इजरायल-पैलेस्टीन (बर्कले, टिक्कुन बुक्स, 2003)
•लूबिक चियाराः इसैन्शियल राइटिंग्स... (लंदन, न्यू सिटी प्रेस, 2007)
•लुम्बी, इ. डब्लू. आर.: दि ट्रांसफर ऑफ पॉवर इन इंडिया (लंदन, जॉर्ज एलेन एंड अनविन लिमिटेड, 1954)
•लुट्ज, मार्कः ट्रस्टीशिप-दि गांधियन ऑल्टरनेटिव (न्यू देहली, गांधी पीस फाउन्डेशन, 1986)
•मैडेलिन स्लेडः दि स्पिरिट्ज पिलग्रिमेज (लंदन, ओरिएंट लॉगमैन्स, 1960)
•मंड़ेला, नेल्सनः लांग मार्च टु फ्रीड़म (बोस्टन, लिटिल ब्राउन, 1994)
•मंडेला, नेल्सनः दि सैकरेड़ वारियर... (न्यूयार्क, टाइम, 31 दिसम्बर 1999)
•मैनसर्ज, निकोलस एंड मून, पैंडेरल : दि ट्रांसफर ऑफ पॉवर (लंदन, एच.एम.एस.ओ. 1981)
•मार्कोविट्ज, क्लॉडः दि अनगांधियन गांधी (देहली, पर्मानैन्ट ब्लैक, 2003)
•मैथ्यूज़, जेम्सः दि मैचलैस वैपन— सत्याग्रह (मुंबई, भारतीय विद्या भवन, 1989)
•मैकरौबी, जॉर्जः स्मॉल इज पॉसिबिल (लंदन, जोनाथन केप, 1981)
•मेहता, गीताः दि राज (न्यूयॉर्क, साइमन एंड शुस्टर, 1989)
•मेनन, वी.पी.: इन्टीग्रेशन ऑफ इंडियन स्टेट्स (कोलकत्ता, ओरिएंट लॉन्गमैन्स, 1956)
•मेर्टन, टॉमसः गांधी ऑन नॉन-वायलेंसः सेलेक्टेड टेक्स्ट्स फ्राम हिज 'नॉन-वायलेंस इन पीस एंड वार' (न्यूयॉर्क, न्यू डायरेक्शन्स पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, 1964)
•मॉन्टगोमरी, फील्ड मार्शलः दि पाथ ऑफ लीडरशिप (लंदन, फोन्ताना, 1963)
•नन्दा, बी. आर.: महात्मा गांधी-ए बायोग्राफी (ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1958)
•नन्दा, बी. आर.: इन सर्च ऑफ गांधी (न्यू देहली, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2002)
•नन्दा, बी. आर.: गांधी एंड हिज क्रिटिक्स (न्यू देहली, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1985)
•नन्दा, बी. आर.: गांधीः पैन इस्लामिज्म, इम्पीरियलिज्म एंड नेशनैलिज्म (न्यू देहली, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1989)
•नन्दा, बी. आर.: इन्डियन फॉरेन पॉलिसी-दि नेहरू ईयर्स (न्यू देहली, विकास, 1976)
•न्क्रूमा क्वामेः रेवोल्यूशनरी पाथ (न्यूयार्क, इन्टरनेशनल पब्लिशर्स, 1973)

•नौरिया, अनिलः दि अफ्रीकन एलीमैन्ट इन गांधी (न्यू देहली, नेशनल गांधी म्यूजियम, 2006)
•नेहरू, जवाहरलालः ऑटोबायोग्राफी (लंदन, जॉन लेन, 1936)
•नेहरू, जवाहरलालः दि डिस्कवरी ऑफ इंडिया (कोलकत्ता, सिगनेट प्रेस, 1946)
•नेहरू, जवाहरलालः इंडियन फॉरेन पॉलिसी (न्यू देहली, पब्लिकेशन्स डिवीजन, 1961)
•ऑस्टेरगार्ड, जेफरीः नॉन-वायलेंट रेवोल्यूशन इन इंडिया (न्यू देहली, गांधी पीस फाउन्डेशन, 1985)
•पेज, ग्लेन एंड साथा आनन्द, चैवातः इस्लाम एंड नॉन-वायलेंस (होनोलूलू, सेन्टर फॉर ग्लोबल नॉन-वायलेंस, 1992)
•पेज, ग्लेनः नॉन किलिंग ग्लोबल पोलिटिकल साइंस (होनोलूलू, सेन्टर फ़ॉर ग्लोबल नॉन-वायलेंस, 2002)
•पानी, नरेंद्रः इनक्लूजिव इकोनॉमिक्सः गांधियन मैथड एंड कनटेम्पररी पॉलिसी (न्यू देहली, सेज पब्लिकेशन्स, 2001)
•पेन्टर-ब्रिक सीमोनः गांधी अगेन्स्ट मैक्यावैलिज्मः नॉन-वायलेंस इन पोलिटिक्स (मुंबई, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1967)
•पेन्टर-ब्रिक सीमोनः गांधी एंड दि मिडल ईस्ट... (न्यूयार्क, आई. बी. टॉरिस, 2008)
•पैपे, इलानः एथनिक क्लीन्जिंग ऑफ पैलेस्टाइन (लंदन, वन वर्ल्ड पब्लिशिंग, 2006)
•परेल, एन्थनीः गांधीः हिन्द स्वराज एंड अदर राइटिंग्स (केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1997)
•पिन्टो, विवेकः गांधीज विजन एंड वैल्यूज (न्यू देहली, सेज पब्लिकेशन्स, 1998)
•प्रकाश, वीरेन्द्रः हिन्दुत्व ड़िमिस्टीफाइड़ (न्यू देहली, विरगो पब्लिकेशन्स, 2002)
•रॉबर्ट्स, एडम.: स्ट्रेटेजी ऑफ सिविलियन डिफेंसः नॉन-वायलेंट रैजिस्टेंस टु एग्रैशन (लंदन, फेबर, 1967)
•रोम्यां रोलां एंड गांधी कारेस्पौन्डेन्स (न्यू देहली, पब्लिकेशन्स डिवीजन, 1976)
•रूडोल्फ, लॉयड एंड सुजेनः गांधी-दि ट्रैडिशनल रूट्स ऑफ करिज्मा (हैदराबाद, ओरिएंट लांगमैन, 1987)
•रूडोल्फ, लॉयड एंड सुजेन पोस्ट मॉडर्न गांधी एंड अदर एसेज (शिकागो, युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 2006)
•रस्किन, जॉनः अनटू दिस लास्ट (लंदन, जॉर्ज एलेन, 1905)
•सादात, अनवरः इन सर्च ऑफ आइडेन्टिटी (न्यूयॉर्क, हार्पर एंड रो, 1977)
•शैल, जोनाथनः दि अनकॉन्करेबल वर्ल्ड (न्यूयॉर्क, मैट्रोपोलिटन बुक्स, 2003)

•शूमाकर, ई. एफः स्मॉल इज बियूटिफुल (न्यू देहली, राधाकृष्ण, 1970)
•सेगेव, टॉमः वन पैलेस्टाइन कम्प्लीट (न्यूयॉर्क, हेनरी होल्ट, 1999)
•सेन्गे, पी. एम.: दि फिफ्थ डिसिप्लिनः दि आर्ट एंड प्रैक्टिस ऑफ दि लर्निंग ऑर्गेनाइजेशन (न्यूयॉर्क, डबलडे, 1994)
•शार्प, जीनः दि पोलिटिक्स ऑफ नॉन-वायलेंट ऐक्शन (बोस्टन, पोर्टर सार्जेन्ट, 1973)
•शार्प, जीनः वेजिंग नॉन वॉयलेंट स्ट्रगल... (बोस्टन, पोर्टर सार्जेन्ट, 2005)
•शीन, विन्सेन्टः लीड काइन्डली लाइट (न्यूयॉर्क, रैन्डम हाउस, 1949)
•श्लेम, आविः दि आयरन वॉलः इजराइल एंड दि अरब वर्ल्ड (न्यूयॉर्क, डब्लू. डब्लू. नॉर्टन एंड कम्पनी)
•श्रीधारनी, के.: वार विदाउट वायलैंस (मुंबई, भारतीय विद्या भवन, 1962)
•सोनलेटनर, माइकल डब्लू.: गांधियन नॉन वायलेन्स-लेवेल्स ऑफ सत्याग्रह (न्यू देहली, अभिनव पब्लिकेशन्स, 1985)
•सोरोकिन, ए. पिट्रिमः दि वेज एंड पॉवर ऑफ लव (बोस्टन, दि बीकन प्रेस, 1954)
•श्रीमती कमलाः महात्मा गांधी- एन अमेरिकन प्रोफाइल (वॉशिंगटन, महात्मा गांधी मेमोरियल सेन्टर, 1987)
•तथिनेन, उन्तोः अहिंसा -नॉन वायलेन्स इन दि इंडियन ट्रैडिशन (अहमदाबाद, नवजीवन, 1983)
•टॉल्सटॉय, लिओः दि किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू ऑर क्रिश्चियेनिटी नॉट ऐज ए मिस्टिकल टीचिंग बट ऐज ए न्यू कनसेप्ट ऑफ लाइफ (न्यूयॉर्क, नूनडे, 1961)
•टॉमस, टी. के.: ए क्रिशियन रिस्पोन्स टु गांधीयन सत्याग्रह (कोट्टायम, क्रिस्तवा साहित्य समिति..., 1970)
•टॉमसन, मार्कः गांधी एंड हिज आश्रम्स (मुंबई, पौपुलर प्रकाशन, 1993)
•टूटू, डेसमन्डः गॉड हैज ए ड्रीम- ए विजन ऑफ होप फॉर अवर टाइम्स (न्यूयॉर्क, डबलडे, 2003)
•वॉशिंगटन, जेम्स एम.: ए टेस्टामेन्ट ऑफ होप : दि एसेंशियल राइटिंग्स एंड स्पीचेज ऑफ मार्टिन लूथर किंग जूनियर (सैन फ्रैनसिस्को, हार्पर, 1991)
•वैबर, टॉमसः ऑन दि सॉल्ट मार्च (न्यू देहली, हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स, 1997)
•वैबर, टॉमसः कनफ्लिक्ट रेजोल्यूशन एंड गांधियन एथिक्स (न्यू देहली, गांधी पीस फाउन्डेशन, 1991)

****

लेखक के संबध में

मद्रास विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के पश्चात्, पास्कल एलन नाजारेथ का मई 1959 में भारतीय विदेश सेवा (Indian Foreign Service) के लिए चयन हुआ। उन्होंने भारत के राजनयिक और वाणिज्य दूतावास और शिष्ट मण्डलों में टोक्यो, रंगून, लिमा, लन्दन, शिकागो और न्यूयॉर्क में कार्य किया है। तत्पश्चात् उन्होंने भारत के उच्चायुक्त के रूप में घाना और फिर राजदूत के रूप में लिबेरिया, अपर वोल्टा, टोगो, मिश्र, मैक्सिको, गुआतेमाला, एल सलवादोर तथा बेलिज में कार्य किया है।

सन् 1982–85 की अवधि में जब श्री नाजारेथ 'भारतीय सांस्कृतिक अनुसंधान परिषद' के डायरेक्टर जनरल थे, ब्रिटेन, अमेरिका और फ्रांस में भारत की बहुआयामी संस्कृति को दर्शाने वाले सांस्कृतिक मेले आयोजित किए गए। उनके कार्यकाल में 'बौद्ध धर्म और राष्ट्रीय संस्कृतियां' और 'भारत तथा विश्व साहित्य' पर कई अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुए तथा नई दिल्ली में 'विश्व कविता सम्मेलन' आयोजित किया गया। उनके कार्यकाल में 'भारत-ग्रीस सिम्पोजियम' आयोजित किया गया, जिसके परिणामस्वरूप 'भारत और ग्रीस' विषय पर एक पांडित्यपूर्ण प्रकाशन निकाला गया। तत्पश्चात् जब श्री नाजारेथ मिश्र व मैक्सिको में राजदूत थे, उसी प्रकार के सम्मेलन काहिरा और मैक्सिको सिटी में आयोजित हुए और 'भारत और मिश्र' एवं 'भारत और मैक्सिको' नामक प्रकाशन भी निकाले गए।

श्री नाजारेथ मई 1994 में सेवानिवृत्त हुए और उसके पश्चात् से वे 'इंडियन इन्स्टीटयूट ऑफ एडवान्स्ड स्टडीज, शिमला तथा 'इंडियन इन्स्टीटयूट ऑफ मैनेजमेंट', बंगलौर में अतिथि-व्याख्याता के रूप में कार्य कर रहे हैं। जिन विदेशी संस्थाओं में उन्होंने व्याख्यान दिए हैं या गोष्ठियों में सहभागिता की है, वे हैं: गांधी मैमोरियल सैन्टर, वांशिगटन; यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया, बर्कले; स्टैन्फोर्ड, अमेरिकन, येल, कोलिम्बया, न्यूयार्क व एम. आई. टी. विश्वविद्यालय; सैन फ्रांसिस्को वर्ल्ड एफेअरस काउन्सिल, ईस्ट वैस्ट सैन्टर और हवाई विश्वविद्यालय; अमरीका में एस्पैन इन्स्टीट्यूट; फिलीपाइन्स में एशियन इन्स्टीट्यूट ऑफ मैनेजमैंट और एथेनो तथा फिलीपीन विश्वविद्यालय, इंडोनेशिया में उदयन और शायरिफ हिदायतुल्ला इस्लामिक विश्वविद्यालय; ट्रिनीडाड़ और टुबैगो के विश्वविद्यालय; पोर्ट ऑफ स्पेन, वैस्ट इंडीज तथा महात्मा गांधी इन्स्टीटयूट, मोका, मारिशस में। उनके व्याख्यान इलेक्ट्रोनिक माध्यम द्वारा प्रकाशित हुए हैं और उनकी दो सी. डी. हिस्टॉरिकल पर्सपैक्टिवस -एशिया (Historical Perspectives-Asia) तथा हिस्टॉरिकल पर्सपैक्टिव्स-यूरोप (Historical Perspectives-Europe) भी निकाले गए हैं।

श्री नाजारेथ 'सर्वोदय इन्टरनेशलन ट्रस्ट' के संस्थापक और मैनेजिंग-ट्रस्टी हैं जो गांधी की सत्य, अहिंसा, जातीय भाईचारे, मानवतावादी सेवा और शांति के आदर्शों को प्रतिपादित करने के लिए समर्पित है। इसकी स्थापना मार्च 1995 में हुई थी। इसकी वेबसाइट है- www.sarvodyatrust.org

उनकी बहुचर्चित पुस्तक गांधीज़ आउटस्टैंडिग लीडरशीप (Gandhi's Outstanding Leadership) का लोकार्पण नई दिल्ली में पूर्व प्रधानमंत्री श्री आई. के. गुजराल द्वारा तथा यू. एन.ओ., न्यूयॉर्क में अंडर-सेक्रेटरी-जनरल शशि थरूर द्वारा किया गया था।

अक्टूबर 9, 2007 को उन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ में 'श्री चिन्मय पीस मेडिटेशन ग्रुप' द्वारा 'यू थॉट शांति पुरस्कार' से सम्मानित किया गया जो उनकी जीवन पर्यन्त समर्पित सेवाओं तथा विश्व भर में गांधीवादी मूल्यों तथा सत्य, अहिंसा, जातीय भाईचारे और मानवतावादी सेवा के उत्थान के लिए प्रदान किया गया। इसके पूर्व यह पुरस्कार पोप जॉन पॉल II, दलाई लामा, मिखाइल गोरबाचेव, मदर टेरेसा, नेल्सन मंडेला और डेस्मन्ड टूटू को प्रदान किया जा चुका है।

****

पुस्तक की प्रशंसा में कुछ शब्द

"मुझे पुस्तक में 'गांधी-एक आदर्श नायक' अध्याय विशेष रूप से पसंद आया।"

-ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, भारत के भूत-पूर्व राष्ट्रपति

"*Gandhi's Outstanding Leadership* (*गांधी का अनन्य नेतृत्व*) जैसी अद्‌भुत पुस्तक मुझे भेंट करने के लिए हार्दिक धन्यवाद।"

-बराक ओबामा, अमेरिका के राष्ट्रपति

"मैंने पुस्तक में अनेक ऐसे संदर्भ देखे हैं जो मेरे देश की वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति में भी प्रासंगिक हैं।"

-कोराज़न एक्विनो, फिलीपीन्स की पूर्व राष्ट्रपति

"पुस्तक स्मरणीय और ज्ञान-वर्धक है।"

-आई.के.गुजराल, भारत के पूर्व प्रधानमंत्री

"मैं इस पुस्तक का उपयोग एक संदर्भ-ग्रन्थ के रूप में करूंगी।"

-श्रीमती मीरा कुमार, लोकसभा की स्पीकर

"यह पुस्तक पढ़ने में बहुत ही अद्‌भुत है और पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती है। मैं इस पुस्तक द्वारा अपने इतिहास के ज्ञान का पुनरावलोकन कर रही हूं।"

-श्रीमती शीला दीक्षित, दिल्ली की मुख्यमंत्री

"*Gandhi's Outstanding Leadership* (*गांधी का अनन्य नेतृत्व*) पाठकों को सूचनाएं देने के साथ-साथ एक ऐसे उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रेरित करती है जिसके आदर्श महात्मा गांधी हैं। पुस्तक का प्रत्येक पृष्ठ प्रेरणा-दायक है। यह एक अद्‌भुत रचना है।"

-ग्रीस की राजकुमारी आयरीन, मैड्रिड की 'वर्ल्ड इन हारमनी'(World in Harmony) की अध्यक्ष

"एक सुंदर तथा आवश्यक पुस्तक।"

-राजमोहन गांधी, महात्मा गांधी के पोते तथा 'The Good Boatman: A Portrait of Gandhi' तथा 'Mohandas: A True Story of a Man, his People and an Empire' आदि पुस्तकों के लेखक

"गांधीजी के विचारों तथा भारत और विश्व में उनके प्रभाव को आंकने के लिये यह पुस्तक एक सोने की खान है।"

-श्याम बेनेगल, 'The Making of the Mahatma' फिल्म के निर्माता

"पुस्तक में विषय का चुनाव, उसका विवेचन, उसका उदाहरणों सहित वर्णन, छपाई आदि सभी अत्युत्तम है। पुस्तक वास्तव में असाधारण है।"

-एन. कस्तूरी, अध्यक्ष, गांधी लिटरेचर सोसायटी

"महात्मा गांधी के सिद्धांतों, उनका व्यवहार तथा भूत, वर्तमान और भविष्य में उनके नेतृत्व का भारत व विश्व में प्रभाव का यह पुस्तक सुंदर ढ़ंग से वर्णन करती है। पुस्तक का महत्व इसमें दिये गए चित्रों, फोटोग्राफ तथा गांधीजी और अन्य द्वारा दिये गये उद्धरणों से और भी बढ़ जाता है, जो विषय का सार्थक प्रतिपादन करते हैं।"

-ग्लेन पेज, निदेशक, Centre for Global Nonviolence, Honolulu

राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय

राजघाट, नई दिल्ली-110002

दूरभाषः 23311793, 23310168, 23328310

ईमेलः gandhimk@bol.net.in;
mkgandhingm@rediffmail.com

वेबसाइटःwww.gandhimuseum.org

सहयोग मूल्यः रु. 300/-

ISBN: 978-81-87458-30-2